੧ ਓ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ ਕੀ ਫ਼ਤਹਿ ॥

ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਗੁ: ਪ੍ਰ: ਕਮੇਟੀ ਸ੍ਰੀ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਵਲੋਂ ਮਾਰਚ ੧੯੫੮ ਤੱਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ ਹੋਏ

ਗੁਰਮਤਿ ਲਿਟ੍ਰੇਚਰ ਦੀ

"ਸੂਚੀ-ਪੱਤਰ"

ਗੁਰਮੁਖੀ

ਨੰ:	ਨਾਮ ਗੁਟਕਾ ਜਾਂ ਪੋਥੀ	ਛਪਾਈ	ਕਿਸਮ ਜਿਲਦ	ਪੰਨੇ	ਭੇਟ
੧.	ਆਦਿ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ (ਮੋਟੀ ਵੈਲ) ਬਿਨਾਂ ਪਦਛੇਦ	ਫੋਟੋ ਬਲਾਕ	ਪਲਾਸਟਕ	੧੪੩੦	੩੦)੦੦
੨.	ਆਦਿ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾ: ਜੀ (ਬ੍ਰੀਕ ਵੈਲ) ਬਿਨਾਂ ਪਦਛੇਦ	,,	,,	੧੪੩੦	੨੪)੦੦
੩.	ਆਦਿ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾ: ਜੀ (ਸਫਰੀ ਬੀੜ ਦੋਹ ਸੈਂਚੀਆਂ ਵਿਚ)		,,	੧੪੩੦	ਛਪ ਰਹੀ ਹੈ
੪.	ਜਪੁ ਜੀ ਸਾਹਿਬ	ਫੋ: ਬ:	ਬਿਨਾ ਜਿ:	੩੨	)੦੬
੫.	ਜਪੁ ਜੀ ਸਾ: ਤੇ ਸ਼ਬਦ ਹਜ਼ਾਰੇ	,,	,,	੪੪	)੦੯
੬.	ਰਹਰਾਸਿ ਸਾਹਿਬ	,,	,,	੩੬	)੦੮
੭.	ਜਾਪੁ ਸਾਹਿਬ	,,	,,	੪੮	)੧੨
੮.	ਸਿੱਖ ਰਹਿਤ ਮਰਯਾਦਾ		,,	੩੮	)੧੨
੯.	ਬਾਣੀ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ	ਫੋ: ਬ:	,,	੭੦	)੧੯
੧੦.	ਆਸਾ ਦੀ ਵਾਰ ਕੀਰਤਨੀ	,,	,,	੮੦	)੨੨
੧੧.	ਨਿਤ ਨੇਮ	,,	ਜ: ਗੱਤਾ	੧੭੬	)੩੭
੧੨.	ਨਿਤਨੇਮ	,,	ਕਪੜਾ	੧੭੬	)੬੨
੧੩.	ਸੁਖਮਨੀ ਸਾਹਿਬ	,,	ਗੱਤਾ	੧੪੮	)੩੧
੧੪.	ਸੁਖਮਨੀ ਸਾਹਿਬ	,,	ਕ:	੧੪੮	)੫੦
੧੫.	ਸੁਖਮਨੀ ਸਾਹਿਬ (ਲਾਈਨਵਾਰ)	,,	,,	੧੫੨	)੬੨
੧੬.	ਸੁੰਦਰ ਗੁਟਕਾ (ਕਾਲੀ ਵੈਲ)	,,	,,	੪੮੪	੧)੦੦
੧੭.	ਸੁੰਦਰ ਗੁਟਕਾ (ਲਾਲ ਵੈਲ)	,,	,,	੪੮੪	੧)੪੪
੧੮.	ਸੁੰਦਰ ਗੁਟਕਾ (ਸ਼ਨੀਲ)	,,	ਸਨੀਲ	੪੮੪	੨)੦੦
੧੯.	ਗੁਰ ਸ਼ਬਦ ਸੰਗ੍ਰਹਿ(ਨ੍ਰਿਮੋਲਕ ਹੀਰਾ)	,,	ਕ:	੫੬੮	੧)੨੫




१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥



कबित्त-सवैये

भाई गुरुदास जी भल्ला

कठिन पदों आदि की टिप्पणि सहित



प्रकाशक :

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी,

अमृतसर ।

मूल्य २।) दो रुपये चार आने

प्रकाशक

शि० गु० प्र० कमेटी,

अमृतसर ।

प्रथमावृत्ति मई १९५६ १०००

सरदार रवेल सिंह मन्त्री (ट्रस्टम),
शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के प्रबन्ध में
गुरुद्वारा प्रिंटिंग प्रेस, (रामसर रोड) अमृतसर में छपा ।

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ॥

प्राक्कथन

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की ओर से गुरुमति प्रेमियों तथा हिन्दी पाठकों के हितार्थ भाई गुरुदास 'भल्ला' रचित हिन्दी ग्रन्थ "कबित्त सवैये" सटिप्पण प्रकाशित किया जा रहा है

गुरुमत साहित्य–

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। वह समय के साथ साथ बदलता रहता है। भिन्न भिन्न समय की परिस्थितियां समाज में कुछ ऐसी विशेष भावनाओं को जन्म देती हैं, जिन का प्राबल्य उस काल के साहित्य निर्माण में सहायक होती हैं।

बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ तो हिन्दू धर्म के संयोग से सिद्ध-साहित्य पैदा हुआ। जब सिद्धों ने जनता को तान्त्रिक कर्मों में फंसा दिया तो "नाथ योगी साहित्य" की सृष्टि हुई और जब अहिंसा का भाव प्रक्ट करने की आवश्यकता हुई तब "जैन साहित्य" का विकास हुआ। इसी प्रकार जब देश पर मुसलमानों का शासन हुआ तो उन्हों ने लोगों के हृदय पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिये तरह २ के अत्याचार किये तब सद्-पुरुषों द्वारा "भक्ति साहित्य" का निर्माण हुआ। इसी समय हिन्दुओं और मुसलमानों में ताल-मेल बढ़ाने के लिये श्री "जायसी" द्वारा "सूफ़ी साहित्य" का भी प्रारम्भ हुआ।

इसी परस्पर तनाव के समय ईश्वरीय धर्म को प्रचुर करने के लिये सिक्ख सद्गुरुओं द्वारा 'अकाली-वाणी (गुरु वाणी) का अवतरण हुआ। गुरुवाणी के परम प्रकाश में ही "गुरुमत साहित्य" का सृजन हुआ, जिस के सर्व प्रथम लेखक भाई गुरुदास जी भल्ला हैं।

भाई गुरुदास जी भल्ला का संक्षिप्त जीवन परिचय

भाई गुरुदास जी सूर्य वंशी भला जाति में से थे और गुरु अमरदास जी (तीसरे सद्गुरु) के भतीजे थे। आप सिक्खी मण्डल में प्रवेश करके सदा के लिये 'गुरुदास' बन गये।

आप ने गुरु अमरदास जी की शरण में रह कर गुरुमति की शिक्षा प्राप्त की और पूर्णतया सिक्ख धर्म का अध्ययन किया। पश्चात् गुरु-आज्ञा पा कर आगरा, काशी आदि नगरों में रह कर गुरुमत का प्रचार करते हुए स्थान स्थान पर सिक्ख मण्डल स्थापित करते रहे।

चतुर्थ गुरु श्री गुरु रामदास जी के प्रभु पुरि प्रस्थान के उपरान्त आप आगरा से श्री अमृतसर पधारे। तब यहा पर गुरु ज्योति गुरु अर्जुन देव जी में प्रदीप्त हो रही थी। उस ज्योति को बाबा पृथिवी चन्द जी (गुरु अर्जुन देव जी के ज्येष्ठ भ्राता) की ओर से झूट के बादलों द्वारा आच्छादित करने का प्रयत्न हो रहा था। साधारण गुरु श्रद्धालुओं को अन्धेरे की ओर धकेला जा रहा था। भाई गुरुदास जी ने बाबा बुड्ढा जी आदि प्रमुख सिक्खों के सहयोग से इन झूट के बादलों को भगा कर सिख संगतों को सत्य के सूर्य का प्रकाश दिया।

जब गुरु अर्जुन देव महाराज ने अकाली वाणी को एक संचय में सग्रह कर, कलिगुगी जीवों के कल्याणार्थ शब्द बोहिथ तैयार करने का उद्यम किया तो लिखने की सेवा आप के ही सिपुर्द हुई क्योंकि आप पञ्जाबी, हिन्दी, सस्कृत तथा फार्सी आदि भाषाओं के परम विद्वान थे। साथ ही आध्यात्म गुह्य-तत्त्व को भी भली भान्ति समझते थे। आप ने गुरु अर्जुन देव जी की देख रेख में सवत् १६६१ मे (नवम सद्गुरु की वाणी के अतिरिक्त) सम्पूर्ण श्री गुरु ग्रन्थ साहिब लिख कर इस महान कार्य को समाप्त किया।

श्री गुरु हरिगोविन्द (छठे सद्गुरु) जी जब जहांगीर द्वारा ग्वालियर दुर्ग में भेज दिये गये तो पीछे प्रचार आदि का सर्व काम श्री भाई जी को ही सौंपा गया। उन ही दिनों में आप एक बार गुरु महाराज से भेंट के लिये ग्वालियर में भी गये।

अकाल तख्त अमृतसर का निर्माण भी भाई गुरुदास जी की देख रेख में ही हुआ था।

आप का देहान्त १६२६ ई० गोइन्दवाल (अमृतसर) में हुआ। श्री गुरु हरिगोविन्द महाराज ने स्वयम भाई साहिब का अन्तिम सस्कार किया।

स्वभाव—

कविता कवि के हृदय की आवाज होती है। भाई साहिब की रचनाओं को इन कसौटी पर परखने से आप के स्वभाव में नम्रता, दृढ़ता सत्य एवं गम्भीरता आदि

सद्‌गुण विपुल रूप में पाये जाते हैं।

गुरु घर में भाई साहिब का पद वही है जो हिन्दू धर्म में वेद व्यास और श्री शङ्कराचार्य तथा ईसाई धर्म में सेंटपाल का है।

दो अमर कृतियां—

आप की दो अमर कृतियां हमारे पास विद्यमान हैं। एक है "वारां" और दूसरी है "कवित्त सवैये"। 'वारां' की भाषा ठेठ पञ्जाबी और 'कबित्त सवैये' की हिन्दी है। इन दोनों रचनाओं में भाई साहिब ने "गुहज रतन विचि लुकि रहे कोई गुरमुखि सेवकु कढे खोति" के महा वाक्यानुसार गुरू वाणी के गुह्य भावों को ही प्रकट किया है। इसी लिए गुरु महाराज ने आप की रचनाओं को गुरुवाणी की कुञ्जी का वर दिया था। अर्थात् भाई साहिब की रचना गुरु वाणी पर अत्युत्तम भाष्य है। इस की उत्तमता यह है कि यह भाष्य आप ने गुरुदेव के संरक्षण में किया है।

भाई साहिब की रचना पाठकों को सांसारिक ज्ञान से ले कर प्रभु ज्ञान पर्यन्त पहुंचाती है। इस में लौकिक विज्ञान इतना भरा पड़ा है कि पाठक इस से अत्याधिक जानकारी प्राप्त कर सकता है। साधारण वस्तुओं का ज्ञान जैसा आप देते हैं वैसा अन्य मनीषी लेखकों ने कम ही दिया है। यह श्रेष्ट रचना जहां आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिये पथ प्रदर्शक हो सकती है वहां लौकिक विद्याधिकारियों के लिए भी अत्यन्त लाभकारी है।

आप को बहुत सी उपमाएं और दृष्टांत जैसा कि चन्दन का बनस्पति को सुगन्धित करना, चकवी चकवे का विछोह, सूर्य तथा कमल, भंवरा और कमल की प्रीति, कोयल का आमों से प्रेम, बादलों को देख कर मोरों का नाचना, मछली का पानी बिना तड़पना, भ्रम वश मृग का कस्तूरी के लिए भटकना, मारू स्थल में हिरणों का पानी के लिए भागना और घण्डाहेड़े के शब्द पर अपने आप को न्योछावर करना, सर्प का वीना की ध्वनि पर मस्त होना, तीर्थों पर बकों का रहिना, दादुर, दीपक पतङ्ग, चांद-चकोर, चकवी-सूर्य और उल्लू तथा सूर्य आदि' गुरुमत के आदि श्रोत (श्री गुरु ग्रन्थ साहिब) से प्राप्त हुए हैं।

"जहां न पहुँचे रवि। वहां पहुँचे कवि" यह उक्ति सोलह आना सत्य है। कवि की कल्पना एक नया संसार बसा देती है। कवि अपनी कल्पणा शक्ति से कहीं का कहीं पहुंच जाता है। यह कल्पना कवि को अपने अनुभव तथा बहु-मुखी ज्ञान से प्राप्त होती है। अनुभव द्वारा की हुई कल्पना एक नया विषय तैयार कर देती है जो नित्य, अविनाशी तथा नवीनता लिए रहती है।

भाई साहिब का ज्ञान बहु-मुखी था, जैसा कि वेद शास्त्र और पुराणों का गाम्भीर ज्ञान, ज्योतिष तथा, गणित की सूझ, कैमिस्ट्री की सार, फुलवाड़ी और

भाई गुरुदास जी भल्ला का संक्षिप्त जीवन परिचय

भाई गुरुदास जी सूर्य वंशी भला जाति में से थे और गुरु अमरदास जी (तीसरे सद्गुरू) के भतीजे थे। आप सिक्खी मण्डल में प्रवेश करके सदा के लिये 'गुरुदास' बन गये।

आप ने गुरु अमरदास जी की शरण में रह कर गुरुमति की शिक्षा प्राप्त की और पूर्णतया सिक्ख धर्म का अध्ययन किया। पश्चात् गुरु-आज्ञा पा कर आगरा, काशी आदि नगरों में रह कर गुरुमत का प्रचार करते हुए स्थान स्थान पर सिक्ख मण्डल स्थापित करते रहे।

चतुर्थ गुरु श्री गुरु रामदास जी के प्रभु पुरि प्रस्थान के उपरान्त आप आगरा से श्री अमृतसर पधारे। तब यहां पर गुरु-ज्योति गुरु अर्जुन देव जी में प्रदीप्त हो रही थी। इस ज्योति को बाबा पृथिवी चन्द जी (गुरु अर्जुन देव जी के ज्येष्ठ भ्राता) की ओर से फूट के बादलों द्वारा आच्छादित करने का प्रयत्न हो रहा था। साधारण गुरु श्रद्धालुओं को अन्धेरे की ओर धकेला जा रहा था। भाई गुरुदास जी ने बाबा बुड्ढा जी आदि प्रमुख सिक्खों के सहयोग से इन फूट के बादलों को भगा कर सिख सगतों को सत्य के सूर्य का प्रकाश दिया।

जब गुरु अर्जुन देव महाराज ने अकाली बाणी को एक संचय में सग्रह कर, कलियुगी जीवों के कल्याणार्थ शब्द बोहिथ तैयार करने का उद्यम किया तो लिखने की सेवा आप के ही सिपुर्द हुई क्योंकि आप पञ्जाबी, हिन्दी, सस्कृत तथा फार्सी आदि भाषाओं के परम विद्वान थे। साथ ही आध्यात्म गुह्य-तत्त्व को भी भली भान्ति समझते थे। आप ने गुरु अर्जुन देव जी की देख रेख में संवत् १६६१ मे (नवम सद्गुरु की बाणी के अतिरिक्त) सम्पूर्ण श्री गुरु ग्रन्थ साहिब लिख कर इस महान कार्य को समाप्त किया।

श्री गुरु हरिगोविन्द (छठे सद्गुरु) जी जब जहांगीर द्वारा ग्वालियर दुर्ग में भेज दिये गये तो पीछे प्रचार आदि का सर्व काम श्री भाई जी को ही सौंपा गया। इन ही दिनों में आप एक बार गुरु महाराज से भेंट के लिये ग्वालियर में भी गये।

अकाल तख्त अमृतसर का निर्माण भी भाई गुरुदास जी की देख रेख में ही हुआ था।

आप का देहान्त १६२६ ई० गोइन्दवाल (अमृतसर) में हुआ। श्री गुरु हरिगोविन्द महाराज ने स्वयम् भाई साहिब का अन्तिम सस्कार किया।

स्वभाव—

कविता कवि के हृदय की आवाज होती है। भाई साहिब की रचनाओं को इस कसौटी पर कसने से आप के स्वभाव में नम्रता, दृढ़ता सत्य एवं गम्भीरता आदि

सद्‌गुण विपुल रूप में पाये जाते हैं।

गुरु घर में भाई साहिब का पद वही है जो हिन्दू धर्म में वेद व्यास और श्री शङ्कराचार्य तथा ईसाई धर्म में सेंटपाल का है।

दो अमर कृतियां—

आप की दो अमर कृतियां हमारे पास विद्यमान हैं। एक है "वारां" और दूसरी है "कवित्त सवैये"। 'वारां' की भाषा ठेठ पञ्जाबी और 'कबित्त सवैये' की हिन्दी है। इन दोनों रचनाओं में भाई साहिब ने "गुहज रतन विचि लुकि रहे कोई गुरुमुखि सेवकु कढै खोति" के महा वाक्यानुसार गुरू वाणी के गुह्य भावों को ही प्रकट किया है। इसी लिए गुरु महाराज ने आप की रचनाओं को गुरुवाणी की कुञ्जी का वर दिया था। अर्थात् भाई साहिब की रचना गुरु वाणी पर अत्युत्तम भाष्य है। इस की उत्तमता यह है कि यह भाष्य आप ने गुरुदेव के संरक्षण में किया है।

भाई साहिब की रचना पाठकों को सांसारिक ज्ञान से ले कर प्रभु ज्ञान पर्यन्त पहुंचाती है। इस में लौकिक विज्ञान इतना भरा पड़ा है कि पाठक इस से अत्याधिक जानकारी प्राप्त कर सकता है। साधारण वस्तुओं का ज्ञान जैसा आप देते हैं वैसा अन्य मनीषी लेखकों ने कम ही दिया है। यह श्रेष्ठ रचना जहां आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिये पथ प्रदर्शक हो सकती है वहां लौकिक विद्याधिकारियों के लिए भी अत्यन्त लाभकारी है।

आप को बहुत सी उपमाएं और दृष्टांत जैसा कि चन्दन का वनस्पति को सुगन्धित करना, चकवो चकवे का विछोह, सूर्य तथा कमल, भंवरा और कमल की प्रीति, कोयल का आमों से प्रेम, बादलों को देख कर मोरों का नाचना, मछली का पानी विना तड़पना, भ्रम वश मृग का कस्तूरी के लिए भटकना, मारू स्थल में हिरणों का पानी के लिए भागना और घण्डाहेड़े के शब्द पर अपने आप को न्योछावर करना, सर्प का वीना की ध्वनि पर मस्त होना, तीर्थों पर बकों का रहिना, दादुर, दीपक पतङ्ग, चांद-चकोर, चकवी-सूर्य और उल्लू तथा सूर्य आदि' गुरुमत के आदि श्रोत (श्री गुरु ग्रन्थ साहिब) से प्राप्त हुए हैं।

"जहां न पहुँचे रवि। वहां पहुँचे कवि" यह उक्ति सोलह आना सत्य है। कवि की कल्पना एक नया संसार बसा देती है। कवि अपनी कल्पणा शक्ति से कहीं का कहीं पहुंच जाता है। यह कल्पना कवि को अपने अनुभव तथा बहु-मुखो ज्ञान से प्राप्त होतो है। अनुभव द्वारा को हुई कल्पना एक नया विषय तैयार कर देती है जो नित्य, अविनाशी तथा नवीनता लिए रहती है।

भाई साहिब का ज्ञान बहु-मुखी था, जैसा कि वेद शास्त्र और पुराणों का गाम्भीर ज्ञान, ज्योतिष तथा, गणित की सूझ, कैमिस्ट्री की सार, फुलवाड़ी और

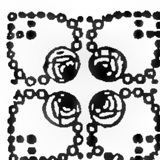
खेती बाड़ी का पता, सदाचारिक विद्या में निष्ठा, इतिहास और भूगोल का ज्ञान, वेश भूषा और भूषणों की जानकारी, शिल्प विद्या, रीति रिवाज का बोध, राज्यनीतिक ज्ञान, द्यूत कारों के दाव-पेच, चोरों का कार्य-क्रम, दम्भियों के दम्भ, दोवाजरों की हेरा फेरी, ठगों की ठगी, कृतघ्नों की कृतघ्नता, मनो-विज्ञान की सूक्ष, नौकर और मालिकों का सम्बन्ध, पति-पत्नी का कर्तव्य, पिता-पुत्र, माता-पुत्र तथा पुत्री का परस्पर वर्ताव, वणिज के ढंग गुरुमुख मनमुख, गुरु सेवक और अन्य-देव-सेवक का मुकावला आदि।

जहां इस जड़वाद के विकास-युग में, ईश्वर और ईश्वरीय चर्चा को व्यर्थ बतलाने, मानने का दुःसाहस किया जा रहा है, जहा परलोक का सिद्धान्त कल्पना प्रसूत समझा जाता है, जहां ज्ञान-वैराग-भक्ति को बातों को अनावश्यक बतलाया जाता है, जहां भौतिक उन्नति को ही मनुष्य-जीवन का परम ध्येय समझा जाने लगा है, जहा केवल इन्द्रिय-सुख ही परम सुख माना जाता है और प्रायः समूचा साहित्य-क्षेत्र जड़-उन्नति के विधायक ग्रन्थों, मौज-शौक के उपन्यासों और गल्पों एवं कुरुचि-उत्पादक शब्दाडम्बर-पूर्ण रसीली कविताओं का प्रबल तूफान आ रहा है। वहां यह रचना अध्यात्मिक जिज्ञासुओं को सघन एव सुदृढ़ विशाल तरुवर की भान्ति आश्रय का का मदेती है।

इस लिये उक्त कमेटी की ओर से गुरुमत प्रेमियों से आग्रह पूर्वक विनय है कि वे इस गुरुमत सिन्धु में पैठ कर "गुह्य रत्न" (आत्म तत्त्व) निकालने का प्रयत्न करें।

इति

हरिभजन सिंह सत



१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

कबित्त-सवैये

भाई गुरुदास जी

•••०O०•••

मंगलाचरण

सोरठा

आदि-पुरख[1] आदेस ओनम[2] श्री सत्गुरुचरण।
[3]घट घट का परवेस एक अनेक बिबेक ससि ॥ १ ॥

दोहरा

ओनम श्री सत्गुरु चरण आदि पुरख आदेस।
एक अनेक बिबेक ससि घट घट का परवेस ॥ २ ॥

कुंडलिया छन्द

घट घट का परवेस सेस[4] पहि कहित न आवै।
नेति[5] नेति कहि नेति बेद बंदीजन[6] गावै ॥
आदि मद्ध अरु अंत [7]हुते हुतहै पुन होनम।
आदि-पुरुख आदेस चरण श्री सत्गुरु ओनम ॥ ३ ॥ १ ॥

सोरठा

अबिगति[8] अलख अभेव अगम अपार अनंत गुरु।
सत्गुरु नानक देव पारब्रह्म[9] पूरनब्रह्म[10] ॥ ४ ॥

दोहरा

अगम अपार अनन्त गुरु, अबिगति अलख अभेव ॥
पारब्रह्म पूरन ब्रह्म सत्गुरु नानक देव ॥ ५ ॥

१-परमात्मा। २-नमस्कार। ३-एक चन्द्रमा के अनेक घटों (जल पात्रों) में प्रवेश (प्रतिबिम्ब) की तरह। ४-शेषनाग। ५-न-इति=यह नहीं है। ६-बन्दिन्, चारण=यश गाने वाले भाट। ७-था, है और होगा। ८-आश्चर्य। ९-निर्गुण। १०-सगुण।

कुंडलिया छन्द

सत्गुरु नानक देव देव देवी सब ध्यावहिं।
[1]नाद बाद विसमाद राग रागनि गुन गावहिं॥
[2]सुन्न समाधि अगाधि साध संगति सपरंपर[3]।
अवगति अलख अभेव अगम[4] अगमिति[5] अपरंपर[6] ॥ ६ ॥ २ ॥

सोरठा

[7]जगमग जोति सरूप, परम जोति मिलि जोति महिं॥
अद्भुत अतिहि अनूप, परम तत्त तत्तहि मिल्यो ॥ ७ ॥

दोहरा

परम जोति मिलि जोत महि, जग मग जोति सरूप।
परम तत्त तत्तहि मिल्यो, अद्भुत अतिहि अनूप ॥ ८ ॥

छन्द

अद्भुत अतिहि अनूप रूप [8]पारस के पारस।
[9]गुरु अंगद मिल अंग संग मिल संग उधारस॥
[10]अकल कला भरपूर सूत्र गति ओत पोत महि।
जगमग जाति सरूप जोति मिल जोति जोति महि ॥ ९ ॥ ३ ॥

सोरठा

[11]अमृत दृष्टि निवास, अमृत बचन अनहद सबद।
सत्गुरु अमर प्रगास, मिल अमृत अमृत भए ॥ १० ॥

दोहरा

अमृत बचन अनहद सबद, अमृत दृस्टि निवास।
मिल अमृत अमृत भए, सत्गुरु अमर प्रगास ॥ ११ ॥

१–सङ्गीत के वाद्य-यन्त्रों की आश्चर्य ध्वनियों द्वारा। २–निर्विकल्प गम्भीर समाधि। ३–सपर-अपर अर्थात् चेतन और जड़। ४–मन बाणी की पहुच से परे। ५–अचिन्त्य। ६–अपर-पर=संसार से परे। ७–(गुरु नानक की) परम ज्योति (अङ्गद देव की) ज्योति में मिल कर 'ज्योतिस्वरूप' हो, जगमगाने लगी। और परम-तत्व, तत्व में मिल जाने से अद्भुत और उपमा रहत हो गया। ८–पारस (रूप गुरू नानक) ने (गुरु अङ्गद को भी) पारस बना दिया)। ९–गुरु नानक के अङ्गों से छू कर (लहना जी) गुरु अङ्गद हुए, अब उन के साथ जो मिला उस का उद्धार होने लगा। १०–कल्पणानोत-शक्ति से परिपूर्ण (ओत-प्रोत) वस्त्र के ततुओं (धागों) की तरह परस्पर गुथ गये। ११–(श्री गुरु अमर देव की) दृष्टि में अमृत का निवास है, तथा वचनों में अमृत-रूप अनहद् शब्द है। सत्गुरु अमर (प्रगास) देव के अमृत-स्वरूप में मिल कर श्री गुरु रामदास भी अमृतमय हो गये।

छन्द

श्री गुरु अमर प्रगास तास चरनामृत पावै।
[1]काम नाम निहकाम, परम पद सहज समावै ॥
[2]गुरमुखि संधि सुगंधि, साधु संगति निज आसन।
अमृत दृस्टि निवास अमृत मुख बचन प्रगासन ॥ १२ ॥ ४ ॥

सोरठा

ब्रह्मासन[3] बिसराम, गुरु भए गुरमुखि संधि मिलि।
[4]गुरमुख रमता राम, राम नाम गुरमुख भए ॥ १३ ॥

दोहरा

गुरु भए गुरमुख संधि मिलि, ब्रह्मासन बिसराम।
राम नाम गुरमुख भए, गुरमुख रमता राम ॥ १४ ॥

छन्द

गुरमुख रमता राम नाम गुरमुख प्रगटायो।
[5]सबद सुरति गुरु ज्ञान ध्यान गुरु गुरू कहायो ॥
[6]दीप जोति मिल दीप जोति जगमग अंतर उर।
गुरमुख रमता राम संधि गुरमुख मिल भए गुरु ॥ १५ ॥ ५ ॥

सोरठा

[7]आदि अंत बिसमाद फल द्रुम गुरुसिख संधि गति ॥
आदि परम परमादि[8] अंत अनंत न जानियैं ॥ १६ ॥

दोहरा

फल द्रुम गुरुसिख संधि गति, आदि अंत बिस्माद ॥
अंत अनंत न जानियै आदि परम परमाद ॥ १७ ॥

१–कामनाओं से निवृत्त हो कर। २–मुख्य सत्गुरु के मिलाप में (ईश्वर भक्ति की) सुगन्धि है। ३–ब्रह्म में जिन की (आसन) स्थिति है। ४–गुरु द्वारा राम नाम का सुमरण करने से (राम) गुरु रामदास जी, मुख्य 'गुरु' हो गए। ५–गुरु के शब्द द्वारा ज्ञान और सुरति (श्रेष्ठ बुद्धि) का ध्यान। ६–जैसे दीपक की ज्योति के साथ मिलने से अन्य दीपक की ज्योति जगमगा उठती है उसी प्रकार (श्री गुरु रामदास के हृदय में भी) ज्योति प्रकाशित हो गयी। ७–जिस प्रकार फल और वृक्ष (द्रुम) के आदि और अन्त की आश्चर्य गति है इस तरह गुरु और शिष्य के मिलाप की रीति भी विचित्र है। ८–(आदि) माया से परे (गुरु अर्जुन देव)।

छन्द

[१]आदि परम परमाद नाद मिलि नाद सबद धुनि ॥
[२]सलिलहि सलिल समाइ नाद सरिता सागर सुनि ॥
नरपति सुत नृप होत जोति गुरमुख गुन गरजन[३] ॥
राम नाम परसादि भए गुरु ते गुरु अरजन ॥ १८ ॥ ६

सोरठा

[४]पूरन ब्रह्म बिबेक आपा आप प्रगास होइ ॥
नाम दोइ प्रभु एक, [५]गुरु गोबिंद वखानियै ॥१६॥

दोहरा

आपा आप प्रगास होइ, पूरन ब्रह्म बिबेक ।
गुरु गोबिंद वखानियै, नाम दोइ प्रभु एक ॥ २० ॥

छन्द

नाम दोइ प्रभु एक टेक गुरमुख ठहराई ।
आदि भए गुरु नाम दुतिय गोबिंद बडाई ॥
हरि गुरु हरि गोबिंद रचन रच थाप उथापन ।
पूरन ब्रह्म बिबेक प्रगट होइ आपा आपन ॥२१॥७॥

सोरठा

[६]बिसमादहि बिसमाद, असचरजहि असचरज गति ।
आदि पुरख परमादि, अद्भुत परमद्भुत भए ॥ २२ ॥

दोहरा

असचरजहि असचरज गति बिसमादहि बिसमाद ।
अद्भुत परमद्भुत भए आदि पुरखु परमाद ॥ २३ ॥

छन्द

आदि पुरख परमाद [७]स्वाद रसि गंधि अगोचर ।
दसटि दरस असपरस सुगति मति सबद मनोचर[८] ।

१-(परमाद) गुरु अर्जुन देव, गुरु रामदास जी से ऐसे अभेद हो ग
जैसे-बाजे की ध्वनि बाजे में ही समा जाती है। २-गुरु शब्द को सुन कर,
अर्जुन इस प्रकार गुरु रामदास में समा गये जैसे समुद्र के जल में नदी का जल स
जाता है। ३-उच्चारण। ४-अपने सगुण रूप का विवेक (विचार) करने के लि
मानो प्रभु स्वयं ही प्रगट हुए। ५-गुरु हरिगोविन्द और परमात्मा के केवल न
ही दो कहे जाते हैं, वास्तव में एक प्रभु ही है। ६-विस्मय पद=आश्चर्य। ७-र
स्वादों और सुगन्धियों से जो परे है। ८-मन की पहुंच से परे।

लोक बेद गति ज्ञान लखे नहि अलख अभेवा।
नेति नेति कर नमो नमो नम सतुगुरु देवा ॥२४॥८॥

वाणी का आरम्भ

कवित्त

दरसन देखत ही सुधि की न सुधि रही,
बुधि की न बुधि रही मति में न मति है।
सुरति[१] में सुरत औ [२]ध्यान में न ध्यान रह्यो,
ज्ञान में न ज्ञान रह्यो गति[३] में न गति है॥
धीरज को धीरज गरब को गरब गयो,
रति में न रति रही [४]पति रति पति है॥
अद्भुत परमद्भुत बिसमै बिसम,
[५]असचरजै असचरज अति अति है॥ १ ॥

दसम स्थान[६] के समान कौन भौन कहौं,
गुरमुख पावै सु तौ अनत[७] न पावई॥
[८]उनमनी जोति पटन्तर दीजै कौन जोति,
दया कै दिखावै जाहिं ताही बन आवई॥
[९]अनहद नाद समसर नाद बाद कौन,
श्री गुरु सुनावै जाहिं सोई लिव लावई॥
[१०]निझर अपार धार, तुल्य न अमृतरस,
अपिउ[११] पियावै जाहिं ताही में समावई॥ २॥

१–ज्ञानवान पुरुषों में। २–ध्यान धरने वालों में ध्यान की ऐकाग्रता न रही। ३–रीति, मर्यादा। ४–(गुरु द्वारा प्राप्त हुई) प्रतिष्ठा के सामने दूसरी प्रतिष्ठा तुच्छ (रत्ती) मात्र है। ५–सतगुरु भूत, भविष्य एव वर्त्तमान तीन कालों में अत्यन्त आश्चर्य हैं। ६–दशम द्वार (सत्सङ्गति)। ७–अन्य। ८–मन को उन्नत रखने वाली ज्ञान-भूमिका की ज्योति के समान दूसरी ज्योति कौन सी कही जाय। ९–अलौकिक हरि कीर्त्तन के नाद। १०–आत्मानन्द की निरन्तर बहने वाली अपार धारा। ११–अमृत।

गुरुसिख संधि मिले [1]बीस इक ईस ईस,
इत ते उलंघ उत जाइ ठहरावई ॥
चरम द्रसटि मूंद पेखै दिव्य द्रसटि कै,
जग मग जोति उनमनी[2] सुधि पावई ॥
सुरति संकोचत ही बज्जर कपाट खोल,
नाद बाद परै अनहत् लिव लावई ॥
बचन बिसरजित[3] अनरस रहित ह्वै,
निज्झर अपार धार अपिउ पियावई ॥ ३ ॥

जौ लौ अन रस बस तौ लौ नहीं प्रेम रस,
जौ लौ आन ध्यान आप आपा[4] नहीं देखियै ।
जौ लौ आन ज्ञान तौ लौ नहीं अध्यात्म ज्ञान,
[5]जौ लौ नाद बाद न अनाहद बिसेखियै ॥
जौ लौ अहंबुधि सुधि होइ न अंतरगति,
जौ लौ न लखावै तौ लौ अलख न लेखियै ॥
सत्य रूप सत्यनाम सत्यगुरु ज्ञान ध्यान,
एक ही अनेकमेक[6] एक एक भेखियै ॥ १२ ॥

नाना मिसटान्न पान बहु बिंजनादि[7] स्वाद,
सींचत सरब रस रसना कहाई है ॥
[8]द्रसटि दरस अरु सबदु सुरति लिव,
[9]ज्ञान ध्यान सिमरन अमित बडाई है ॥
[10]सकल सुरति असपरस औं राग नाद,
बुद्धि-बल बचन बिबेक टेक पाई है ॥

१-संसार को पार कर एक ईश्वर में स्थित होते हैं। २-ज्ञानावस्था। ३-बकवाद को त्याग देने से। ४-आत्मस्वरूप। ५-जब तक अन्य (वाद्य आदि) शब्दों में रुचि है, तब तक कोई अनहद शब्द की विशेषता को नहीं जान सकता। ६-अनेक में मिला हुआ एक। ७-व्यञ्जन-शाक तरकारी आदि। ८-दर्शन देखने वाली दृष्टि और शब्द में लिव (प्रीति) रखने वाली सुनने की शक्ति (कान)। ९-ज्ञान-ध्यान और सिमरण द्वारा असीम कीर्त्ति की प्राप्ति। १०-समस्त सुरति (चेतना) से स्पर्श तथा सङ्गीत, और बुद्धि-बल के वचनों द्वारा ज्ञान के आधार की प्राप्ति।

[1]गुरुमत सत्यनामु सिम्रत सफल होइ,
बोलत मधुर धुनि सुन सुखदाई है ॥ १३ ॥

[2]प्रेम रस बस ह्वै पतंग संगम न जानै,
बिरह बिछोह मीन ह्वै न मर जाने है ॥
दरस धिआन जोति में न ह्वै जोती स्वरूप,
चरन बिमुख होइ प्रान ठहिराने है ॥
[3]मिल बिछुरत गति प्रेम न बिरह जानी,
मीन औ पतंग मोहि देखत लजाने है ॥
मानस जनम ध्रिग धन्य है त्रिगद जोनि,
कपट सनेह देह नरक न माने है ॥ १४ ॥

गुरमुख सुखफल[4] स्वाद बिसमाद अति,
अकथ कथा बिनोद[5] कहित न आवई ॥
गुरमुख सुखफल गंध[6] परमदभुत,
सीतल कोमल परसत बन आवई ॥
गुरमुख सुखफल महिमा अगाध बोध,
[7]गुरुसिख संधि मिले अलख लखावई ॥
गुरमुख सुखफल अंग अंग कोटि सोभा,
मया कै दिखावै सो तो अनत[8] न धावई ॥ १५ ॥

उलट पवन मन मीन की चपल गति,
सतगुरु परचे परम पद पाए हैं ॥
[9]सूर सरु सोख पोख सोम सर पूरन कै,

१–(उक्त सब) गुरुमत को सत्य मान कर 'सत्य नाम' का स्मरण करने से सफल होते हैं। २–मैं प्रेम रस के वश में हो कर पतङ्ग की भान्ति मिलाप को नहीं जान पाया तथा मछली की तरह बिरह में मर जाना भी न सीख सका। ३–प्रेम में मिलाप तथा बिरह में बिछुड़ने की मर्य्यादा को नहीं पाया हूँ। ४–ज्ञान। ५–कौतुक। ६–भक्ति रूप सुगन्धि। ७–शिष्य गण, गुरु की सन्धि (मिलाप) से अलक्ष (प्रभु) को जान लेते हैं। ८–अन्यत्र। ६–इड़ा (दायीं ओर की नासिका) द्वारा प्राणों को सोख (चढ़ा) कर, पिंगला (बायीं ओर की नासिका) द्वारा पूर्ण कर के मृत-सर (श्वासों) में मन को रोकते हुए अमृत का रसास्वादन करते हैं।

बंधन दै मूंत्र सर अपिअ पीआए है ॥
[1]अजरहि जार मार अमरहि भ्रांति छोड,
असथिर कंध हंम अनत न धाए है ॥
[2]आदै आद नादै नाद सलिलै सलिल मिल,
ब्रह्मै ब्रह्म मिल सहज समाए है ॥ १६ ॥

चिरंकाल मानस जनम निरमोल पाए,
सफल जनम गुरु चरन सरन कै ।
लोचन अमोल गुरु दरस अमोल देखे,
स्रवन अमोल गुरु बचन धरन कै ॥
नासिका अमोल चरनारबिंद बासना कै,
रसना अमोल गुरु मंत्र सिमरन कै ॥
हसत अमोल गुरुदेव सेव कै सफल,
चरन अमोल परदच्छना करन कै ॥ १७ ॥

दरस धिआन दिब्ब द्रसटि प्रगास भई,
[3]करुणा कटाच्छ दिब्ब देहि परवान है ॥
[4]सबद सुरति लिव बज्जर कपाट खुले,
प्रेम रस रसन कै अमृत निधान है ॥
चरन कमल मकरंद बासना सुबासु,
हसत पूजा प्रनाम सफल सुग्यान है ॥
अंग अंग बिसम सर्बंग में समाइ भए,
मन मनसा थकित ब्रह्म धिआन है ॥ १८ ॥

१–अजर (असह्य) वासनाओं को जला, तथा अमर (मन) को मार कर, भ्रम का त्याग करते हुए, कन्ध (शरीर) को स्थिर रखते हैं (इन का) हंस (जीवात्मा) अन्यत्र नहीं भटकता। २–आदि तत्व (आकाश) में आदि तत्व मिल गया, तथा नाद (शब्द) का कारण वायु, वायु तत्व में एवं जल, जल में, जा मिला, तब वे ब्रह्म में मिल जाने पर सहजानन्द में समा गये। ३–(सद्गुरु) की कृपा दृष्टि द्वारा शरीर दिव्य-स्वरूप तथा माननीय हो गया। ४–शब्द की ज्ञात में प्रीति होने से (अज्ञान के) वज्र जैसे किवाड़ खुल गये, प्रेम रस में प्रवृत्त होने से जिह्वा अमृत का भण्डार हो गयी।

गुरमुख सुख-फल[1] अति असचरज-मय,
हेरत हिराने आन ध्यान बिसराने है ॥
गुरमुख सुख-फल गंध रस बिसम है,
अनरस बासना बिलास न हिताने है ॥
गुरमुख सुख-फल अदभुत-असथान[2],
[3]देख मृत-मंडल असथल न लुभाने है ॥
गुरमुख सुख-फल संगत मिलाप देख,
आन ज्ञान ध्यान सब नीरस कै जाने है ॥ १९ ॥

गुरमुख सुख-फल दया कै दिखावै जाहिं,
ताहिं आन रूप रंग देखे नाहि भावई ॥
गुरमुख सुख-फल मया कै चखावै जाहिं,
ताहिं अनरस नहीं रसना हितावई ॥
गुरमुख सुख-फल अगहु[4] गहावै जाहि,
सरब निधान परसन कौ न धावई ॥
गुरमुख सुख-फल अलख लखावै जाहिं,
अकथ कथा बिनोद[5] वाही बन आवई ॥ २० ॥

सिद्धनाथ जोगी जोग ध्यान मै न आन सकै,
बेद पाठ कर ब्रह्मादिक न जाने हैं ॥
अध्यातम ज्ञान कै न सिव सनकादि पाए,
जग्ग भोग मै न इंद्रादिक पहिचाने हैं ॥
नाम सिमरन कै सेखादिक न संख्या जानी,
ब्रह्मचरज कै नारदादिक हिराने हैं ॥
नाना अवतार कै अपार को न पार पायो,
पूरन ब्रह्म गुरुसिख मन माने हैं ॥ २१ ॥

१—प्रेम अथवा ज्ञान। २—सत्संगति। ३—मृत मण्डल (जगत्) के देवालय आदि स्थानों को देख कर उन के मन में लोभ उत्पन्न नहीं होता। ४—अग्राह्य। ५—कौतक।

गुरु उपदेस रिदै निम्रता निवास जास,
ध्यान गुरु मूरति कै पूरन ब्रह्म है ॥
[1]गुरमुख सबद सुरति उनमान ज्ञान,
सहजि सुभाइ सरबातम कै सम है ॥
हौमै त्याग त्यागी [2]बिसमाद कै बैरागी भए,
मन उनमनि लिव गंमता अगंम है ॥
[3]सूखम सथूल मूल एक ही अनेक मेक,
जीवन मुकति नमो नमो नमो नम है ॥ २२॥

[4]दरसन जोति न जोती सरूप ह्वै पतंग,
सबद सुरति मृग जुगति न जाने है ।
[5]चरन कमल मकरंद मधुकर गति,
बिरह बियोग ह्वै न मीन मर जाने है ॥
एक एक टेक न टरत है तृगध जोनि,
[6]चातुर चतुर गुन होइ न हिराने है ।
पाहन कठोर सत्गुरु सुख सागर मैं,
सुन मम नाम जम नरक लजाने है ॥ २३ ॥

[7]गुरमति सत्य कर चंचल अचल भए,
महा मल मूत्र धारी निरमल कीने हैं ।
गुरमति सत्य कर जोनि कै [8]अजोनि भए,

१–गुरु प्रायण हो कर (सुरति) वृत्ति में शब्द के ज्ञान का (उनमान) विचार करते हैं तथा शान्त भाव से आत्मा को सब में समान रूप से व्यापक मानते हैं। २–आश्चर्य रूप प्रभु के प्रेमी हुए, मन की वृत्तियों को उस (उनमन) प्रभू में लगा रखा है जो गम्यता से अगम्य है। ३–अनेक सूक्ष्म तथा स्थूल वस्तुओं के मूल में, जिस पुरुष ने, एक को मिला हुआ देख लिया है, उस नमस्कार योग्य जीवन-मुक्त को मन बाणी तथा शरीर द्वारा नमस्कार हो। ४–न तो हम पतंगे की तरह गुरु-दर्शन की ज्योति में, ज्योति-स्वरूप ही हुए और न मृग की भान्ति शब्द को सुनने की युक्ति ही जान पाये। ५–न गुरु जी के चरण-कमलों की सुगन्धि पर भवर की सी गति प्राप्त की और न हम ने मछुली की तरह गुरु के वियोग में प्राणों का त्याग करना ही सीखा। ६–चतर (मनुष्य) में उक्त चारों गुणों में से एक भी नहीं है, यह

काल से अकाल कै अमर पद दीने हैं ॥
गुरुमति सत्य कर हौंमै[1] खोइ होइ [2]रेनु,
[3]त्रिकुटी त्रिवेनी पार आपा आप चीने हैं।
गुरुमति सत्य कर [4]बरन अबरन भे,
भय भ्रम निवार डार निरभय कै लीने हैं॥ २४॥
गुरुमति सत्य कर अधम असाधु साधु,
गुरुमति सत्य कर जंतु संत नाम है।
गुरुमति सत्य कर अबिबेकी ह्वै बिबेकी,
गुरुमति सत्य कर काम निहकाम है॥
गुरुमति सत्य कर अज्ञानी ब्रह्म ज्ञानी,
गुरुमति सत्य कर [5]सहज बिस्राम है।
गुरुमति सत्य कर जीवन मुक्त भए,
गुरुमति सत्य कर निहचल धाम है॥ २५॥
गुरुमति सत्य कर बैर निरबैर भए,
पूरन ब्रह्म गुरु सरब मैं जाने हैं।
गुरुमति सत्य कर [6]भेद निरभेद भए,
[7]दुबिधा बिधि निखेध खेद बिनसाने हैं॥
गुरुमति सत्य कर [8]बायस परमहंस,
ज्ञान अंस, [9]बंस निरगंध गंध ठाने हैं।
गुरुमति सत्य कर करम भरम खोइ,
आसा मै निरासा ह्वै बिस्वास उर आने हैं॥ २६॥
गुरुमति सत्य कर [10]सिंबल सफल भए,
गुरुमति सत्य कर[11]बांस में सुगंध है।

१–अहम्मेव=देहाभिमान। २–धूलि। ३–इड़ा, पिङ्गला और सुखमना की त्रिकुटि-रूप त्रिवेणी के पार अपने आत्म-स्वरुप को पहिचान लेते हैं। ४–ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों से अवर्ण। ५–शान्तावस्था में। ६–जीव और ईश्वर के भेद से अभेद (मुक्त) हुए। ७–द्वैत मे जो विधि और निषेध का झगड़ा था, वह नष्ट हो गया। ८–काग। ९–बांस। १०–सेंबल की तरह (ज्ञान) फल से वञ्चित। ११–बांस-वत अहंकारियों (के हृदय) में भी नम्रता की सुगन्धि भर गयी।

गुरुमति सत्य कर कंचन मनूर[१] भए,
गुरुमति सत्य कर परखत अंध है ॥
गुरुमति सत्य कर [२]कालकूट अमृत है,
काल मैं अकाल भए असथिर कंध[३] है।
गुरुमति सत्य कर जीवन मुकत भए,
[४]माया मैं उदास बास बंध निरबंध है ॥ २७ ॥

[५]सबद सुरति लिव गुरुसिख संधि मिले,
ससि घर सूर पूर निज घर आए हैं।
[६]उलट पवन मन मीन त्रिबेनी प्रसंग,
त्रिकुटी उलंघ सुख सागर समाए है ॥
त्रिगुन[७] अतीत चतुरथ-पद[८] गंमता कै,
निझर[९] अपार धार अमिय[१०] चुआए हैं।
[११]चकई चकोर मोर चात्रिक अनंद मई,
[१२]कदली कमल सो बिमल जल छाए हैं ॥ २८ ॥

सबद सुरत लिव गुरुसिख संधि मिले,
[१३]पंच परपंच मिटे पंच परधाने हैं।
भागे मैं भरम भेद, काल औ करम खेद,
लोग बेद उलंघ उदोत[१४] गुरु ज्ञाने हैं ॥

१–लोह। २–विषरूप माया अमृत रूप हुई। ३–शरीर। ४–गृहवास में रहते हुए, माया में उदास रहते हैं। ५–गुरु शिष्य की सन्धि मिलने से शब्द की ज्ञात में लिव (प्रीति) लगी, (ससि घर) चन्द्रमा के गृह (अन्त करण) में (सूर) प्रकाश को पूर्ण करके स्व-स्वरूप में आ गये हैं। ६–प्राणों को उलटने से मछली की तरह वह चंचल मन, इड़ा पिंगला और सुखमना की त्रिवेणी के संगम को पार कर के आनन्द सागर में समा गया है। ७–रज, तम, सतगुण मय संसार। ८–सच खण्ड। ९–श्रोत। १०–अमृत। ११–जैसे चकवी सूर्य को, चकोर चन्द्रमा को मोर तथा चात्रिक बादलों को देख कर आनन्द मानते हैं (उसी तरह उक्त अमृत प्राप्त-शिष्य आनन्दित होता है। १२–निर्मल जल छाया हुआ होने से केला और कमल की भान्ति विक्सित हुए हैं। १३–पाच (कामादि वासनाए) मिट गयीं तथा पांच (सत्य सन्तोष आदि सद्गुणों का प्राधान्य हो गया। १४–उदय।

[1]माया औ ब्रह्म सम दसम दुआर पार,
अनहद रुणभुण वाजत निसाने हैं।
[2]उनमन मगन गगन जग-मग जोति,
निज्झर अपार धार परम निधाने हैं॥ २९॥

गृह मै गृहसती ह्वै पायो न [3]सहज घर,
बन बनवास न [4]उदासि फल पायो है।
पढ़ पढ़ पंडित न अकथ कथा बिचारी,
सिद्धासन कै न [5]निज आसन दृढ़ायो है॥
जोग ध्यान धारन कै नाथन न देखै नाथ[6],
जग्ग भोग पूजा कै न अगहु[7] गहायो है।
देवी देव सेव कै न [8]अहंमेव टेव टारी,
[9]अलख अभेव गुरु देव समझायो है॥ ३०॥

त्रिगुन अतीत [10]चतुरथ गुन गंमिता कै,
पंच तत उल्लंघ परम तत वासी है।
खट रस त्याग प्रेम रस कौ प्राप्त भए,
[11]पूर सुर सपत अनहद अभ्यासी है॥
[12]असट सिद्धांत भेद नाथन कै नाथ भए,
दसम स्थल सुख सागर बिलासी है।

१–माया मे ब्रह्म को समान रूप से व्यापक देखा और दशम द्वार का पार (रहस्य) पा लिया। २–उन्मनि (तुरीय) अवस्था में मग्न, गगन (दशम द्वार) में प्रकाशित ज्ञान-ज्योति के प्रकाश में अमृत भण्डार की निज्झर अपार धारा (का रस) प्राप्त करते हैं। ३–ज्ञानावस्था अथवा स्व-स्वरूप। ४–त्याग का श्रेष्ठ-फल (ज्ञान) प्राप्त नहीं कर पाये हैं। ५–निज-स्वरूप मे दृढ़ता प्राप्त न हुई। ६–परमात्मा। ७–काबू में न आने वाला, प्रभु। ८–अहङ्कार का स्वभाव। ९–गुरुदेव ने ही अलक्ष और रहस्य मय परमात्मा (का ज्ञान) समझाया है। १०–चौथे गुण (ज्ञान) की गम्यता प्राप्त की और पांच तत्वों (देहि) के अध्यास से पार हो कर परम तत्व स्वरूप (ईश्वर) में निवास किया। ११–सात स्वरों (सा० रे० गा० आदि) को त्याग कर अनहद-शब्द के अभ्यास में लगे। १२– आठ अणिमा' महिमा आदि सिद्धियों के रहस्य को जान कर नाथों के नाथ (योगी) हुए।

उनमन मगन गगन ह्वै निज्झर झरै,
[1]सहज समाधि गुरु परचै उदासी है ॥ ३१ ॥

दुबिधा[2] निवार [3]अबरन ह्वै बरन बिखै,
पांच परपंच न दरस अदरस है।
परम पारस गुरु परस पारस भए,
कनिक अनिक धात आपा अपरस[4] है ॥
[5]नव-द्वार पार ब्रह्मासन सिंहासन मै,
निज्झर [6]झरन रुचित न अनरस है।
गुरुसिख संधि मिले बीस* इकईस ईस,
अनहद गद गद अभर भरस है ॥ ३२ ॥

चरन कमल भज कमल[7] प्रगास भए,
[8]दरस दरस सम-दरस दिखाए हैं।
सबद सुरति अनहद लिवलीन भए,
उन मन मगन गगन पुर छाए हैं ॥
प्रेम रस बस होइ बिसम बिदेह[9] भए,
अति असचरज मय [10]हेरत हिराए हैं।
[11]गुरमुखि सुखफल महिमा अगाध बोध,
अकथ कथा बिनोद कहत न आए हैं ॥ ३३ ॥

दुरमति मेट गुरुमति हिरदै प्रगासी,
खोइ कै अज्ञान जाने ब्रह्म गिआने हैं।

१–गुरु के प्रेम में संसार से उदासीन रह कर ज्ञानावस्था में समाधिस्थ हुए हैं। २–द्वैत। ३–चार वर्णों में रहते हुए अवर्ण हो गये, (उन में) पांच प्रपञ्च (विकार) भी न रहे एवं षट्-दर्शन से अदर्शन हुए। ४–अस्पर्श (अमूल्य)। ५–नवद्वारों वाली देहि के अध्यास को पार कर के ब्रह्मासन (सत्सङ्गति) रूप सिंहासन पर आरूढ़ हुए। ६–ज्ञानामृत के स्रोत ७–हृदय रूप। ८–गुरु-दर्शन (मूर्त्ति) के दर्शन से उसे सब जगह समदर्श (समान रूप से व्यापक) देखा है। ९–देहाध्यास से मुक्त। १०–देख कर विस्मय हुए हैं। ११–गुरु-मुख= गुरु उपदेश पर चलने वालों के ज्ञान स्वरूप सुख-फल की महिमा का ज्ञान अथाह है।

*जैसे निश्चय पूर्वक बात कहने के लिए सोलहों आने का प्रयोग होता है, क्यों कि एक रुपये के सोलह आने होते हैं वैसे ही एक बीघा भूमि के बीस-बिस्वे होते हैं इस से 'बीस बिस्वे' का भावार्थ है, विश्वास पूर्वक।

दरस धिआन आन ध्यान बिसिमरन कै,
सबद सुरत मोन व्रत परवाने[1] हैं ॥
प्रेम रस रसिक ह्वै अनुरस रहित ह्वै,
[2]जोति मैं जोति सरूप सोहं सुरताने हैं।
गुरुसिख संधि मिले [3]बीस इकईस ईस,
पूरन बिवेक टेक एक हिये आने हैं॥ ३४ ॥

रोम रोम कोटि ब्रह्माण्ड को निवास जास,
मानस औतार धार दरस दिखाए हैं।
जां के ओंकार के अकार हैं नाना प्रकार,
श्री मुख सबद गुरु सिक्खन सुनाए हैं ॥
[4]जग्ग भोग नईवेद जगत भगत जाहिं,
असन बसन गुरु सिक्खन लडाए हैं।
निगम[5] सेखादिक[6] कथित नेति नेति कर,
पूरन ब्रह्म गुरु सिक्खन लखाए हैं ॥ १ ॥ ३५ ॥

निर्गुन सगुन कै अलख अबिगति रूप,
पूरन ब्रह्म गुरु रूप प्रगटाए हैं।
सरगुन श्री गुरु दरस कै धिआन रूप,
अकल अकाल गुरु सिक्खन दिखाए हैं ॥
निरगुन श्री गुरु सबद अनहद धुनि,
सबद सु वेदी गुरु-सिक्खन सुनाए हैं ॥
चरण कमल मकरंद निहकाम धाम,
गुरुसिख मधुकर गति लपटाए हैं ॥ २ ॥ ३६ ॥

१-प्रमाणीक स्वीकार किया है। २-परमात्मा की ज्योति में ज्योति स्वरूप हो कर 'वह मैं हूं' के ज्ञान में (सुरताने=) वृत्ति को लगाते हैं। ३-बीस बिस्वे निश्चय पूर्वक ईश्वरों के एक ईश्वर के पूर्ण ज्ञान की टेक अपने हृदय में रखे हुए हैं। ४-जगत् के भक्त लोग जिस के लिये यज्ञ करते भोग लगाते तथा नैवेद्य कर्म करते हैं, वह गुरु स्वरूप हो कर स्व-शिष्यों को भोजन और वस्त्र दे कर लाड लडाया करते हैं। ५-वेद। ६-शेषनागादि।

[१]पूरन ब्रह्म गुरु बेल ह्वै चंबेली जाति,
मूल साखा पत्र कर बिबिध बिथार है।
गुरु सिख पुहप सुबास निज रूप तां मैं,
प्रगट ह्वै करत संसार को उद्धार है।
तिल मिल बासना सुबास को निवास कर,
[२]आपा खोइ होइ है फुलेल महिकार है।
गुरमुखि मारग मैं पतित पुनीत रीति,
संसारी ह्वै निरंकारी पर-उपकार है॥ ३ ॥ ३७ ॥

[३]पूरन ब्रह्म गुरु बिरख बिथार धार,
मूल कंद साखा पत्र अनिक प्रकार है।
[४]तां मै निज-रूप गुरुसिख फल को प्रगास,
बासना सुबास औ सुआद उपकार है॥
चरन कमल मकरंद[५] रस रसिक ह्वै,
[६]चाखे चरणामृत संसार को उद्धार है।
गुरमुखि मारग महातम अकथ कथा,
नेति नेति नेति नमो नमो नमस्कार है॥ ४ ॥ ३८ ।

बरन बरन बहु बरन गोबंस जैसे,
एक ही बरन दुहे दूध जग जानियें।
[७]अनिक प्रकार फल फूल कै बनासपती,
एकै रूप अगनि सरब में समानियें॥

चतुर बरन पान चूना औ सुपारी काथा,
आपा खोइ मिलत अनूप रूप ठानियै।
[1]लोगन मै लोकाचार गुरुमुख एकंकार,
सबद सुरत उनमन उनमानियै ॥ ५ ॥ ३६ ॥

[2]सीचत सलल बहु बरन बनासपती,
चंदन सुबास एकै चंदन बखानियै।
पर्वत बिखै उतपत ह्वै असट धातु,
पारस परस एकै कंचन कै जानियै ॥
निस अंधकार तारा मंडल चमतकार,
दिन दिनकर जोत एकै परवानियै।
[3]लोगन मै लोकाचार गुरमुख एकंकार,
सबद सुरत उनमन उनमानियै ॥ ६ ॥ ४० ॥

जैसे कुल बधू गुरु जन मैं घुंघट पट,
सिहजा[4] संजोग समै अंतर न पीअ[5] सै।
[6]जैसे मणि अच्छत कुटंब ही सहत अहि,
बंकत न सूधो बिल पैसत ह्वै जीअ सै ॥
[7]मात पिता अच्छत न बोलै सुत बनिता सै,
पाछै कै दै सरबंस मोह सुत तीअ सै।
लोगन मै लोकाचार गुरमुख एकंकार,
सबद सुरत उनमन मन हीअ सै ॥ ७ ॥ ४१ ॥

१-(उक्त प्रकार से) गुरुमुख लोग लोकाचार में भिन्न भिन्न रहते हुए भी एक ओंकार की उपासना करते एवं शब्द की ज्ञात तुरिय पद का विचार करते हैं। २-जल के सींचने से अनेक तरह की वनस्पति उत्पन्न होती हैं किन्तु केवल चन्दन की सुगन्धि ही उसे चन्दन बना पाती है। ३-वनस्पति, अष्टधातु और तारिका मण्डल की भांन्ति लोकाचार में रहतेहुए भी गुरुमुख, चन्दन पारस और सूर्यकी तरह विशिष्ट सद्गुणों संयुक्त हैं। ४-शय्या-सेज। ५-पति। ६-मणि वाला सर्प कुटुम्ब में रहता हुआ भी तिरछा पन नहीं छोड़ता, परन्तु (वह भी) बिल में प्रवेश करते समय सीधा हो जाता है। ७-माता-पिता के सामने पुत्र अपनी पतनी से बात नहीं करता किन्तु अकेले में मोह वश स्त्री को सर्वस्व दे देता है।

[१]पूरन ब्रह्म गुरु बेल ह्वै चंबेली गति,
मूल साखा पत्र कर बिबिध बिथार है।
गुरु सिख पुहप सुबास निज रूप तां में,
प्रगट ह्वै करत संसार को उद्धार है।
तिल मिल बासना सुबास को निवास कर,
[२]आपा खोइ होइ है फुलेल महिकार है।
गुरमुखि मारग मैं पतित पुनीत रीति,
संसारी ह्वै निरंकारी पर-उपकार है॥ ३ ॥ ३७ ॥

[३]पूरन ब्रह्म गुरु बिरख बिथार धार,
मूल कंद साखा पत्र अनिक प्रकार है।
[४]तां मै निज-रूप गुरसिख फल को प्रगास,
बासना सुबास औ सुआद उपकार है॥
चरन कमल मकरंद[५] रस रसिक ह्वै,
[६]चाखे चरणामृत संसार को उद्धार है।
गुरमुखि मारग महातम अकथ कथा,
नेति नेति नेति नमो नमो नमस्कार है॥ ४ ॥ ३८ ॥

बरन बरन बहु बरन गोबंस जैसे,
एक ही बरन दुहे दूध जग जानियै।
[७]अनिक प्रकार फल फूल कै बनासपती,
एकै रूप अगनि सरब में समानियै॥

चतुर बरन पान चूना औ सुपारी काथा,
आपा खोइ मिलत अनूप रूप ठानियै।
[1]लोगन मै लोकाचार गुरुमुख एकंकार,
सबद सुरत उनमन उनमानियै ॥ ५ ॥ ३६ ॥

[2]सींचत सलल बहु बरन बनासपती,
चंदन सुबास एकै चंदन बखानियै।
पर्वत बिखै उतपत ह्वै असट धातु,
पारस परस एकै कंचन कै जानियै ॥
निस अंधकार तारा मंडल चमतकार,
दिन दिनकर जोत एकै परवानियै।
[3]लोगन मैं लोकाचार गुरुमुख एकंकार,
सबद सुरत उनमन उनमानियै ॥ ६ ॥ ४० ॥

जैसे कुल वधू गुरु जन मैं घुंघट पट,
सिहजा[4] संजोग समै अंतर न पीअ[5] सै।
[6]जैसे मणि अच्छत कुटंब ही सहत अहि,
चंकत न सूधो बिल पैसत ह्वै जीअ सै ॥
[7]मात पिता अच्छत न बोलै सुत वनिता सै,
पाछै कै दै सरबंस मोह सुत तीअ सै।
लोगन मै लोकाचार गुरमुख एकंकार,
सबद सुरत उनमन मन हीअ सै ॥ ७ ॥ ४१ ॥

१-(उक्त प्रकार से) गुरुमुख लोग लोकाचार में भिन्न भिन्न रहते हुए भी एक ओंकार की उपासना करते एवं शब्द की ज्ञात तुरिय पद का विचार करते हैं। २-जल के सींचने से अनेक तरह की वनस्पति उत्पन्न होती है किन्तु केवल चन्दन की सुगन्धि ही उसे चन्दन बना पाती है। ३-वनसपति, अष्टधातु और तारिका मण्डल की भांन्ति लोकाचार में रहतेहुए भी गुरुमुख, चन्दन पारस और सूर्यकी तरह विशिष्ट सद्गुणों संयुक्त हैं। ४-शय्या-सेज। ५-पति। ६-मणि वाला सर्प कुटुम्ब में रहता हुआ भी तिरछा पन नहीं छोड़ता, परन्तु (वह भी) बिल में प्रवेश करते समय सीधा हो जाता है। ७-माता-पिता के सामने पुत्र अपनी पतनी से बात नहीं करता किन्तु अकेले में मोह वश स्त्री को सर्वस्व दे देता है।

[1]जोग बिखै भोग अरु भोग त्रिखै जोग जत,
गुरमुख पंथ जोग भोग से अतीत है।
[2]ज्ञान बिखै ध्यान अरु ध्यान बिखै बेधे ज्ञान,
गुरुमत गत ज्ञान ध्यान कै अजीत हैं॥
[3]प्रेम कै भगत अरु भगत कै प्रेम नेम,
अलख भगत प्रेम गुरुमुख रीत है।
[4]निर्गुन सगुन बिखै बिसम बिस्वास रिद,
बिसम बिस्वास पार पूरन प्रतीत है॥ ८॥ ४२॥

किंचत कटाच्छ दिब्ब देहि दिब्ब द्रस्टि होइ,
[5]दिब्ब जोति कै धिआन दिब्ब द्रस्टांत कै।
[6]सबद बिवेक टेक प्रगट ह्वै गुरुमत,
अनहद गंम उनमनी कै मतांत कै॥
ज्ञान ध्यान करनी कै उपजत प्रेम रस,
[7]गुरुमुख सुख प्रेम नेम निज क्रांत कै।
चरन कमल दल संपट मधुप गति,
सहज समाध मधु पान प्रान सांत[8] कै॥ ९॥ ४३॥

सूआ गहि नलनी कौ उलट गहावै आप,
हाथ सै छुडाए छाडै पर बस आवई॥

१–भोगी (सासारिक) लोगों की योग में तथा योगी जनों की भोग में (इच्छा

तैसे बारंबार टेर टेर कहे पठो पठो,
आपनो ही नाउँ सीख आप ही पढ़ावई ॥
रघुवंसी राम नाम [1]गाल जामनी सु भाखा,
संगत सुभाव गति बुद्धि प्रगटावई।
तैसे गुरु चरन सरन साध संग मिले,
[2]आप आप चीने गुरुमुख सुख पावई ॥ १० ॥ ४४ ॥

[3]द्रस्टि महि दरस दरस महि द्रस्टि द्रग,
द्रसटि दरस अदरस गुरु ध्यान है।
सबद मै सुरत[4] सुरत मैं सबद धुनि,
सबद सुरत अगमिति[5] गुरु ज्ञान है ॥
ज्ञान ध्यान करनी[6] कै प्रगटत प्रेम रस,
गुरुमति गति प्रेम नेम निरवान[7] है।
पिंड प्रान प्रानपति बीस[8] को बरतमान,
[9]गुरुमुख सुख इकईस मो निधान है ॥ ११ ॥ ४५ ॥

[10]मन बच कर्म ह्वै एकत्र छत्रपति भए,
सहज सिंहासण कै निहचल राज है।
[11]सत्य औ संतोख दया धरम अरथ मेल,
पंच परवान किये गुरुमत साज है ॥
सकल पदारथ औ सरब निधान सभा,
[12]सिव नगरी सुबास कोट छवि छाज है ॥

१–यवन भाषा (फारसी आदि) वाले अथवा गाली। २–निज स्वरूप को जान लेने से गुरुमुख (अनन्त) सुख प्राप्त करते हैं। ३–(संसार के उपासकों की) दृष्टि में दर्शन और दर्शन में आंखें गड़ी रहती हैं, परन्तु (श्री) गुरु जी का ध्यान, दृष्टि के दर्शन से रहित है। ४–कान। ५–जो न जाना जा सके। ६–क्रिया। ७–शून्य। ८–विश्व। ९–गुरुमुख एक ईश्वर में सुख की निधि (प्राप्त कर) लेते हैं। १०–मन, वाणी तथा शरीर को ऐकाग्र कर लेने से सम्राट हुए हैं, ज्ञान के सिंहासन पर अचल राज्य का उपभोग कर रहे हैं। ११–सत्य सन्तोष आदि के (मेल) समुदाय को गुरुमत का वेश दे कर पञ्च स्वीकार किया है।

[1]जोग बिखै भोग अरु भोग बिखै जोग जत,
गुरमुख पंथ जोग भोग से अतीत है।
[2]ज्ञान बिखै ध्यान अरु ध्यान बिखै वेधे ज्ञान,
गुरमत गत ज्ञान ध्यान कै अजीत हैं॥
[3]प्रेम कै भगत अरु भगत कै प्रेम नेम,
अलख भगत प्रेम गुरमुख रीत है।
[4]निर्गुन सगुन बिखै बिसम बिस्वास रिद,
बिसम बिस्वास पार पूरन प्रतीत है॥ ८॥ ४२॥

किंचत कटाच्छ दिब्ब देहि दिब्ब दृस्टि होइ,
[5]दिब्ब जोति कै धिआन दिब्ब दृस्टांत कै।
[6]सबद बिबेक टेक प्रगट ह्वै गुरमत,
अनहद गंम उनमनी कै मतांत कै॥
ज्ञान ध्यान करनी कै उपजत प्रेम रस,
[7]गुरमुख सुख प्रेम नेम निज क्रांत कै।
चरन कमल दल संपट मधुप गति,
सहज समाध मधु पान प्रान सांत[8] कै॥ ९॥ ४३॥

सूआ गहि नलनी कौ उलट गहावै आप,
हाथ सै छडाए छाडै पर बस आवई॥

१–भोगी (सांसारिक) लोगों की योग में तथा योगी जनों की भोग में (इच्छा बनी रहती है) गुरुमुखों का पन्थ योग एव भोग से परे है। २–ज्ञान में

तैसे बारंबार टेर टेर कहे पठो पठो,
आपनो ही नाउँ सीख आप ही पढ़ावई ॥
रघुबंसी राम नाम [१]गाल जामनी सु भाखा,
संगत सुभाव गति बुद्धि प्रगटावई।
तैसे गुरु चरन सरन साध संग मिले,
[२]आप आप चीने गुरमुख सुख पावई ॥ १० ॥ ४४ ॥

[३]द्रस्टि महि दरस दरस महि द्रस्टि द्रग,
द्रसटि दरस अदरस गुरु ध्यान है।
सबद मै सुरत[४] सुरत मैं सबद धुनि,
सबद सुरत अगमिति[५] गुरु ज्ञान है ॥
ज्ञान ध्यान करनी[६] कै प्रगटत प्रेम रस,
गुरमति गति प्रेम नेम निरवान[७] है।
पिंड प्रान प्रानपति बीस[८] को बरतमान,
[९]गुरमुख सुख इकईस मो निधान है ॥ ११ ॥ ४५ ॥

[१०]मन बच कर्म ह्वै एकत्र छत्रपति भए,
सहज सिंहासण कै निहचल राज है।
[११]सत्य औ संतोख दया धरम अरथ मेल,
पंच परवान किये गुरमत साज है ॥
सकल पदारथ औ सरब निधान सभा,
[१२]सिव नगरी सुबास कोट छबि छाज है ॥

१-यवन भाषा (फारसी आदि) वाले अथवा गाली। २-निज स्वरूप को जान लेने से गुरुमुख (अनन्त) सुख प्राप्त करते हैं। ३-(संसार के उपासकों की) दृष्टि में दर्शन और दर्शन में आंखें गड़ी रहती हैं, परन्तु (श्री) गुरु जी का ध्यान, दृष्टि के दर्शन से रहित है। ४-कान। ५-जो न जाना जा सके। ६-क्रिया। ७-शून्य। ८-विश्व। ९-गुरुमुख एक ईश्वर में सुख की निधि (प्राप्त कर) लेते हैं। १०-मन, वाणी तथा शरीर को ऐकाग्र कर लेने से सम्राट हुए हैं, ज्ञान के सिंहासन पर अचल राज्य का उपभोग कर रहे हैं। ११-सत्य सन्तोष आदि के (मेल) समुदाय को गुरुमत का वेश दे कर पञ्च स्वीकार किया है। १२-कल्याण स्वरूप वसने योग्य नगरी कोट (दुर्ग) के रूप में शोभा दे रही है।

[१]राजनीति रीति प्रीति प्रजा कै सुखैन सुख,
पूरन मनोरथ सफल होत काज है ॥ १२ ॥ ४६ ॥

चरन सरन मन वच कर्म ह्वै एकत्र,
गंम्यता त्रिकाल त्रिभवण सुधि पाई है।
[२]सहज समाधि साधु अगम अगाध कथा,
अंतर दिसंतर निरंतर जताई है।
[३]खंड ब्रहमंड पिंड प्रान प्रानपति गति,
गुरुसिख संधि मिले सोहं लिव लाई है,
[४]दरपन दरस औ जंत्र धुनि जंत्री निध,
ओत पोत सूत एकै दुबिधा मिटाई है ॥ १३ ॥ ४७ ॥

चरन सरन मन बच कर्म ह्वै एकत्र,
[५]तन त्रिभुवन गति अलख लखाई है।
[६]मन बच कर्म कर्म मन बचन कै,
बचन कर्म मन उनमनी छाई है ॥
[७]ज्ञानी ध्यानी करनी ज्यों गुर महूआ कमाद,
निझर अपार धार भाठी को चुआई है।
[८]प्रेम रस अमृत निधान पान पूरन ह्वै,
गुरुमुखि संधि मिले सहजि समाई है ॥ १४ ॥ ४८ ॥

१–प्रजा के सुख में प्रीति ही राजनीति की मर्यादा है। २–निर्विकल्प समाधि की अगम्य कथा देश-देशान्त्रों में निरन्तर जताई (उपदेश किया) है। ३–सर्व ब्रह्माण्ड के खण्डों के शरीर धारियों के प्राणों एव जीवात्माओं में उन की गति हो चुकी

बिबिध बिरख बली[१] फल फूल मूल साखा,
रचन चरित्र चित्र अनिक प्रकार है।
[२]बरन बरन फल बहु बिध स्वाद रस,
बरन बरन फूल बासना बिथार[३] है।
बरन बरन मूल बरन बरन साखा,
बरन बरन पत्र [४]सगुन अचार है॥
बिबिध बनसपति अंतर अगनि जैसे,
सकल सँसार बिखै एकै एकंकार है॥१५॥४९॥

[५]गुरुसिख संधि मिले द्रसटि दरस लिव,
गुरमुखि ब्रह्मज्ञान साध लिव लाई है।
गुरुसिख संधि मिले [६]सबद सुरत लिव,
गुरमुख ब्रह्म ज्ञान ध्यान सुधि पाई है॥
गुरुसिख संधि मिले [७]स्वामी सेव सेवक ह्वै,
गुरमुख निहकाम करणी कमाई है।
गुरुसिख संधि मिले करनी सु ज्ञान ध्यान,
गुरमुखि प्रेम नेम सहज समाई है॥१६॥५०॥

गुरुमुख संधि मिले ब्रह्म ज्ञान लिव[८],
एकङ्कार कै आकार अनिक प्रकार है।
गुरमुखि संधि मिले ब्रह्म ध्यान लिव,
[९]निरंकार ओअंकार बिबिध बिथार है॥
गुरुसिख संधि मिले स्वामी सेव सेवक ह्वै,

१-लता। २-विभिन्न फलों के विभिन्न रस एवं स्वाद। ३-विस्तार। ४ गुण और आचार की दृष्टि से भी (अनेक प्रकार का है)। ७-जिन गुरुमुखों (जनों) ने ब्रह्म ज्ञान के (साध) प्रसाधन में वृत्ति लगाई उन के (सन्धि) मिलाप में मिलने से दृष्टि की दरस (स्वरूप) में तार लग गयी। ६-(सबद) शब्द=ब्रह्म से कानों की वृत्ति लगी है। ७-परमेश्वर की सेवा के लिए सेवक हुए। ८-प्रति, वृत्ति की ऐकाग्रता। ९-निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप में अनेक प्रकार का विस्तार है।

[१]ब्रह्म बिबेक प्रेम भगति आचार है।
गुरुमुखि संधि मिले परमद्भुत गति,
नेति नेति नेति नमो नमो नमस्कार है ॥ १७ ॥ ५१ ॥
गुरमुख मन बच कर्म एकत्र भए,
[२]अंग अंग बिसम सर्बंग मै समाए हैं।
प्रेम रस अमृत निधान पान कै मदोन[३],
रसना थकित भई कहत न आए हैं ॥
जगमग प्रेम जोति अति असचरज मय,
लोचन चकित भए [४]हेरत हिराए हैं।
[५]राग नाद बाद बिसमाद प्रेम धुनि सुन,
स्त्रवन सुरति बिलै बिलै कै बिलाए हैं ॥ १८ ॥ ५२ ॥
गुरमुख मन बच कर्म एकत्र भए,
[६]पूरन परम-पद प्रेम प्रगटाए हैं।
[७]लोचन में द्रसटि दरस रस गंधि संधि,
स्त्रवन सबद सुरति गंध रस पाए हैं ॥
[८]रसना में रस गंध सबद सुरत मेल,
नाम बास रस स्तुति सबद लखाए हैं।
[९]रोम रोम रसना स्त्रवन द्रग नासा कोटि,
खंड ब्रहमंड पिंड प्रान में जताए हैं ॥ १९ ॥ ५३ ॥

पूरन ब्रह्म[1] आप आपन ही आप साज,
आपन रच्यो है नांउ[2] आप ही बिचार कै।
[3]आदि गुरु दुतिय गोबिंद नाम कै कहायो,
गुरमुखि रचना अकार ओङ्कार कै।
गुरमुखि [4]नाद बेद गुरमुखि पावै भेद,
गुरमुखि लीलाधारी अनिक औतार कै।
गुरू गोविन्द औ गोबिंद गुरू एकमेक,
ओत-पोत सूत्र-गति अंबर उचार कै॥ २० ॥ ५४ ॥

[6]जैसे बीज बोए होत बिरख बिथार, गुरु
पूरन ब्रह्म निरंकार एकंकार है।
जैसे एक बिरख सें होत हैं अनेक फल,
तैसे गुरु सिख साध संगति अकार है॥
[7]दरस धिआन गुरु सबद गिआन गुरु,
निरगुन सरगुन ब्रह्म बिचार है।
ज्ञान ध्यान ब्रह्म स्थान[8] सावधान, साधु
संगति प्रसंग प्रेम-भगति उधार है॥ २१ ॥ ५५ ॥

[9]फल मूल मूल फल मूल फल फल मूल,
आदि परमादि अरु अंत कै अनंत है।
[10]पित सुत सुत पित सुत पित पित सुत,
उतपति गति अति गूढ़ मूल मंत है॥

१–परमात्मा। २–नाम। ३–गोविन्द (परमात्मा) ने अपना दूसरा नाम आदि गुरु ...रु नानक) रखाया, मुख्य गुरु की रचना द्वारा निराकार ने साकार रूप ग्रहण किया। ...वेदों के उपदेश। ५–वस्त्र में तागे की भान्ति मिला हुआ है, अलग २ नाम केवल उचारण ...त्र है। ६–जैसे एक बीज बोने से वृक्ष का विस्तार होता है, वैसे ही पूर्ण ब्रह्म स्वरूप ...राकार का बीज 'गुरु' है। ७–गुरु के दर्शन का ध्यान करना सगुण ब्रह्म की (उपासना) ... तथा गुरु जी के शब्द का ज्ञान निर्गुण ब्रह्म का विचार है। ८–सत्सङ्गति। ९–फल ... मूल (उत्पन्न हुआ है) अथवा मूल (बीज) से फल, उसी प्रकार आदि (परमात्मा) तथा ...रमादि (माया रहत=गुरु) अन्त से अनन्त हैं। १०–पिता से पुत्र की उत्पत्ति हुई ...क पुत्र से पिता की, यह ज्ञान मूल मंत्र की तरह गूढ़ है।

[1]ब्रह्म बिबेक प्रेम भगति आचार है।
गुरुमुखि सधि मिले परमद्भुत गति,
नेति नेति नेति नमो नमो नमस्कार है ॥ १७ ॥ ५१ ॥

गुरमुख मन बच कर्म एकत्र भए,
[2]अंग अंग बिसम सर्बंग मै समाए हैं।
प्रेम रस अमृत निधान पान कै मदोन[3],
रसना थकित भई कहत न आए हैं ॥
जगमग प्रेम जोति अति असचरज मय,
लोचन चकित भए [4]हेरत हिराए हैं।
[5]राग नाद बाद बिसमाद प्रेम धुनि सुन,
स्रवन सुरति मिलै बिलै कै बिलाए हैं ॥ १८ ॥ ५२ ॥

गुरमुख मन बच कर्म एकत्र भए,
[6]पूरन परम-पद प्रेम प्रगटाए हैं।
[7]लोचन में दसटि दरस रस गंधि संधि,
स्रवन सबद सुरति गंध रस पाए हैं ॥
[8]रसना में रस गंध सबद सुरत मेल,
नाम बास रस स्रुति सबद लखाए हैं।
[9]रोम रोम रसना स्रवन द्रग नासा कोटि,
खंड ब्रहमंड पिंड प्रान में जताए हैं ॥ १९ ॥ ५३ ॥

१–ब्रह्म का (विवेक) ज्ञान प्राप्त हो जाने से आचरण में भक्ति तथ प्रेम आ जाते हैं। २–सर्व अङ्गों सहित (विस्मय स्वरूप) वाहिगुरू में समा हुए हैं। ३–प्रमत्त। ४–देखते देखते मोहित हुए हैं। ५–राग युक्त शब तथा वाद्य आदि यंत्र (सद्गुरु के) आश्चर्य मय हैं जिन की प्रेम-ध्वनि सुन कर श्रवण श्रुति (तथा उक्त लोचन, रसना आदि) उस में विलीन हो गए हैं। ६–व्यापक पर पद में प्रेम को प्रगट किया है। ७–आखों में (हरि) दर्शन के लिए ऐसी दृ प्राप्त हुई जिस में रस एवं गन्ध (प्राप्त भी है, जिस से श्रवण शब्द सुनने से सुगन्ि और रस भी प्राप्त करते हैं। ८–रसनेंद्रय में रस के साथ गन्ध और शब सुनने (की शक्ति) का योग है, इस लिए उस में से नासिका की गन्ध (रसना के विषय रस तथा श्रवण के विषय शब्द को भी जान लेते हैं। ९–उन का रोम रो ऐसे कोटि-कोटि इन्द्रियों की शक्तियों से युक्त हो जाता है और वे खण्ड तथा ब्रह्मण का ज्ञान, शरीर में प्राणों के रहते हुए ही जान लेते हैं।

पूरन ब्रह्म[1] आप आपन ही आप साज,
आपन रच्यो है नांउ[2] आप ही बिचार कै।
[3]आदि गुरु दुतिय गोबिंद नाम कै कहायो,
गुरमुखि रचना अकार ओङ्कार कै।
गुरमुखि [4]नाद बेद गुरमुखि पावै भेद,
गुरमुखि लीलाधारी अनिक औतार कै।
गुरू गोबिन्द औ गोबिंद गुरू एकमेक,
ओत-पोत सूत्र-गति अंबर उचार कै ॥ २० ॥ ५४ ॥

[6]जैसे बीज बोए होत बिरख बिथार, गुरु
पूरन ब्रह्म निरंकार एकंकार है।
जैसे एक बिरख सें होत हैं अनेक फल,
तैसे गुरु सिख साध संगति अकार है॥
[7]दरस धिआन गुरु सबद गिआन गुरु,
निरगुन सरगुन ब्रह्म बिचार है।
ज्ञान ध्यान ब्रह्म स्थान[8] सावधान, साधु
संगति प्रसंग प्रेम-भगति उधार है॥ २१ ॥ ५५ ॥

[9]फल मूल मूल फल मूल फल फल मूल,
आदि परमादि अरु अंत कै अनंत है।
[10]पित सुत सुत पित सुत पित पित सुत,
उतपति गति अति गूढ़ मूल मंत है॥

१-परमात्मा। २-नाम। ३-गोविन्द (परमात्मा) ने अपना दूसरा नाम आदि गुरु (गुरु नानक) रखाया, मुख्य गुरु की रचना द्वारा निराकार ने साकार रूप ग्रहण किया। ४-वेदों के उपदेश। ५-वस्त्र में तागे की भान्ति मिला हुआ है, अलग २ नाम केवल उचारण मात्र है। ६-जैसे एक बीज बोने से वृक्ष का विस्तार होता है, वैसे ही पूर्ण ब्रह्म स्वरूप निराकार का बीज 'गुरु' है। ७-गुरु के दर्शन का ध्यान करना सगुण ब्रह्म की (उपासना) है तथा गुरु जी के शब्द का ज्ञान निर्गुण ब्रह्म का विचार है। ८-सत्सङ्गति। ९-फल से मूल (उत्पन्न हुआ है) अथवा मूल (बीज) से फल, उसी प्रकार आदि (परमात्मा) तथा परमादि (माया रहत=गुरु) अन्त से अनन्त हैं। १०-पिता से पुत्र की उत्पत्ति हुई कि पुत्र से पिता की, यह ज्ञान मूल मंत्र की तरह गूढ़ है।

[1]पथिक बसेरा कौ निबेरा ज्यों निकसबैठ,
इत उत वार पार सरिता सिधंत है।
पूरन ब्रह्म गुरु गेविंद, गोविंद गुरु,
[2]अविगति गति सिमरत सिख संत है॥ २२॥ ५६॥

गुरुमुख पंथ गहे जम पुरि पंथ मेटै,
गुरु सिख संग पंच दूत संग त्यागे हैं।
चरन सरन गुरु करम-भरम खोए,
दरस अकाल काल कंटक भै[3] भागे हैं॥
[4]गुरु उपदेस बेस बज्जर कपाट खुले,
सबद सुरति मूरछित मन जागे हैं।
किंचत कटाछ कृपा सरब निधान पाए,
जीवन मुकति गुरु ज्ञान लिव लागे हैं॥ २३॥ ५७॥

गुरमुखि पंथ सुख, चाहत सकल पंथ,
सकल दरस, गुरु दरस अधीन है।
सुर सुरसरि[5] गुरु चरन सरन चहै,
बेद ब्रह्मादिक सबद लिवलीन है॥
[6]सर्व ज्ञान गुरु ज्ञान अवगाहन में,
सर्व निधान गुरु कृपा जल मीन है।
[7]जोगी जोग जुगति में भोगी भोग भुगति में,
गुरुमुख निज पद कुल अकुलीन है॥ २४॥ ५८॥

१–पथिक बसेरा (नाव) से निवृत हो कर जब पार पहुच कर तट पर बैठता है तब पहले जिसे उतवार (पार) कहता था अब उसे इतवार कहने लग जाता है। यह सरिता (नदी) का सिद्धान्त है। २–(इस) आश्चर्य गति का सिख और साधु स्मरण करते हैं। ३–भय। ४–गुरु के उपदेश में प्रवेश होने से अज्ञान रूपी बज्र (पत्थर) के पट खुल गये। ५–गङ्गा। ६–गुरु ज्ञान के अवगाहन (विचार) में ही सब ज्ञान विद्यमान हैं सब निधियें गुरु कृपा रूप जल की मछलियां हैं। ७–योगी पुरुष योग साधना में तथा भोगी भोग्य पदार्थों के भोगने में व्यस्त हैं। किन्तु गुरु उपदेश में रत पुरुष (ससार की) कुल-मर्यादा से अकुलीन हो कर स्व-स्वरूप में स्थित हैं।

[१]उलट पवन मन मीन की चपल गति,
सुखमना संगम कै ब्रह्मस्थान है।
[२]सागर सलिल गहि गगन घटा घमंड,
उनमन मगन लगन गुरु ज्ञान है ॥
[३]जोति मै जोती सरूप दामिनी चमत्कार,
गरजत अनहद् सबद नीसान है।
[४]निज्भर अपार धार बरखा अमृत जल,
सेवक सकल फल सरव निधान है ॥ २५ ॥ ५९ ॥

लोगन मै लोगाचार बेदन[५] मै बेदाचार।
लोग बेद बीस[६] इक ईस गुरु ज्ञान है।
[७]जोग मै न जोग भोग भोग मै खान पान,
जोग भोगातीत उनमन उनमान है ॥
द्रसटि दरस ध्यान सबद सुरत ज्ञान,
ज्ञान ध्यान लख प्रेम परम निधान है।
[८]मन बच कर्म स्रम साधनाध्यात्म कर्म,
गुरमुख सुख सरवोत्तम निधान है ॥ २६ ॥ ६० ॥

[९]सबद सुरत लिव धावत बरज राखै,
निहचल मति मन उनमन[१०] भीन है ॥

१-मछली की भान्ति चञ्चल गति रखने वाले मन को पवन द्वारा सुखमना के सङ्गम में से निकाल कर तटस्थ ब्रह्म के स्थान पर पहुंचा देते हैं। २-जिस तरह समुद्र से जल की घटा आकाश में पहुंच कर घुमण्ड से गर्जने लगती हैं, इसी प्रकार गुरु से ज्ञान प्राप्त कर के जिज्ञासु तुरिय (ज्ञानावस्था) आकाश में पहुंच जाते हैं। ३-दिव्य ज्योति (ईश्वर) में ज्योति स्वरूप हो कर बिजली की भान्ति कूंदने लगते हैं, मुख में (अनहद्) शब्द का उच्चारण गरजने का चिन्ह है। ४-अमृत जल की अपार धारा की वर्षा निरन्तर होने लगती है। ५-वेद धर्मानुयायियों। ६-संसार। ७-गुरमुख योग-मार्ग में चलते हुए योग में खचित नहीं होते तथा भोग मार्ग में रहते हुए खाने-पीने के पदार्थों में लिप्त नहीं होते। ८-(संसार के लोग) मन वाणी तथा शरीर के श्रम से सकाम अध्यात्म कर्मों की साधना करते हैं। ९-शब्द को ज्ञात में प्रीति द्वारा विषयों के लिए दौड़ने वाले मन को रोक लेते हैं। १०-तुरिया पद (ज्ञानावस्था)।

[1]सागर लहर गति आतम तरंग रंग,
परमदूभुत परमारथ प्रबीन है ॥
गुरु उपदेस निरमोलक रत्न धन,
परम निधान गुरु ज्ञान लिवलीन है ।
सबद सुरत लिव गुरुसिख संधि मिले,
[2]सोहं हंसो एकमेक आपा आप चीन है ॥ २७ ॥ ६१ ॥

[3]सबद सुरति अवगाहन बिमल मति,
सबद सुरति गुरु ज्ञान को प्रकास है ।
सबद सुरति सम द्रसटि कै दिब्ब जोति,
सबद सुरति लिव अनभै[4] अभ्यास है ॥
[5]सबद सुरति परमारथ परमपद,
सबद सुरति सुख सहज निवास है ।
सबद सुरति लिव प्रेम रस रसिक ह्वै,
सबद सुरति लिव ब्रह्म बिस्वास है ॥ २८ ॥ ६२ ॥

[6]द्रसटि दरस लिव गुरु सिख सन्धि मिले,
घटि घटि कास जल अंतर धिआन है ।
[7]सबद सुरत लिव गुरुसिख संधि मिले,
जंत्र धुनि जंत्री उनमन उनमान है ॥
गुरमुखि मन बच कर्म एकत्र भए,

१–समुद्र की तरगों की भान्ति आत्म प्रेम की लहरों में परम आश्चर्य - तत्व के जानने में प्रवीन गुरुमुख, गुरु ज्ञान में लीन रहते हैं । २–'मैं वह' और 'वह मैं' से जब एकमेक (मेल) हो गया, तो सब ओर अपना आप को देखते हैं । ३–शब्द (उपदेश) की ज्ञात का विचार करने से बुद्धि निर्मल हो गयी । ४–अनुभव । ५–उपदेश की सुरत (ज्ञात) से परम पद स्वरूप परमार्थ मिल गया । ६–गुरु का सिख से मिलाप हो जाने पर सिख की दृष्टि दर्शन के प्रेम में इस प्रकार अन्तर्ध्यान हुई, जैसे घट के जल मे आकाश का प्रतिबिम्ब । ७ गुरु एवं शिष्य के मिलाप-से शब्द के ज्ञान मे प्रीति हुई, और तुरिया पद का उन्मान (विचार) किया जाने लगा जैसे यत्र (वाजे) की ध्वनि में यत्री (वाजे वाले) की आवाज़ समा जाती है ।

[1]तन त्रिभुवन गति गम्यता गिआन है।
[2]एक औ अनेक मेक ब्रह्म बिबेक टेक,
स्रोत सरिता समुद्र आतम समान है॥ २६॥ ६३॥

[3]गुरमुख मन बच कर्म एकत्र भए,
परमद्भुत गति अलख लखाए हैं।
अंतर धिआन दिव्य जोति को उदोत[4] भयो,
त्रिभुवन रूप[5] घट अंतर दिखाए हैं॥
परम निधान गुरु ज्ञान को प्रगास भयो,
[6]गंमिता त्रिकाल गति जतन जताए हैं।
[7]आतम तरंग प्रेम रस मधु पान मत,
अकथ कथा विनोद हेरत हिराए हैं॥ ३०॥ ६४॥

[8]बिन रस रसना बकत ही बहुत बातैं,
प्रेम रस बस भए मोनि ब्रत लीन है।
प्रेम रस अमृत निधान पान कै मदोन[9],
अंतर धिआन दृग दुतीआ न चीन है॥
प्रेम नेम सहज समाध[10] अनहद लिव,
दुतीआ सबद स्रवनंतर[11] न कीन है।
[12]बिसम बिदेह जग जीवन मुकत भए,

१-तीन भुवनों में जिस प्रभु की गति है अर्थात् जो व्यापक है, उस की गम्यता का ज्ञान इसी (मनुष्य) तन में ही हो गया। २-एक तथा अनेक मे मिले हुए ब्रह्म के ज्ञान का आधार प्राप्त किया और अनेक (नाना प्रकार की सृष्टि) आकार आत्मा मे इस प्रकार मिल गये जैसे नद-नदियां समुद्र में जा कर मिल जाती हैं। ३-गुरुमुख पुरुषों ने मन वाणी तथा शरीर को एकत्र किया अर्थात इन्हें वश में किया। ४-उदय। ५-विराट् रूप। ६-तीनों काल की गम्यता (ज्ञान) के प्रयत्नों एवं साधनो को जान लिया। ७-आत्मा की प्रेम तरङ्गों के मधु स्वरूप रस को पान कर के प्रमत्त हुए तथा अकथनीय विनोद को देख कर आश्चर्य हो रहे हैं। ८-जब तक मनुष्य रस के बिना है, तब तक तो बहुत सी बातें कहता है। ९-मतवाला। १०-अफुर समाधि। ११-कानों में। १२-(गुरुमुख पुरुष) आश्चर्य स्वरूप देहाध्यास से रहित, जीवन मुक्त हुए हैं, तीन भुवनों तथा तीन कालों के ज्ञान में प्रवीन हो चुके हैं।

त्रिभुवन औ त्रिकाल गंमिता प्रवीन है ॥ ३१ ॥ ६५ ॥

सकल सुगंधता मिलत अरगजा होत,
[1]कोटि अरगजा मिल बिसम सुबास कै।
[2]सकल अनूप रूप कमल बिखैं समात,
हेरत हिरात कोटि कमल प्रगास कै ॥
सरब निधान मिल परम निधान भए,
कोटिक निधान ह्वै चकित सु बिलास[3] कै।
चरन कमल गुरु महिमा [4]अगाध बोध,
गुरुसिख मधुकर [5]अनभै अभ्यास कै ॥ ३२ ॥ ६६ ॥

रतन पारख मिल रतन परीखा होत,
[6]गुरमुख हाट साट रतन बिपार है।
मानक हीरा अमोल मन मुकताहल कै,
गाहक चाहक[7] लाभ लभत अपार है ॥
[8]सबद सुरत अवगाहन बिसाहन कै,
परम निधान प्रेम नेम गुरुद्वार है।
गुरु सिख संधि मिल संगम समागम कै,
माया मै उदास भव तरत संसार है ॥ ३३ ॥ ६७ ॥

[9]चरन कमल मकरंद रस लुभत ह्वै,
निज घर[10] सहज समाधि लिवलागी है।
चरन कमल मकरंद रस लुभत ह्वै,

१-करोड़ा अरगजा (सुगन्धियां) मिल कर भी (गुरु भक्ति रूप) सुबास के आश्चर्य है। २-कमला (लक्ष्मी) में समस्त सुन्दर रूप समाये हुए हैं किन्तु न के प्रकाश को कोटि कोटि कमलाएं देख कर हैरान हो रही हैं। ३-(गुरु जी प्त) आनन्द को। ४-महिमा का ज्ञान अगाह्य (गम्भीर) है। ५-अभ्यास नुभव करते हैं। ६-गुरुमुख पुरुषों की दोकान पर रतनों की साट न) का व्यापार होता है। ७-लेने की चाह रखने वाला। ८-शिष्यों ने द्वार से, शब्द सुरत तथा प्रेम के नियमों की परम निधि को खरीद किया। ६ के चरण कमलों के पराग के रस पर लुब्ध हो कर। १०-स्व स्वरूप में।

गुरमति रिदै जगमग जोति जागी है॥
चरन कमल मकरंद रस लुभत ह्वै,
अमृत निधान पान दुरमति भागी है।
चरन कमल मकरंद रस लुभत ह्वै,
माया मै उदास बास बिरलो बैरागी है॥३४॥६८॥

जैसे नाउ बूडत से जोई बचै सोई भलो,
बूड गए पाछै पछुतायो रहि जात है।
जैसे घर लागै आग जोई बचै सोई भलो,
जर बुझै पाछै कछु बस न बसात है॥
जैसे चोर लागै जागै जोई रहै सोई भलो,
सोय गए रीतो घर देखै उठ प्रात है।
तैसे अंत काल गुरु चरन सरन आवै,
पावै मोख पदवी नतर बिललात है॥ ३५॥ ६९॥

अंत काल एक घरी निग्रह[१] कै सती होइ,
धन्न धन्न कहत है सकल संसार जी।
अंत काल एक घरी निग्रह कै जोधा जूझै,
इत उत जत कत होत जै जैकार जी॥
अंत काल एक घरी निग्रह कै चोर मरै,
फासी कै सूरी चढ़ाए जग मै धिक्कार जी।
[२]तैसे दुरमत गुरमत कै असाध साध,
संगत सुभाव गति मानस औतार जी॥ ३६॥ ७०॥

[३]आदि कै अनादि अर अंत कै अनंत अति,
पार कै अपार न अथाह थाह पाई है।

१-हठ। २-इसी प्रकार जीव दुरमत अथवा गुरमत द्वारा असाधु एवं साधुओं की सङ्गति प्राप्त करता है और इस स्वभाव के संस्कार बल से मनुष्य जन्म लेता है। ३-आदि की दृष्टि से परमात्मा अनादि हैं, और अन्त के दृष्टि कोण से अनन्त हैं।

मिति कै अमिति अर संख[1] कै असंख पुन,
लेख कै अलेख नहीं तोल कै तुलाई है॥
[2]अरध उरध परजंत कै अपार जंत,
अगम अगोचर न मोल कै मुलाई है।
परमद्भुत असचरज बिसम अति,
अबिगति गति सतगुरु की बडाई है॥ ३७॥ ७१॥

[3]चरन सरन गुरु तीरथ पुरब कोटि,
देवी देव सेव गुरु चरन सरन है।
[4]चरन सरन गुरु कामना सफल फल,
ऋद्धि सिद्धि निधि अवतार अमरन[5] है॥
चरन सरन गुरु नाम[6] निहकाम धाम,
[7]भगति जुगति कर तारन तरन है।
चरन सरन गुरु महिमा अगाध बोध,
[8]हरन भरन गति कारन करन है॥ ३८॥ ७२॥

[9]गुरुसिख एकमेक रोम महिमा अनंत,
अगम अपार गुरु महिमा निधान है।
गुरुसिख एकमेक बोल को न तोल मोल,
[10]श्री गुरु सबद अगमिति ज्ञान ध्यान है॥
गुरुसिख एक मेक दसटि दसटि तारै,

१–सख्या। २–नीचे उपर पर्यन्त के अपार जोव जस अगम्य तथा अगोचर का पार नहीं पा सकते। ३–(सत्गुर जी के) चरणों की शरण में करोड़ों तीर्थ और उन के पर्व हैं। ४–गुरु-चरण-शरण में आने से समूह ऋद्धि सिद्धि एव निधियों की कामनायें सफल होती है। ५–(सत्गुरु) अमृत स्वरूप। ६–हेतु। ७–तारने के लिए जहाज रूप भक्ति की युक्ति देते हैं। ८–दुर्गुणों के हरने वाले और सद्गुणों के भरने वाले गति के कारण (साधन) को बनाने वाले हैं। ९–गुरु से एक मेक (मिले हुए) शिष्यों के एक केश की महिमा ही अनन्त है। किन्तु सद्गुरु को अपार महिमा की निधि अगम्य है। १०–गुरु शब्दों के ज्ञान का ध्यान अगम्य से भी परे है।

श्री गुरु कटाच्छ कृपा को न परमान[1] है।
[2]गुरुसिख एकमेक पल संग रंग रस,
अकथ गति सतगुरु निरबान है॥ ३६ ॥ ७३ ॥

[3]बरन बरन बहु बरन घटा घमंड,
बसुधा [3]बिराजमान बरखा आनंद कै।
[4]बरन बरन ह्वै प्रफुल्लत बनासपती,
बरन बरन फल फूल मूल कंद कै॥
बरन बरन खग बिबिध भाखा प्रगास,
कुसुम सुगंधि पौन गौन सीत मंद कै।
रवन गवन जल थल त्रिन सोभा निधि,
सफल ह्वै चरन कमल मकरंद कै॥ ४० ॥ ७४ ॥

चीटी के उदर बिखै हसती समाइ कैसे,
अतुल अपार भार भ्रिंगी[5] ना उठावई।
मच्छर के डंग न मरत है बासक नाग,
मकरी न चीतै जीतै सर न पुजावई॥
तमचर[6] उडत न पहुचै अकास बास,
मूसा[7] तौ न तैरत समुद्र पार पावई।
तैसे प्रिय प्रेम नेम अगम अगाध बोध,
गुरमुख सागर ज्यों बूंद ह्वै समाई॥ ४१ ॥ ७५ ॥

१–प्रमाण। २–गुरु से मिले हुए शिष्य की सङ्गति के आनन्द के एक पल की गति आश्चर्य है किन्तु सत्गुरु की संगति के आनन्द का रस कहने के बन्धन में नहीं है। ३–विभिन्न रङ्गों की घटाएं उमड कर आती हैं, पृथवी पर स्थिति पा कर आनन्द की वर्षा करती हैं। ४–रङ्ग-रङ्ग की वनस्पति प्रफुल्लित होती है, फल, फूल, मूल, कन्द पैदा होते हैं, शीतल एवं मन्द पवन चलती है। किन्तु यह विकास, वायु का चलना, जल थल और तृणों की शोभा की सामग्री गुरु चरण कमलों के पराग से ही सफल होती है। ५–भृङ्ग (भंवरा)। ६–रात को उड़ने वाला पंछी। ७–चूहा।

[1]सबद सुरत अवगाहन कै साध संग,
आतम तरंग रंग सागर लहर है।
[2]अगम अथाहि आहि अपर अपार अति,
रतन प्रगास निधि पूरन गहर है॥
[3]हंस मरजीवा गुन गाहक चाहक संत,
निस दिन घटिका महूरत पहर है।
[4]स्वांति बूंद बरखा ज्यों गवन घटा घमंड,
होत मुकताहल औ नर नरहरि है॥ ४२॥ ७६॥

सबद सुरत लिव जोति[5] को उदोत भयो,
त्रिभुवन[6] औ त्रिकाल अंतर दिखाए हैं।
सबद सुरत लिव गुरमत को प्रगास,
[7]अकथ कथा बिनोद अलख लिखाए हैं॥
सबद सुरत लिव निज्भर[8] अपार धार,
प्रेम रस रसिक ह्वै अपिअ पिआए हैं।
[9]सबद सुरत लिव सोहं सो अजपा जाप,
सहज समाधि सुख सागर समाए हैं॥ ४३॥ ७७॥

आधि[10] कै बिआधि[11] कै उपाधि कै त्रिदोख हुते,
गुरु सिख साध गुरु वैद पै लै आए हैं।

१-शब्द के ज्ञान के विचार द्वारा साधु संगति में आत्मा इस प्रकार समा गया जैसे जल-तरंग समुद्र की लहिरों में। २-(अपर) संसार से परे जो, अथाह अपार और अगम्य है (सत्सङ्गति रूप समुद्र में भक्तों को) पूर्ण गहिराई में रत्नों का प्रकाश होता है। ३-हंस रूप मरजिया (पानी में डुबकी लगाने वाले) संत उस गुण के गाहक और चाहने वाले हैं। ४-स्वाति नक्षत्र में सागर की एक बूंद वर्षा ऋतु की घटाओं के साथ आकाश पर गमन करती है, सीप में मोती और मनुष्य पर पडी उसे नरहरि (राजा) बना देती है। ५-ज्ञान ज्योति। ६-तीन लोक। ७-ऐसा विनोद (आनन्द) प्राप्त हुआ जिस की कथा अकथनीय है। ८-स्रोत। ९-शब्द सुरत में प्रीति होने से परमात्मा से अभेद करने वाले मंत्र का अजपा (हृदय द्वारा) जप करते हैं, जिस से सहज ही में उन की समाधि लगी और वे सुख सागर में डूब गये। १०-मन की पीड़ा का रोग। ११-शारीरिक रोग (फोड़े फुंसी आदि)। १२-किसी दुर्घटना के फल स्वरूप दुःख।

अमृत कटाछ पेख जनम मरन मेटे,
[1]जोनि जम भय निवारै अभय पद पाए हैं॥
[2]चरन कमल मकरंद रज लेपन कै,
दीख़्या सीख़्या संजम कै औखधि खवाए हैं।
[3]करम भरम खोइ धावत बरज राखै,
निहचल मति सुख सहज समाए हैं॥ ४४ ॥ ७८ ॥

बोहिथ प्रवेस भए निर्भय होइ पारग्रामी,
बोहिथ समीप बूड मरत अभागे है।
चंदन समीप दुरगन्ध सो सुगन्ध होइ,
दूरंतर तर गंध मारुत[4] न लागे है॥
[5]सेजा संजोग भोग नारि गर हार होत,
पुरख विदेस कुल दीपक न जागे है।
[6]श्री गुरु कृपा निधान सिमरन ज्ञान ध्यान,
गुरमुख सुखफल पल अनुरागे हैं॥ ४५ ॥ ७६ ॥

चरन कमल को महातम अगाध बोध,
अति असचरज मय[7] नमो नमो नम है।
कोमल कोमलता औ सीतल सीतलता कै,
बासना सुबास [8]तास दुतिया न सम है॥
[9]सहज समाधि निज आसन सिंहासन सै,

१–गर्भ द्वारा जन्म और यम (मृत्यु) का भय दूर हटा कर अभय पद प्राप्त किया है। २–चरण कमलों की धूलि के (माथे पर) लेपन की शिक्षा एवं संयम की दीक्षा रूप पथ से (हरिनाम) औषधि खिलाते हैं। ३–अनुष्ठानादि-कर्म। ४–वायु। ५–जिस नारी को शय्या का संयोग प्राप्त हुआ (पुत्र प्राप्ति पर) उस के गले में पुण्य मालाएं पड़ती हैं, किन्तु जिस का पति विदेश चला गया हो उस को पुत्र होता ही नहीं। ६–कृपा निधि सत्गुरु के सिमरण, ज्ञान-ध्यानादि में पल मात्र के अनुराग से गुरुमुखों को सुखफल प्राप्त हुआ। ७–मन वाणी एवं शरीर द्वारा नमस्कार है। ८–कोई दूसरा उन के समान नहीं है। ९–निज आसन अर्थात् स्व-स्वरूप (में स्थिति प्राप्त होने से) ईश्वर के सिंहासन में उन की अनायास ही समाधि लगी, उस तन्मयता का स्वाद आश्चर्य है एवं रस की गम्यता (ज्ञान) अगम है।

स्वाद बिसमाद रस गंम्यता अगम है।
[१]रूप कै अनूप रूप मन मनसा थकित,
अकथ कथा बिनोद बिसमै बिसम है॥ ४६॥ ८०॥

[२]सत्गुरु दरसन सबद अगाध बोध,
अबिगति गति नेति नेति नमो नम है।
[३]दरस ध्यान अरु सबद ज्ञान लिव,
गुप्त प्रगट ठट पूर्ण ब्रह्म है॥
निर्गुन सगुन कुसुमावली सुगंधि संधि,
एक औ अनेक रूप गम्यता अगम्म है।
परमद्भुत अस्चरजै असचरज मय,
अकथ्य कथा अलख बिसमै बिसम है॥ ४७॥ ८१॥

[४]सत्गुरु दरस ध्यान ज्ञान अंजन कै,
मित्र सत्रुता निवारी पूर्ण ब्रह्म है।
गुरु उपदेस परवेस आदि कौ आदेस,
उसतति निन्दा मेट गम्यता अगम है॥
चरन सरन गहे [५]धावत बरज राखै,
[६]आसा मनसा थकित सफल जनम है।
[७]साधु संग प्रेम नेम जीवन मुक्ति गति,
काम निःकाम निःकर्म कर्म है॥ ४८॥ ८२॥

१–वाहिगुरु के अनुपम रूप की कहानी अकथनीय हैं, अत्याश्चर्य एवं आनन्द मय है उनकी रूप माधुरी का पान करते हुए उन के मनो-वृत्तियां थक कर रह जाती हैं। २–सत्गुरुओं के दर्शन और अथाह ज्ञान की गति आश्चर्य एवं अनन्त है, उस के प्रति मेरा नमस्कार है। ३–दर्शन के ध्यान और शब्द के ज्ञान से पूर्ण ब्रह्म के गुप्त एवं प्रगट (निर्गुण व सगुण) दो रूपों की उपासना होती है। ४–(बुद्धि रूप नेत्रों में) गुरु ज्ञान का अञ्जन लगा कर गुरुओं के दर्शन में ध्यान जमाने से शत्रु-मित्रता का भेद-भाव मिटा दिया गया है तथा ब्रह्म को पूर्ण देखते हैं। ५–इन्द्रियों को। ६–मन की वृत्तिया। ७–सत्सङ्गति में प्रेम का नियम पालन करने से जीवन मुक्ति प्राप्त हुई जिस से वे कर्मों से निःकर्म और कामणाओं से नि काम हो गये हैं।

सतगुरु देव सेव अलख अभेव गति,
सावधान साध संग सिमरन मात्र कै।
पतित पुनीत रीति पारस करै मनूर,
बास मैं सुबास दै कुपात्रहि सुपात्र कै॥
पतित पुनीत कर पावन पवित्र कीने,
पारस मनूर बांस बासै [१]द्रुम जात्र कै।
[२]सरिता समुद्र साधु संगत तृषावन्त जीअ,
कृपा जल दीजै [३]मोहि कंठ छेद चात्रिकै॥ ४९॥ ८३॥

[४]बीस के बर्तमान भए न सुबास बास,
हेम न भए मनूर [५]लोग वेद ज्ञान है।
गुरमुख पंथ एक ईस को वर्तमान,
[६]चंदन सुवास बांस बासै द्रुम आन है॥
[७]कंचन मनूर होइ पारस परस भेट,
पारस मनूर करै और ठौर मान है।
[८]गुरसिख साध संग पतित पुनीत रीति,
गुरसिख संधि मिले गुरसिख जान है॥ ५०॥ ८४॥

चरन सरन गुरु भई निहचल मति,
मन उनमन[९] लिव सहज समाए हैं।
[१०]द्रसटि दरस अरु सबद सुरति मिल,
परमद्भुत प्रेम नेम उपजाए हैं॥

१–वृक्ष जाति। २–साधु संगति नदी एवं सागर रूप है, मेरा जीव प्यासा है। ३–मुझ चात्रिक को जिस के कण्ठ में छेद है। ४–(बीस) विश्व में वर्तमान रीति के अनुसार। ५–लोक एवं वेद का ज्ञान यही है। ६–भक्ति रूप चन्दन की सुगन्धि से वांस वत् अहंकारियों को तथा अन्य समूह मानव रूप वृक्षों को सुगन्धित कर देते है। ७–सद्गुरु पारस के स्पर्श से लौहा एवं कञ्चन पारस हो जाते हैं जो अन्य लौह रूप पापियों को पारस बनाते हैं और सब जगह माने जाते हैं। ८–गुरु सिखों की सत्सङ्गति की मर्य्यादा पतितों को पवित्र बना देने वाली है, उन के सङ्ग मिलने से (सब कोई) गुरुसिख माने जाते हैं। ९–ज्ञानावस्था। १०–दृष्टि गुरु दर्शन में तथा कान गुरु उपदेश में मिले।

[१]गुरसिख साधु संग रंग ह्वै तंबोल रस,
पारस परस धात कंचन दिखाए हैं।
चंदन सुगंधि संधि[२] बासना सुबास तास,
अकथ्य कथा बिनोद[३] कहित न आए हैं॥ ५१॥ ८५॥

प्रेम रस अमृत निधान पान पूर्ण ह्वै,
अकथ्य कथा बिनोद कहित न आए हैं।
ज्ञान ध्यान स्यान[४] सिमरन बिसिमरन कै,
बिसम बिदेह[५] बिस्माद बिसमाए हैं॥
[६]आदि परमादि अरु [७]अंत कै अनत भए,
थाह कै अथाह न अपार पार पाए हैं।
गुरुसिख संधि मिले[८] बीस इक ईस ईस,
सोहं सोई दीपक सै दीपक जगाए हैं॥ ५२॥ ८६॥

सत्गुरु चरन सरन चल जाइ सिख,
चरन सरन तांकी जग चल आवई।
सत्गुरु आज्ञा सत्य सत्य कर मानै सिख,
आज्ञा ताहि सकल संसारहि हितावई॥
सत्गुरु सेवा भाइ प्राण पूजा करै सिख,
सरब निधान अग्र भाग लिवलावई।
सत्गुरु सीख्या दीख्या हिरदै प्रवेस जाहि,
तांकी सीख सुनत परम पद पावई॥ ५३॥ ८७॥

[९]गुरुसिख साधु संग रंग मै रंगीले भए,
बारुनी बिगंध गंग संग मिले गंग है।

१–सिखों की सगति का मिलाप पान की भान्ति रस-मय है और पारस की तरह सब प्रकार के पापी-पुरुषों को कञ्चन वत् शुद्ध बना देता है। २–मिलाप। ३–आनन्द। ४–बुद्धिमत्ता। ५–देह-अध्यास से परे। ६–माया से परम आदि है। ७–देश कालादि के अन्त की दृष्ठि से अनन्त। ८–विश्व में रहते हुए ही एक ईश्वर के साथ अभेद हो गए। ९–गुरु सिख सत्सगत के प्रेम में इस प्रकार रङ्गे गये जैसे दुर्गन्धि युक्त मदिरा गगा से मिल कर गगा का रूप हो जाती है।

[1]सुरसरि संगम ह्वै प्रबल प्रवाहि लिव,
सागर अथाह सतगुरु संग संग है ॥
[2]चरन कमल मकरंद निहचल चित्त,
दरसन सोभा निधि लहर तरंग है।
[3]अनहद् सबद कै सरब निधान दान,
ज्ञान अंस हंस गति सुमति सर्वंग है ॥ ५४ ॥ ८८ ॥

गुरुमुखि मारग ह्वै दुबिधा भरम खोइ,
चरन सरन गहे [4]निज घर आए हैं।
[5]दरस दरस दिव्य दसटि प्रगास भई,
अमृत कटाच्छ कै अमर पद पाए हैं ॥
[6]सबद सुरत अनहद् निज्झर झरन,
सिमरन मंत्र लिव उनमन छाए हैं ॥
मन बच कर्म ह्वै एकत्र गुरुमुख सुख,
प्रेम नेम बिसर्म बिस्वास उपजाए हैं ॥ ५५ ॥ ८९ ॥

गुरुमुख आपा खोइ जीवन मुक्त गति,
[7]बिसम बिदेह गेह समत सुभाउ है।
[8]जनम मरन सम नरक सुरग अरु,
पुन्न पाप संपति बिपति चिंता चाउ है ॥

१–सत्संगत रूप गगा के प्रबल प्रवाह के संगम जाने पर (मदिरा जैसे अधम पुरुष भी) गुरु रूप अथाह सागर में जा पहुंचते हैं। २–श्री गुरु सागर में चरण कमलों की सुगन्धि है, जिस पर सिख भँवरों के चित् निश्चल हैं, गुरु जी के दर्शन की शोभा उस सागर की लहरें और तरंग हैं। ३–निरन्तर उपदेशामृत पान करने से सर्व निधियों का दान प्राप्त करते हैं, हंसों की तरह उन की (ज्ञान अंश) बुद्धि उज्वल हुई है तथा बुद्धि सर्वाङ्गों श्रेष्ट हो चुकी है। ४–अन्तर्मुख हुए हैं। ५–दर्शन देखने से। ६–शब्द (उपदेश) की ज्ञात के निरन्तर स्रोत बहते हैं, (गुरु) मंत्र के स्मिरण से वृत्ति चतुर्थावस्था में स्थित हुई है। ७–घर में रहते हुए ही देहाध्यास से (विदेह) रहित और समता के स्वभाव वाले हुए हैं। ८–जन्म मरणादि द्वन्द्वों मे वे सम-स्वभावी हैं।

बन गृह जोग भोग लोग वेद ज्ञान ध्यान,
दुख सुख सोगानन्द मित्र सत्रु ताउ है।
लोष्ट कनक बिख अमृत अगनि जल,
[1]सहज समाधि उनूमन अनुराउ है॥ ५६॥ ६०॥

सफल जनम गुरमुख ह्वै जनम जीत्यो,
चरन सफल गुरु मारग रवन[2] कै।
लोचन सफल गुरु दरसावलोकन[3] कै,
[4]मसतक सफस रज पद गवन कै॥
हसत सफल नम सत्गुरु बाणी लिखे,
सुरत सफल गुरु सबद स्रवन कै।
संगति सफल गुरु सिख साध संगम कै,
[5]प्रेम नेम गम्यता त्रिकाल त्रिभुवन कै॥ ५७॥ ६१॥

चरन कमल मकरंद रस लुभित ह्वै,
सहज समाधि सुख संपट समाने हैं।
भयजल[6] भयानक लहर न ब्याप सकैं,
दुबिधा[7] निवार एक टेक ठहराने हैं॥
[8]द्रसटि सबद सुरति बरज बिसर्जित,
प्रेम नेम बिसम बिस्वास उर आने हैं।
[9]जीवन मुक्त जग जीवन जीवन मूल,
आपा खोय होय अपरंपर पराने हैं॥ ५८॥ ६२॥

१-अफुरावस्था में अनुराग होने से सहजे ही समाधिस्थित हुए। २-चलने से। ३-दर्शन देखने से। ४-चरण जहां गमनागमन करते हैं वहां की धूलि मस्तक पर लगाने से। ५-प्रेम के नियमों का पालन करने से तीन काल और तीन लोकों में गम्यता प्राप्त होती है। ६-संसार। ७-राग द्वेषादि द्विधा। ८-कुदृष्यों से दृष्टि और कुशब्दों से कानों को हटा लिया। -९जीवात्माओं के मूल अथवा जगत् के जीवन-स्वरूप मे अहङ्कार को खो कर, अपर (ससार) से परे हो कर जीवन-मुक्त हुए हैं।

सरिता सरोवर सलिल मिल एक भए,
एक सै अनेक होत कैसे निरवारो[१] जी ।
पान चूना काथा सुपारी खाय सुरंग भए,
बहुर न चतुर बरन बिसथारो जी ॥
पारस परस होत कनिक अनिक धात,
[२]कनिक सै अनिक न होत गोताचारो जी ।
[३]चंदन सुबास कै सुबासना बनासपती,
भगत जगत पति बिसम बिचारो जी ॥ ५९ ॥ ६३ ॥

चतुर बरन मिल सुरंग तंबोल रस,
[४]गुरुसिख साधु संग रंग मैं रंगीले हैं ।
खांड घृत चून जल मिले विंजनादि[५] स्वाद,
[६]प्रेम रस अमृत मैं रसिक रसीले हैं ॥
सकल सुगंधि सनबंध अरगजा[७] होइ,
[८]सबद सुरत लिव बासना बसीले हैं ।
पारस परस जैसे कनक अनिक धात,
[९]दिव्य देहि मन उनमन उनमीले हैं ॥ ६० ॥ ६४ ॥

पवन गवन जैसे गुडिया उडत रहै,
पवन रहित गुड्डी उड न सकत है ।
डोरी की मरोर जैसे लट्टूआ फिरत रहै,
ताउ-हाउ[१०] मिटे गिर परै है थकत है ॥

१–भिन्न-भिन्न । २–स्वर्ण से पुन. अनेक गोत्राचारों की धातुएं नहीं बन ीं । ३–चन्दन की सुगन्धि से बनस्पति चन्दन हुई, पुन पूर्व रूप को प्राप्त नहीं यही आश्चर्य विचार भक्त तथा जगत्पति (परमेश्वर) का है। ४–(पान की) सिख साधुओं की सङ्गत के रंग में रंगे गये हैं । ५–व्यञ्जनादि=नाना प्रकार जन । ६–नामामृत तथा प्रेम रस के रसिक होने से वे स्वयं रसमय हो गए हैं। गेन्धयों का सम्मिश्रण । ८–शब्द (उपदेश) की प्रीति में लिव (वृत्ती) लगाने के रूप सुगंन्धि में निवास करते हैं। ९–(उनमीले) उन के साथ मिलने से ग्रौर देहि दिव्य हो कर (उनमन) तुरिया पद को प्राप्त हुए हैं। १०–डोरी क्ति ।

कंचन असुद्ध ज्यों कुठारी ठहिरात नहीं,
सुद्ध भए निहचल [१]छबि कै छकत है।
दुरमति दुविधा भ्रमत है चतुर कुंट,
गुरुमति एक टेक मौन न बकत है॥ ६१॥ ६५॥

प्रेम रस अमृत निधान पान पूर्ण ह्वै,
परमद्‌भुत गति [२]आतम तरंग है।
[३]इत ते द्रस्टि सुरति सबद बिसरजित,
उत ते बिसम असचरज प्रसंग है॥
[४]देखै सो दिखावै कैसे सुने सो सुनावै कैसे,
चाखै सो बतावै कैसे राग रस रंग है।
[५]अकथ्य कथा बिनोद अंग अंग थकित ह्वै,
हेरत हिरानी बूंद सिन्धु सरबंग है॥ ६२॥ ६६॥

साधु संग गंग मिल श्री गुरु सागर मिले,
[६]ज्ञान ध्यान परम निधान लिवलीन है।
चरन कमल मकरंद मधुकर गति,
चंद्रमा चकोर उरु ध्यान रस भीन है॥
[७]सबद सुरति मुकताहल अहार हस,
प्रेम परमारथ बिमल जल मीन है।

१—सौन्दर्य से चमक उठता है। २—अपने-आप को आत्म देव का ही एक तरङ्ग मानते हैं। ३—इत ते (इस ससार से दृष्टि, श्रोत्र एवं शब्द शक्ति को (विसर्जित) त्याग कर उस आश्चर्य स्वरूप वाहिगुरु के आश्चर्य प्रसङ्ग कहते और सुनते हैं। ४—राग-रग के रस को जो देख लेता है सो दिखावे कैसे? सुन कर सुनाए एव चख कर बताए कैसे? ५—वाहिगुरू के विनोद (आनन्द) की कथा अकथनीय है जिस में मिल जाने पर अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाते हैं, वे समुद्र में मिल कर खो चुको एक बूंद की भान्ति सत्गुरु में समाये रहते हैं। ६—ज्ञान-ध्यान के महान भण्डार (सद्‌गुरु) में वृति लगाते हैं। ७—हंस के आहार मोती की तरह गुरु-शब्द में प्रीति लगाते हैं तथा विमल जल में मीन के प्रेम की भान्ति वे परमार्थ से प्रेम करते हैं।

[1]अमृत कटाच्छ अमरापद कृपा कृपाल,
कमला कल्पतरु कामधेनाधीन है ॥ ६३ ॥ ६७ ॥

एक ब्रह्मण्ड के बिथार की अपार कथा,
कोटि ब्रह्मण्ड को नायक कैसे जानीयै ।
घट घट अंतर औ सरब निरंतर[2] ह्वै,
सूखम सथूल मूल[3] कैसे पहिचानियै ॥
निर्गुण अदृस्टि औ दृस्टि में नाना प्रकार,
अलख लख्यो न जाइ कैसे उर आनियै ।
[4]सत्य रूप सत्यनाम सत्यगुरु ज्ञान ध्यान,
पूरन ब्रह्म सरबातम कै मानियै ॥ ६४ ॥ ६८ ॥

[5]पूर्ण ब्रह्म गुरु पूर्ण सरब मयी,
पूर्ण कृपा कै परिपूर्ण कै जानियै ।
[6]दरस ध्यान लिव एक औ अनेक मेक,
सबद बिबेक टेक एकै उर आनियै ॥
[7]दृसटि दरस अरु सबद सुरति मिल,
पेखता बकता स्रोता एकै पहिचानियै ।
[8]सूखम सथूल मूल गुपत प्रगट ठट,
नट वट सिमरन मंत्र मन मानियै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

[9]नहीं ददसार पिता पितामा परपितामा,

१–कृपालु सत्गुरु की अमृत रूपि कृपा कटाक्ष से लक्ष्मी, कल्प वृक्ष और कामधेनु वश में हो गये । २–एक रस । ३–कारण । ४–सत्गुरु द्वारा सत्य नाम का ध्यान करने से सत्य रूप का ज्ञान हो गया कि ब्रह्म सब आत्माओं में व्यापक है । ५–पूर्ण सद्गुरु सर्वमय व्यापक ब्रह्म का रूप हैं (वे) पूर्ण कृपा करें तो परिपूर्ण ब्रह्म को (हम) जान सकते हैं । ६–(गुरु जी के) दर्शन के ध्यान में वृत्ति लगाने से अनेक मे मिले हुए एक का (टेक) आधार, गुरु-शब्द के (विवेक) विचार द्वारा हृदय में ले आए । ७–(इस प्रकार) दृष्टि और दर्शन, उपदेश और श्रवण (चारों के) मिल जाने से पेखता, वक्ता और श्रोता एक परमात्मा को ही पहचानते हैं । ८–गुप्त और प्रगट, सूक्ष्म एवं स्थूल ठट (बनाव) । ९–पिता पक्ष के कुटुम्ब में से अन्त को कोई सहायक न होगा ।

सज्जन कुटुम्ब सुत बांधव न भ्राता है।
नहीं ननसार माता परमाता वृद्धमाता,
मामू मामी मासी मौसा [1]बिबेध बिख्याता है॥
नही ससुरार सास ससुर औ सारो सारी,
नहीं वृतीसर[2] औ जाचक न दाता है।
असन[3] बसन धन धाम काहू मैं न देख्यो,
जैसो गुरसिख साध संगत को नाता है॥ ९९॥ १००॥

जैसे मात पिता प्रतिपालित अनेक सुत,
अनिक सुतन पै न तैसो होय आवई।
जैसे माता पिता चित चाहत है सुतन को,
तैसे न सुतन चित चाह उपजावई॥
[4]जैसे मात पिता सुत सुख दुख सोगानंद,
सुख दुख मैं न तैसे सुत ठहिरावई।
जैसे मन बच कर्म सिक्खन लडावै गुरु,
तैसे गुरुसेवा गुरुसिक्ख न हितावई॥ ६७॥ १०१॥

जैसे कच्छप धर ध्यान सावधान करै,
तैसे मात पिता प्रीति सुत न लगावई।
जैसे सिमरन कर कूज परिपक्क करै,
तैसे सिमरन सुत पै न बन आवई॥
जैसे गऊ बछरा को दुग्ध पिआइ पोखै,
तैसे बछुरा न गऊ प्रीति हित लावई।
जैसे ज्ञान ध्यान सिमरन गुरुसिख प्रति,
तैसे कैसे सिख गुरु सेवा ठहरावई॥ ६८॥ १०२॥

जैसे मात-पिता केरी सेवा सरवन कीनी,
सिख बिरलोई गुरु सेवा ठहरावई।

१–अनेक प्रकार से प्रसिद्ध है। २–पुरोहित। ३–भोजन। ४–जैसे माता-पिता के हृदय में पुत्र के दुःख में शोक और सुख में आनन्द होता है।

[1]जैसे लछमन रघुपति भाइ भगति में,
कोटि मध्ये काहूँ गुरु भाई बन आवई ॥
[2]जैसे जल बरन बरन सरबंग रंग,
बिरलो बिबेकी साध संगति समावई ।
[3]गुरुसिख संधि मिले बीस इक ईस ईस,
पूरन कृपा कै काहू अलख लखावई ॥ ६६ ॥ १०३ ॥

[4]लोचन ध्यान सम लोसट कनिक तां कै,
स्रवनोस्तति निंदा समसर जानियै ।
नासिका सुगन्धि बिरगंध सम तुल्य तां कै,
रिदै मित्र सत्रु समसर उनुमानियै ॥
रसन स्वाद बिष अमृत समान तांकै,
कर सपरस जल अगनि समानियै ।
दुख सुख समसर ब्यापे न हरख सोग,
जीवन मुक्त गति सत्गुरु ज्ञानियै ॥ ७० ॥ १०४ ॥

चरन सरन गहे निज-घर[5] मैं निवास,
आसा मनसा[6] थकत अनत न धावई ।
[7]दरसन मात्र आन ध्यान से रहत होइ,

१–जैसे लक्ष्मण ने अपने भाई रघुपति की भक्ति की (उस तरह) करोड़ों में किसी को ही गुरु भाई बनना आता है । २–जैसे जल किसी रङ्ग के साथ मिल कर उसी वर्ण का हो जाता है, इस तरह कोई बिरला ही अहं त्याग कर साधु सङ्गति में समा जाता है । ३–गुरुसिखों के मिलाप में मिलने से बीस (निश्चय पूर्वक) एक ईश्वरों के ईश्वर अलक्ष को पूर्ण सद्गुरु की कृपा द्वारा कोई बिरला ही जान पाता है । ४–जो मनुष्य सत्गुरु (से प्राप्त) ज्ञान द्वारा जीवन-मुक्त हो गये हैं उन की आंखों में लोहा और स्वर्ण समान हैं, कानों में स्तुति और निन्दा तथा नासिका में सुगन्धि और दुर्गन्धि समान है; रसना में अमृत और विष का स्वाद बराबर है, मित्र और शत्रु समान हैं, हाथों के स्पर्श में जल और अग्नि एक से हैं । सुख दुःख समान होने से हर्ष वा शोक का अनुभव नहीं होता । ५–स्व स्वरूप । ६–मन की वासनाएं । ७–गुरु जी के दर्शन मात्र (हो जाने) से अन्य (दर्शनों के) ध्यान से रहत हुए ।

सिमरन आन सिमरन बिसरावई ॥
सबद सुरत मौन व्रत कौ प्रापत होइ,
[1]प्रेम रस अकथ्य कथा न कहि आवई ।
[2]किंचित कटाच्छ कृपा परम निधान दान,
परमद्भुत गति अति बिसमावई ॥ ७१ ॥ १०५ ॥

[3]सबद सुरति आपा खोइ गुरुदास होइ,
बरतै बर्तमान गुरु उपदेस कै ।
[4]होनहार होइ जोई जोई सोई सोई भलो,
पूरन ब्रह्म ज्ञान ध्यान परवेस कै ॥
[5]नाम निःकाम धाम सहज सुभाइ चाइ,
प्रेम रस रसिक ह्वै अमृत अवेस कैं ।
[6]सत्य रूप सत्यनाम्र सत्यगुरु ज्ञान ध्यान,
पूरन सरबमई आदि को आदेस कै ॥ ७२ ॥ १०६ ॥

[7]सबद सुरत आपा खोइ गुरुदास होइ,
[8]बालबुधि सुधि न करत मोह द्रोह की ।
[9]स्रवनोस्तति निन्दा सम तुल्य स्तुति लिव,
लोचन ध्यान लिव कंचन औ लोह की ॥
नासिका सुगंधि निरगंध समसरि ताकै,

१-प्रेम रस (में मग्न होने पर उस की) अकथ्य कथा नहीं कही जा सकती। २-सद्गुरु महाराज की थोड़ी सी कृपा से ही परम निधियों की प्राप्ति हुई, इस आश्चर्यमय गति ने अत्याश्चर्य कर दिया । ३-उपदेश के श्रवण से अहं को त्याग कर गुरुदास हो जाय, और उस (उपदेश) के अनुसार वर्त्तमान (ससार) में प्रवृत्त रहे । ४-व्यापक ब्रह्म के ज्ञान एव ध्यान में गम्यता द्वारा जो कुछ होनहार हो, उसी में भला मनाये । ५-निष्काम हो कर (धाम) गृहस्थ में रहते हुए नाम का स्मरण करे तो सहजे ही प्रेम-रस के रसिक हो कर अमृत मय में स्थिति पा लेता है । ६-आदि (गुरु नानक देव जी) को नमस्कार किया तो सत्गुरु द्वारा सर्व-व्यापक सत्यनाम का ज्ञान और सत्य रूप का ध्यान प्राप्त हुआ । ७-उपदेश सुन कर । ८-बालक वुद्धि की तरह किसी से मोह अथवा (द्रोह) ठगी की उन्हें सुधि ही नहीं रहती। ९-कानों की सुनने की वृति में स्तुति और निन्दा समान हो जाती है ।

जिह्वा समान बिख अमृत न बोह[१] की।
[२]करचर कर्म अकर्म अपथ पथ,
किरति बिरति सम उकति न द्रोह की॥ ७३॥ १०७॥

सबद सुरति आपा खोइ गुरुदास होइ,
सरब में पूरन ब्रह्म कर मानियै।
[३]कासट अगनि माला सूत्र गोरस गोबंस,
एक औ अनेक कौ बिबेक पहिचानियै॥
लोचन स्रवन मुख नासिका अनेक सोत्र[४]
देखै सुनै बोलै [५]मन सेक उर ठानियै।
[६]गुरुसिख संधि मिलै सोहं सोई ओत पोत,
जोती जोति मिलत जोती सरूप ठानियै॥ ७४॥ १०८॥

गांडा मैं मिठास तास छिलका लीओ न जाइ,
दारम औ दाख बिख [७]बीज गहि डारियै।
आंब खिरनी छुहारा मांझ गुठली कठोर,
खरबूजा औ कलीदा[८] सजल बिकारियै॥
[९]मधु माखी में मलीन समय पाइ रूफल ह्वै,
रस बस भए नहीं तृसना निवारियै।

१-वासना। हाथों के कर्म और अकर्म (चर) पांव द्वारा चलना और न चलना समान हो गया, वृत्युपार्जन के लिये की जाने वाली कृतियों को समान समझते हुए, विद्रोह की उक्ति उन में रहती ही नहीं। २-(अनेक वृक्षों के) काष्ट में एक ही अग्नि, माला की अनेक मणियों में एक ही सूत्र तथा समस्त गोवंश की अनेक गऊओं में जैसे एक सा ही दुगध है वैसे ही संसार की अनेकता में एक के व्यापक होने का विवेक पहिचानना चाहिए। ४-गोलिकाएं। ५-एक मन ही व्यापक है, ऐसा हृदय में विचार करो। ६-गुरु एवं शिष्य का ऐसा मिलाप हुआ कि (अहं) जीव (सो) ब्रह्म में मिल गया तो वह ताणे-बाणे की तरह ज्योति में मिल कर ज्योतिस्वरूप हो गया। ७-उठा कर फैंक दिया जाता है। ८-तरबूज। ९-शहद, मक्खी में रहता हुआ तो मलीन है परन्तु यदि वह कुछ समय उपरान्त सफल हो जाता है अर्थात निकाल लिया जाता है तो रस वश (मीठा) होने पर भी तृषा दूर नहीं कर पाता।

[1]श्री गुरु सबद रस अमृत निधान पान,
गुरुसिख साधु संग जनम सवारियै ॥ ७५ ॥ १०६ ॥

सलिल मै धरनि धरनि मै सलिल जैसे,
[2]कूप अनरूप कै बिमल जल छाए है।
ताही जल माटी कै बनाई धटिका[3] अनेक,
एकै जल घट घट घटिका समाए हैं॥
जाही जाही घटिका मैं दृमटि कै देखियति,
पेखियत आपा आप आन न दिखाए हैं।
[4]पूरन ब्रह्म गुरु एकंकार कै आकार,
ब्रह्म बिबेक एक टेक ठहिराए हैं॥ ७६ ॥ ११० ॥

चरन सरन गुरु एक पैंडा जाइ चल,
सतिगुर कोटि पैंडा आगे होइ लेत हैं।
एक बार सत्गुरु मंत्र सिमरन मात्र,
सिमरन तांहि बारंबार गुरु हेत[5] हैं॥
[6]भावनी भगति भाइ कौडी अग्र भाग राख,
तांहि गुरु सरब निधान दान देत हैं।
[7]सत्गुरु दयानिधि महिमा अगाध बोध,
नमो नमो नमो नमो नेति नेति नेति हैं॥ ७७ ॥ १११ ॥

प्रेम रस अमृत निधान पान पूरन ह्वै,
[8]उनमन उनमत बिसम बिस्वास है।

१–गुरु शब्द का रसामृत पान करते हुए, गुरु सिख साधु-सगति में जा कर अपना जन्म सफल बना लेते हैं। २–कुआ (अनरूप) खोद कर देखा जाय तो मालूम होता है। ३–छोटे घड़े (पात्र)। ४–एकंकार स्वरूप पूर्ण ब्रह्म, गुरु के आकार में प्रगट हो कर (सिखों के हृदय में) एक ब्रह्म के विचार का सहारा देते हैं। ५–प्रेम से। ६–श्रद्धा प्रेम तथा भक्ति से। ७–दया के सागर सत्गुरु की महिमा तथा उन का ज्ञान अगाध (गहरा) है अत. उस अनन्त सत्गुरु को नमस्कार है। ८–तुरियापद (ज्ञानावस्था) में मत्त हुए हैं।

[1]आतम तरंग बहु रंग अंग अंग छबि,
अनिक अनूप रूप ऊप को प्रगास है ॥
[2]स्वाद बिसमाद बहु बिबिध सुरत सर्ब,
राग नाद बाद बहु बासना सुबास है ।
[3]परमदुभुत ब्रह्मासन सिंघासन मैं,
सोभा सब मंडल [4]अखंडल बिलास है ॥ ७८ ॥ ११२ ॥

ब्यथावंतै जंतै जैसें बैद उपचार करै,
ब्यथा बिरतांत सुन हरै दुख रोग को ।
जैसे माता पिता हितचित कै मिलत सुतै,
खान पान पोख तोख हरत है सोग को ॥
बिरहनी बनिता कौ जैसे भरतार मिलै,
प्रेम रस कै हरत बिरह बियोग को ।
[5]तैसे ही बिबेकी जन पर उपकार हेतु,
मिलत सलिल गति सहज संजोग को ॥ ७९ ॥ ११३ ॥

[6]ब्यथावंतै बैद रूप जाचिक दातारि गति,
गाहकै ब्यापारी होइ मात पिता पूत कौ ।
[7]नार भरतार बिध मित्र मित्रताई रूप,
सुजन कुटंब सखा भाइ चाइ सूत कौ ॥

१—आत्मा के तरङ्ग की (बहुरङ्ग) अनेक प्रकार की शोभा उन के अङ्ग-अङ्ग से प्रगट हो रही है, अनुपम रूप की उपमा का प्रकाश हो रहा हो । २—सुरत (ज्ञात) में अनेक प्रकार के अश्चर्य आनन्द हैं, भक्ति की सुगन्धि तथा कीर्त्तन के लिए राग नाद करनें वालें (वाद्य) बाजे हैं । ३—आश्चर्य मय ब्रह्मासन रूप सिंहासन (सत्संगति) में । ४—सत्गुरु जी का आनन्द अखण्ड रूप है । ५—उसी तरह ज्ञानी पुरुष परोपकार के लिए (सर्व रङ्गों में) पानी की तरह सहज में ही मिल जाते हैं । ६—पीड़ित को वैद्य और याचक को दाता से मोह होता है इसी प्रकार व्यापारी गाहक को चाहता है और माता-पिता पुत्र को । ७—पति पतनी की तरह, मित्र मित्रता के अनुरूप, श्रेष्ठ पुरुष सखा-सज्जनों के कुटुम्ब की मर्य्यादा को प्रेम से चाहते हैं ।

[1]लोगन मैं लोगाचार बेदन मै वेदाचार,
ज्ञान गुरु एकंकार औधूत औधूत को।
बिरलो बिबेकी जन परउपकार हेत,
मिलत सलिल गति सरबंग भूत को॥ ८०॥११४॥

[2]दरसन ध्यान दिब्य देह कै बिदेह भए,
[3]द्रग दिब द्रिस्टि बिखै भाउ भगति चीन है।
[4]सबद गिआन परवान ह्वै निधान पाए,
परमारथ सबदारथ प्रबीन है॥
[5]अध्यातम करम कर आतम प्रवेस,
परमातम प्रवेस सरबातम लिउलीन है।
[6]तत्तै मिलै तत्त जोतो जोति कै परम जोति,
प्रेम रस बस भए जैसे जल मीन है॥ ८१॥११५॥

[7]अध्यातम करम परमातम परम पद,
तत्त मिल तत्तहि परम तत्त वासी है।
[8]सबद बिबेक टेक एक ही अनेक मेक,
जंत्र धुनि राग नाद अनभै अभ्यासी है।

१—ससारी मनुष्य लोकाचार के अनुसार और वेद-धर्मी वेदानुसार आचरण करते हैं, इसी तरह गुरु-ज्ञान धारी (सिख), एकोंकार शुद्ध-स्वरूप की मस्ती को चाहते हैं। २—सत्गुरु जी के दिव्य दर्शन के ध्यान से देहि के होते हुए देहाभिमान से मुक्त हुए। ३—नेत्रों की दृष्टि में गुरु जी का भक्ति-भाव देखा। ४—शब्द के ज्ञान (निधान) भण्डार को पा कर प्रमाणीक हुए, तथा परमार्थ (आध्यात्मिकता) और शब्दार्थ (सासारिक ज्ञान) में प्रवीन हो गये। ५-आध्यात्मिक कर्मों में आत्मा ने प्रवेश किया तो जीव सर्वात्मा रूप परमात्मा में प्रवेश पा कर लवलीन हो जाता है। ६—शरीरान्त होने पर उन के पांचों तत्व अपने २ तत्वों में मिल जाते हैं, ज्योति परम ज्योति की ज्योति मे, फिर भी वे जल में मछली की तरह प्रेम रस के वश मे आ चुके हैं। ७—(आध्यात्म) निष्काम कर्मों द्वारा परम पद को प्राप्त हुए उन का (तत्व) जीवात्मा (तत्तहि) श्री गुरु जी को मिल कर परम तत्व (वाहिगुरु) में रहने लगा है। ८—शब्द के विचार का सहारा पा लेने से जिस प्रकार वाजे में राग नाद आदि रहते हैं, इसी प्रकार अनेक में मिले हुए एक परमात्मा का हृदय में अभ्यास करते हैं।

[१]दरस धिआन उनमान प्रान प्रानपति,
अविगति गति अति अलख बिलासी है।
[२]अमृत कटाछ दिब देह कै बिदेह भए,
जीवन मुकति कोऊ बिरलो उदासी है॥ ८२॥ ११६॥

सुपन चरित्र चित जागत न देखियत,
तारिका मंडल परभात[३] न दिखाईयै।
[४]तरुवर छाया लघु दीरघ चपल बल,
तीरथ पुरब जात्रा थिर न रहाईयै॥
नदी नाव को संजोग लोग बहुरयो न मिलै,
[५]गंधर्ब नगर मृग तृसना बिलाईयै।
[६]तैसे माया मोह् धोह कुटंब सनेह देहि,
गुरमुख सबद सुरति लिव लाइयै॥ ८३॥ ११७॥

नैहर[७] कुआर कन्या लाडली कै मानियत,
ब्याहे ससुरार जाय गुनन कै मानियै।
बनज ब्योहार लग जात है बिदेस प्राणी,
कहियै सपूत लाभ लभत कै आनियै॥
जैसे तौ संग्राम समय पर दल में अकेलो जाय,
जीत आवै सोई सूर सुभट बखानियै।
[८]मानस जनम पाय चरन सरन गुरु,
साधु संग मिलै गुरद्वार पहिचानियै॥ ८४॥ ११८॥

१–प्राणपति (परमात्मा) के दर्शन व ध्यान का प्राणों में ही (उन्मान) विचार करते हैं, आश्चर्य गति वाले अलक्ष स्वरूप का अतिशय आनन्द लेते हैं। २–सत्गुरु जी की अमृत-रूप कृपा दृष्टि से। ३–सूर्य। ४–सूर्य की चञ्चल रश्मियों के जल द्वारा वृक्ष की छाया लघु अथवा दीर्घ होती रहती है (इसी तरह) तीर्थ एवं पर्व पर जाने वाली यात्रा सदैव स्थिर नहीं रहती। ५–आकाश गंगा अथवा मृग-तृष्णा का जल जैसे विलय हो जाता है। ६–इसी प्रकार माया के मोह अथवा निज शरीर और कुटुम्ब के प्रेम को द्रोह (अनिष्टकारी) समझ कर त्याग दिया है तथा गुरुद्वारा शब्द में प्रीति और वृत्ति लगाई है। ७–पीहर। ८–(जो सिख गुरु जी के) चरणों की शरण ले कर साधु सङ्गत में मिले (उन्हों ने) मनुष्य जन्म को पहिचान लिया।

[१]लोगन मैं लोगाचार बेदन मै वेदाचार,
ज्ञान गुरु एकंकार औधूत औधूत कौ।
बिरलो बिबेकी जन परउपकार हेत,
मिलत सलिल गति सरबंग भूत कौ॥ ८०॥ ११४॥

[२]दरसन ध्यान दिव्य देह कै बिदेह भए,
[३]द्दग दिब द्दस्टि बिखै भाउ भग्ति चीन है।
[४]सबद गिआन परवान ह्वै निधान पाए,
परमारथ सबदारथ प्रबीन है॥
[५]अध्यातम करम कर आतम प्रवेस,
परमातम प्रवेस सरबातम लिउलीन है।
[६]तत्तै मिलै तत्त जोती जोति कै परम जोति,
प्रेम रस बस भए जैसे जल मीन है॥ ८१॥ ११५॥

[७]अध्यातम करम परमातम परम पद,
तत्त मिल तत्तहि परम तत्त वासी है।
[८]सबद बिबेक टेक एक ही अनेक मेक,
जंत्र धुनि राग नाद अनभै अभ्यासी है।

१—ससारी मनुष्य लोकाचार के अनुसार और वेद-धर्मी वेदानुसार आचरण करते हैं, इसी तरह गुरु-ज्ञान धारी (सिख), एकोंकार शुद्ध-स्वरूप की मस्ती को चाहते हैं। २—सत्गुरु जी के दिव्य दर्शन के ध्यान से देहि के होते हुए देहाभिमान से मुक्त हुए। ३—नेत्रों की द्दष्टि में गुरु जी का भक्ति-भाव देखा। ४—शब्द के ज्ञान (निधान) भण्डार को पा कर प्रमाणीक हुए, तथा परमार्थ (आध्यात्मिकता) और शब्दार्थ (सांसारिक ज्ञान) में प्रवीन हो गये। ५—आध्यात्मिक कर्मों में आत्मा ने प्रवेश किया तो जीव सर्वात्मा रूप परमात्मा में प्रवेश पा कर लवलीन हो जाता है। ६—शरीरान्त होने पर उन के पाचों तत्व अपने २ तत्वों में मिल जाते हैं, ज्योति परम ज्योति की ज्योति में, फिर भी वे जल में मछुली की तरह प्रेम रस के वश मे आ चुके हैं। ७—(आध्यात्म) निष्काम कर्मों द्वारा परम पद को प्राप्त हुए उन का (तत्व) जीवात्मा (तत्तहि) श्री गुरु जी को मिल कर परम तत्व (वाहिगुरु) में रहने लगा है। ८—शब्द के विचार का सहारा पा लेने से जिस प्रकार वाजे में राग नाद आदि रहते हैं, इसी प्रकार अनेक में मिले हुए एक परमात्मा का हृदय में अभ्यास करते हैं।

[1]दरस धिआन उनमान प्रान प्रानपति,
अबिगति गति अति अलख बिलासी है।
[2]अमृत कटाछ दिब देह कै बिदेह भए,
जीवन मुकति कोऊ बिरलो उदासी है॥ ८२॥ ११६॥

सुपन चरित्र चित जागत न देखियत,
तारिका मंडल परभात[3] न दिखाईयै।
[4]तरुवर छाया लघु दीरघ चपल बल,
तीरथ पुरब जात्रा थिर न रहाईयै॥
नदी नाव को संजोग लोग बहुरयो न मिलै,
[5]गंध्रब नगर मृग तृसना बिलाईयै।
[6]तैसे माया मोह ध्रोह कुटंब सनेह देहि,
गुरमुख सबद सुरति लिव लाइयै॥ ८३॥ ११७॥

नैहर[7] कुआर कन्या लाडली कै मानियत,
ब्याहे ससुरार जाय गुनन कै मानियै।
बनज ब्योहार लग जात है बिदेस प्राणी,
कहियै सपूत लाभ लभत कै आनियै॥
जैसे तौ संग्राम समय पर दल में अकेलो जाय,
जीत आवै सोई सूर सुभट बखानियै।
[8]मानस जनम पाय चरन सरन गुरु,
साधु संग मिलै गुरुद्वार पहिचानियै॥ ८४॥ ११८॥

१—प्राणपति (परमात्मा) के दर्शन व ध्यान का प्राणों में ही (उनमान) विचार करते हैं, आश्चर्य गति वाले अलक्ष स्वरूप का अतिशय आनन्द लेते हैं। २—सतगुरु जी की अमृत-रूप कृपा दृष्टि से। ३—सूर्य। ४—सूर्य की चञ्चल रश्मियों के जल द्वारा वृक्ष की छाया लघु अथवा दीर्घ होती रहती है (इसी तरह) तीर्थ एवं पर्व पर जाने वाली यात्रा सदैव स्थिर नहीं रहती। ५—आकाश गंगा अथवा मृग-तृष्णा का जल जैसे विलय हो जाता है। ६—इसी प्रकार माया के मोह अथवा निज शरीर और कुटुम्ब के प्रेम को द्रोह (अनिष्टकारी) समझ कर त्याग दिया है तथा गुरुद्वारा शब्द में प्रीति और वृत्ति लगाई है। ७—पीहर। ८—(जो सिख गुरु जी के) चरणों की शरण ले कर साधु सङ्गत में मिले (उन्हों ने) मनुष्य जन्म को पहिचान लिया।

[१]नैहर-कुटंब तज ब्याहे ससुरार जाइ,
गुनन कै कुल बधू बिरध[२] कहावई।
पूरन पतिब्रता औ गुरुजन सेवा भाइ,
[३]गृह मै गृहेसुर सुजसु प्रगटावई॥
अंतकाल जाइ [४]प्रिय संग सहगामिनी ह्वै,
लोक परलोक बिखै उच्च पद पावई।
[५]गुरमुख मारग भय भाइ निरबाह करै,
धन्य गुरुसिख आदि अंत ठहरावई॥ ११९॥

जैसे नृप धाम बाम[६] एक सै अधिक एक,
नायक अनेक राजा सबन लडावई।
जनमत जाकै सुत वाही कै सुहाग भाग,
सकल रानी में पटरानी सो कहावई॥
[७]असन, बसन, सिहजासन संजोगी सबै,
राज अधिकार तो सपूती गृह आवई।
[८]गुरुसिख सबै गुरु चरन सरन लिव,
गुरुसिख संधि मिले निज पद पावई॥ १२०॥

[९]तुस मैं तंदुल बोइ निपजै सहस्र गुनो,
देहि धार करत हैं परउपकार जी।
तुस मैं तंदुल निरबिघ्न न लागै घुन,

१–माता-पिता का (मैका) परिवार। २–बड़ी। ३–घर में घर का जो स्वामी है उस का यश प्रगट करे। ४–पति के साथ ही प्राण दे देती है। ५–उक्त उद्धरणों की तरह, भय तथा प्रेम में जो मनुष्य गुरुमुख-मार्ग को निबाहते हैं वे आदि (जन्मकाल) से अन्त (मरण) पर्यन्त धन्य-धन्य माने जाते हैं। ६–स्त्रियां। ७–खाना, कपड़ा, सेजा आदि का संयोग तो सब को ही प्राप्त है। ८–गुरु के चरनों की शरण में प्रीति लगाने वाले गुरुसिख तो सब हैं ही, किन्तु निज-पद उसे प्राप्त होता है जिस सिख को गुरु की सन्धि (मिलाप) प्राप्त होता है। ९–चावल (तुस) छिलके से बाहर होने पर मलीन कुड़वा आदि विकार वाला हो जात है, उसी प्रकार गुरु सिख को घर बार त्याग कर बन में नहीं जाना चाहिये।

राखै रहै चिरंकाल होत न बिकार जी ॥
तुस में निकस होय भग्न मलीन रूप,
स्वाद करुवाइ रांधे रहै न संसार जी ।
गुरु उपदेस गुरुसिख गृह में बैरागी,
गृह तज बनखंड होत न उद्धार जी ॥ १२१ ॥

हरदी औ चूना मिल अरुन[१] बरन जैसे,
चतुर बरन कै तंबोल[२] रस रूप है ।
दूध मै जामुन मिलै दधि कै बखानियत,
खांड घृत चून मिल बिंजन[३] अनूप है ॥
कुसुम सुगंधि मिल तिल से फुलेल[४] होत,
सकल सुगंधि मिल अरगजा धूप[५] है ।
दोइ सिख साधु संग, पंच परमेसुर है,
[६]दस बीस तीस मिल अबिगति ऊप है ॥ १२२ ॥

एक ही गोरस[७] मैं [८]अनेक रस को प्रगास,
दह्यो मह्यो माखन औ घृत अनुमानियै ।
एक ही उखारी[९] से मिठास को निवास गुड़,
खांड मिसरी औ कलीकंद पहिचानियै ॥
एक ही गेहूँ से होत नाना [१०]बिंजनादि स्वादि,
भूने, भीजे, पीसे औ उसेई[११] बिबिधानियै[१२] ।
[१३]पावक सलिल एक एकहि गुन अनेक,
पंच कै पंचामृत सु साध संग जानियै ॥ १२३ ॥

१-सुर्ख रङ्ग । २-पान के रस का रूप हो जाता है । ३-व्यञ्जन=हलवा । ४—फूलों की सुगन्धि वाला तेल । ५-महकता है । ६-दश बीस तीस मिल जायें तो उन की और भी आश्चर्य उपमा है । ७-दूध । ८-दही, छाछ, माखन, घी आदि अनेक रस । ९-ईख (गन्ना) । १०-स्वादिष्ट भोजनादि । ११-उबालने से । १२-अनेक प्रकार से । १३-आग और पानी का एक २ में भिन्न २ गुण हैं परन्तु जब पांच वस्तुएं (घी, शक्कर, मयदा, आग और पानी) परस्पर मिल जायें तो पञ्चामृत (कड़ाह प्रसाद) बन जाता है, इसी प्रकार साधुसङ्गत है ।

खांड घृत चून[१] जल पावक एकत्र भए,
पंच मिल प्रगट पंचामृत प्रगास है।
मृग-मद[२] गौरा[३] चोआ[४] चंदन कुसम दल,
सकल सुगंधि कै अरगजा सुबास है।
चतुर बरन पान चूना औ सुपारी काथा,
आपा खोय मिलित अनूप रूप तास है।
[५]तैसे साधु संगति मिलाप को प्रताप ऐसो,
सावधान पूरन ब्रह्म को निवास है॥ १२४॥

[६]सहज समाधि साध संगति मैं साच खंड,
सतिगुर पूरन ब्रह्म को निवास है।
[७]दरस धिआन सरगुन अकाल मूरति,
पूजा फल फूल चरणामृत बिस्वास है॥
[८]निरंकार चार परमारथ परमपद,
सबद सुरति अवगाहन अभ्यास है।
[९]सरब निधान दान दायक भगति भाइ,
काम निःकाम धाम पूरन प्रगास है॥ १२५॥

[१०]सहज समाधि साधु संगत सुकृत भूमि,
चित चितवत फल प्रापत उधार है।

१-आटा। २-कस्तूरी। ३-गोरोचन, एक सुगन्धित पदार्थ का नाम जो गऊ अथवा बैल के शरीर से निकलता है। ४-इतर। ५-इसी प्रकार अनेक वर्णों सिख के एक सत्सङ्गत में मिल जाने से, उस में एक ब्रह्म का निवास हो जाता है। ६-साधु सङ्गत रूप सच-खण्ड में (गुरुमुखों की) सहजे ही समाधि लग गयी, उस (सङ्गत) में सगुण ब्रह्म स्वरूप सत्गुरु का निवास है। ७-(सत्गुरु जी के) दर्शन का ध्यान ही अकाल मूर्त्ति का ध्यान है, शिष्य फल फूल से पूजा करते और उस के चरणामृत पर विश्वास करते हैं। ८-उन्हों ने शब्द में (सुरति) वृत्ति लगा कर विचार और अभ्यास करने से निराकार के सुन्दर परमार्थ का उच्च-पद प्राप्त कर लिया है। ९-सब निधियों के दान देने वाले की प्रेमा भक्ति (रत रह कर) में कामनाओं से निष्काम हुए हैं, इस लिए उन के (धाम) हृदय में पूर्ण (स्वरूप) का प्रकाश हुआ है। १०-सत्सङ्गत की पुन्य भूमि पर साधकों की सहजे ही समाधि लग गयी मनो वांच्छित फल प्राप्त हुए और अन्त को इस संसार से उद्धार भी हो गया।

[1]बज्जर कपाट खुले हाट साध संगति में,
सबद सुरति लाभ रतन ब्योहार है॥
[2]साधु संग ब्रह्मस्थान गुरुदेव सेव,
अलख अभेव धरमार्थ आचार है।
[3]सफल सुखेत हेत बनत अमित लाभ,
सेवक सहाई बरदाई उपकार है॥ १२६॥

गुरुमुखि साधु चरनामृत निधान पान,
काल में अकाल काल ब्याल[4] बिख मारी है।
गुरुमुखि साधु चरनामृत निधान पान,
[5]कुल अकुलीन भए [6]दुबिधा निवारी है॥
गुरुमुखि साधु चरनामृत निधान पान,
सहज समाधि [7]निज आसन की तारी है।
[8]गुरुमुख साधु चरनामृत परम पद,
गुरुमुख पंथ अबिगति गति न्यारी है॥ १२७॥

[9]सहज समाधि साधु संगति सखा मिलाप,
गगन घटा घमंड जुगति कै जानियै।
सहज समाधि कीरतन गुरु सबद कै,
[10]अनहद नाद गरजत उनमानियै॥

१-सत्सङ्गत के बाजार में जाने पर अज्ञान के वज्र जैसे किवाड़ खुल गये। (जहां वे) शब्द से प्रीति का लाभ रूप रत्नों का व्यापार करते हैं। २-ब्रह्मस्थान रूप सत्सङ्गति मे गुरु देव की सेवा करते हैं, अलख एवं अभेव की प्राप्ति के साधन स्वरूप धर्म का आचरण करते हैं। ३-सत्सङ्गति रूप सफल खेती के साथ प्रेम करने से अपार लाभ हुआ, जिस से सेवक (संसार में प्रत्येक के) सहायक वर देने वाले तथा परोपकारी हुए। ४-सांप ५-कुलाभिमान से रहित। ६-मन के संकल्प-विकल्प त्याग दिये हैं। ७-स्व स्वरूप में वृत्ति ऐकाग्र हो गयी। ८-मुखी सत्गुरु-साधु का चरणामृत पान करने से परम पद प्राप्त हुआ, क्योंकि प्रमुख गुरु का मार्ग आश्चर्य और उस की मर्य्यादा न्यारी है। ९-साधु संगत में मित्रों के मिलाप से जो सहज समाधि की अवस्था प्राप्त होती है उसे आकाश मे घटाओं के चढ़ आने की युक्ति से अनुभव करना चाहिये। १०-निरन्तर गुरु शब्द के कीर्त्तन को बादलों की गरज के रूप में अनुमान करो।

[1]सहज समाधि साधु संगति जोती सरूप,
दामिनी चमतकार उनमन उनमानियै।
[2]सहज समाधि लिव निज्झर अपार धार,
बरखा अमृत जल सरब निधानियै ॥ १२८ ॥

जैसे तौ गोवंस तृण खाय दुहे गोरस दे,
गोरस औटाए दधि माखन प्रगास है।
ऊख मैं पियूख तन खंड खंड के पिराए,
रस के औटाए खंड मिसरी मिठास है॥
चंदन सुगंध सनबंध कै बनासपती,
ढाक औ पलास जैसे चंदन सुवास है।
साधु संग मिलत संसारी निरंकारी होत,
[3]गुरमत परउपकार के निवास है ॥ १२९ ॥

कोटिन कोटान मिसटान पान सुधा रस,
[4]पूजस न साधु मुख मधुर बचन कौ।
सीतल सुगंधि चंद चंदन कोटान कोटि,
पुजस ना साधु मति नम्रता [5]सचन कौ॥
कोटिन कोटान कामधेनु औ कलपतरु,
पुजस न [6]किञ्चित कटाच्छ के रचन कौ।
सरब निधान फल सकल कोटान कोटि,
पुजस न परउपकार के रचन[7] कौ ॥ १३० ॥

१–सगति में सहज समाधि द्वारा ज्योति स्वरूप के दर्शन को बिजली का कूंदना समझो। २–सहज समाधि की अवस्था में वृत्ति के लग जाने से सब प्रकार की निधियां प्राप्त होती हैं। ३–गुरु उपदेश से उस के हृदय में परोपकार का निवास होता है। ४–साधु-मुख के मधुर वचनों की मधुरता को नहीं पहुंच सकते। ५–सच्चाई। ६–सत्गुरु की थोड़ी सी कृपा कटाक्ष की रचना को। ७–प्रवृत्ति।

[1]कोटन कोटान रूप रंग अंग अंग छवि,
कोटिन कोटान स्वाद रस बिंजनादि कै।
कोटिन कोटान कोटि बासना सुबास रस,
कोटिन कोटान कोटि राग नाद बाद कै॥
कोटिन कोटान कोटि रिद्धि सिद्धि निधी सुधा,
कोटिन कोटान ज्ञान ध्यान करमादि कै।
सकल पदारथ ह्वै कोटिन कोटान गुण,
पुजस न साध उपकार बिसमाद कै॥ १३१॥

अजया अधीन[2] तांते परम पवित्र भई,
गरब कै सिंह देह महा अपवित्र है।
मौन व्रत गहै जैसे ऊख में पयूख रस,
बांस बक बानी कै सुगंधिता न सित्र[3] है॥
[4]मूल ह्वै मजीठ रंग संगम संगाती भए,
फूल ह्वै कसुंभ रंग चंचल चरित्र है।
[5]तैसे ही असाधु साधु दादर औ मीन गति,
गुपत प्रगट मोह द्रोह कै बचित्र है॥ १३२॥

पूरन ब्रह्म ध्यान पूरन ब्रह्म ज्ञान,
[6]पूरन भगति सतगुरु उपदेस है।
जैसे जल आपा[7] खोय बरन बरन मिलै,

१–करोड़ों ही रूप रंग, भोजनों के स्वाद, सुगंधियां, राग नाद के रस, ऋद्धि-सिद्धि तथा अमृत की निधियां, ज्ञान, ध्यान, कर्म, आदि साधु के आश्चर्य परोपकार का पार नहीं पा सकते। २–विनम्र। ३–प्रवेश ४–मजीठ का रग जड़ों में छिपा होने से जिस वस्त्र का संग लेता है सुदृढ़ता से उस पर रहता है, किन्तु कुसुम्भ का रङ्ग फूल पर प्रगट होने से चञ्चल चरित्र का है जो स्थिर नहीं रह सकता। ५—इसी प्रकार असाधु और साधु का प्रेम और द्वेष, मेंडक और मछुली की तरह गुप्त और प्रगट रहने से विचित्र है। अर्थात् मछुली गुप्त रहती है इस लिए जल से उस का स्नेह है, मेंडक कभी जल के अन्दर कभी बाहर (प्रगट) रहता है, अतः वह जल से द्रोह करता है। ६–सतगुरु की पूर्ण भक्ति का उपदेश देते हैं। ७–अपने अहं को।

तैसे ही बिबेकी परमातम प्रवेस है ॥
पारस परस जैसे कनिक अनिक धातु,
चंदन बनासपती बासना अवेस[1] है।
[2]घट घट पूरन ब्रह्म जोति ओति पोति,
भावनी भगत भाय आदि कौ आदेस है ॥ १३३ ॥

जैसे करपूर मै उडन को सुभाउ तांते,
[3]और बासना न तांकै आगे ठहिरावई।
चंदन सुबास कै सुबासना बनासपती,
ताही ते सुगन्धिता सकल मैं समावई ॥
[4]जैसे जल मिलत सर्बंग संग रंग राखै,
अगनि जराइ सब रंगन मिटावई ।
[5]जैसे रवि ससि सिव सकति सुभाव गति,
संजोगी बियोगी दसटांत कै दिखावई ॥ १३४ ॥

[6]श्री गुरु दरस ध्यान श्री गुरु सबद ज्ञान,
सस्त्र सनाह पंच दूत बस आए हैं।
श्री गुरु चरन रेण[7] श्री गुरु सरन धेनु[8],
[9]करम भरम काट अभय पद पाए हैं ॥
[10]श्री गुरु बचन लेख श्री गुरु सेवक भेख,
अछल अलेख प्रभु अलख लखाए हैं।

१–मिल जाती है। २–घट घट में जिस ब्रह्म की ज्योति ताणा-पेटा की तरह पूर्ण है, श्रद्धा, प्रेम और भक्ति से उस आदि पुरुष को नमस्कार करते हैं। ३–इसी लिए उस की सुगन्धि, किसी और पदार्थ में नहीं ठहर पाती। ४–जल सब के अंगों में मिल कर उन का रंग ले लेता है। ५–जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का स्वभाव (शिव) शान्त और (शक्ति) प्रचण्ड है, इसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी मनुष्य के संयोग और वियोग का दृष्टान्त है। ६–गुरु जी के दर्शन का ध्यान रूप शस्त्र ले कर तथा गुरु उपदेश के ज्ञान का कवच पहन कर पांचों काम, क्रोध आदिक विकारों के वश में किया है। ७–धूलि। ८–धारण करके। ९–भ्रम रूप कर्मों को काट कर। १०–सत्गुरु जी के वचनों के लेख अनुसार उन्हों ने श्री गुरु जी के सेवकों का सा भेप बना रखा है।

[1]गुरुसिख साधु संग गोसट प्रेम प्रसंग,
नम्रता निरंतरी कै सहज समाए हैं॥ १३५ ॥
जैसे तौ मजीठ वसुधा सैं खाद काढियत,
अंबर सुरंग भए संग न तजत है।
जैसे तौ [2]कसुंभ तज मूल फूल आनियत,
जानियत संग छाड ताही ते भजत है ॥
अर्ध .उर्ध मुख सलिल सूची[3] सुभाउ,
[4]तांते सीत तपत मल अमल सजत है।
[5]गुरुमति दुरमति ऊच नीच नीच ऊच,
जीत हार हार जीत लज्जा न लजत है॥ १३६ ॥
गुरुमुख साधु संग सबद सुरति लिव,
[6]पूरन ब्रह्म सरबातम कै जानियै।
[7]सहज सुभाय रिदय भावनी भगति भाय,
बिहंस मिलन सम दरस ध्यानियै॥
नम्रता निवास दास दासन दासान मति,
मधुर बचन मुख वेनती बखानियै।
[8]पूजा प्राण ज्ञान गुरु आज्ञाकारी अग्र भाग,
आतम अवेस परमातम निधानियै॥ १३७ ॥

१–गुरु सिख साधु-संगति में प्रेम की व्याख्या धर्म-चर्चा और निरन्तर नम्रता के कारण सहजावस्था में समा गये हैं। २–कुसुम्भ का रंग मूल को त्याग कर फूलों में आ जाना है इसी लिए (उसे सब) जानते हैं कि वह संग त्याग कर भाग जाने वाला है। ३–अग्नि। ४–इसी लिये तो जल शीतल है, अग्नि तप्त है, अग्नि पदार्थों को काला बनाती है, जल उज्वल करता है। ५–गुरुमति धारी उच्च होते हुए भी अपने आप को नीच कहते हैं और दुर्मति धारी पुरुष नीच होते हुए भी उच्च बन कर दिखाते है। वे (गुरुमत धारी) विजयी होते हुए भी हार मान लेते हैं और दूसरे हार कर भी अपने आप को विजयी समझते हैं, (गुरुमत धारी) लज्जा में रहते हैं किन्तु (दुर्मति धारी) कभी लज्जा नहीं मानते। ६–व्यापक ब्रह्म में सर्व ओर (अपने) आत्मा को ही मानते हैं। ७–(सहज सुभाय) अनायास ही उन के हृदय में श्रद्धा, भक्ति और प्रेम रहता है, प्रत्येक को हंस कर मिलते हैं। साथ ही उन का ध्यान समदृष्टि का है। ८–(जब उन्हों ने) गरु ज्ञानियों के आगे आज्ञाकारी हो कर प्राण-

[1]सत्य रूप सत्यनामु, सत्यगुरु, ज्ञान, ध्यान,
सत्यगुरु मति सुन सत्य कर मानी है।
दरस धिआन सम दरसी [2]ब्रह्म धिआनी,
सबद ज्ञान गुरु ब्रह्म गिआनी है॥
[3]गुरुमति निहचल पूरन प्रगास रिदै,
मानै मन मानै उनमन उनमानी है।
बिसमै बिसम असचरजै असचरज मय,
अद्भुत परमद्भुत गति ठानी है॥ १३८ ॥

[4]पूरन परम जोति सत्य गुरु सत्य रूप,
पूरन गिआन सत्य गुरु सत्य नाम है।
[5]पूरन जुगति सत्य सत्यगुरु सत्य रिदै,
पूरन सु सेव साध संगति बिस्राम है॥
पूरन पूजा पदारबिंदु मधुकर मन,
प्रेम रस पूरन ह्वै काम निहकाम है।
[6]पूरन ब्रह्म गुरु पूरन परम निधि,
पूरन प्रगास बिसम सथल धाम है॥ १३९ ॥

दरसन जोति कै उदोत[7] असचरज मय,
[8]तामैं तिल छबि परमद्भुत छकि है।

१–सत्गुरु की शिक्षा को सत्य मान लेने से सत्य ज्ञान हो गया जिस से सत्य रूप तथा सत्यनाम में जज्ञासु का ध्यान लग गया। २–ब्रह्म ध्यानी (सत्गुरु) के दर्शन का ध्यान करने से समदृष्टि प्राप्त हुई, ब्रह्म-ज्ञानी गुरुओं के शब्द का ज्ञान हो गया। ३–गुरुमत पर जो निश्चल (अडिग) श्रद्धा रखता है उस के हृदय में पूर्णता का प्रकाश होता है, उस को हृदय तथा मन में मान लेता है तो चतुर्थ पद का विचार करता है। ४–परम ज्योति स्वरूप सत्गुरुओं के सत्य नाम में सत्य रूप का पूर्ण ज्ञान भरा हुआ है। ५–सत्गुरु जी के ज्ञान को पूर्ण युक्ति द्वारा हृदय में निश्चय किया। ६–पूर्ण ब्रह्म स्वरूप गुरु जी, जो पूर्ण तथा परम भण्डार स्वरूप हैं, के पूर्णता के प्रकाश में आश्चर्यस्थल (परम पद) पर शिष्य ने अपना धाम बना लिया। ७–प्रगटाव। ८–उस में से एक तिल मात्र 'शोभा' की शोभा भी परमाश्चर्य मय है।

देखबे कौ द्रसटि न सुनबे कौ सुरति है,
कहिबे कौ जिहवा न ज्ञान मैं उकति[१] है ॥
[२]सोभा कोटि सोभ लोभ लुभित ह्वै लोट पोट,
जग मग जोति कोटि ओट लै छिपति है।
अंग अंग पेख मन मनसा थकित भई,
नेति नेति नमो नमो अति हूँ ते अति है ॥ १४० ॥

[३]छबि कै अनेक छबि सोभा कै अनेक सोभा,
जोति कै अनेक जोति नमो नमो नम है।
उसतति[४], उपमा महातम महिमा अनेक,
एक तिल कथा अति अगम[५] अगम है ॥
बुद्धि बल बचन बिबेक जौ अनेक मिले,
[६]एक तिल आदि बिसमादि कै बिसम है।
[७]एक तिल कै अनेक भांति निहक्रांति भई,
अबिगति गति गुरु पूरन ब्रह्म है ॥ १४१ ॥

दरसन जोति को उदोत[८] असचरज मय
[९]किंचित कटाच्छ कै बिसम कोटि ध्यान है।
मंद मुसकान बान[१०] परमदूभुत गति,
मधुर बचन कै थकित[११] कोटि ज्ञान है ॥
एक उपकार के बिथार को न पारावार,
कोटि उपकार सिमरन उनुमान है।

१-युक्ति। २-ऐसी शोभा के लोभ में कोटि शोभायें लुभित हो कर लोट-पोट हुई हैं, गुरु की ज्योति को देख कर करोड़ों जगमग ज्योतियां ओट में छिपी जा रही हैं अर्थात् फीकी पड़ गयी हैं। ३-सत्गुरु जी के सौन्दर्य, शोभा तथा कान्ति को, अनेक सौन्दर्य, शोभाएं और कान्तियां नमस्कार कर रही हैं। ४-स्तुति। ५-गम्यता से परे। ६-एक तिल मात्र (दर्शन) के आरम्भ को देख कर ही आश्चर्य हो रहे हैं। ७-एक तिल मात्र दर्शन को देख कर ही सब कान्तियां निःकान्त हो गयी है अर्थात् उन की चमक उड़ गयी है। ८-प्रगट। ९-योग द्वारा लगाए हुए करोड़ों ध्यान छोटे से कृपा-कटाक्ष के सामने चकित हुए हैं। १०-रीति। ११-हार जाते हैं।

[1]दयानिधि, कृपानिधि, सुखनिधि, सोभानिधि,
महिमा निधान गंमता न काहू आन है ॥ १४२ ॥

[2]कोटिन कोटान आदि बाद परमादि बिखै,
कोटिन कोटान अंत बिसम अनंत है।
[3]कोटि पारावार पारावार न अपार पावै,
थाह कोटि थकित अथाह परजंत है ॥
अबिगति गति अति अगम अगाध बोध,
[4]गंमिता न ज्ञान ध्यान सिमरन मंत है।
[5]अलख अभेव अपरंपर देवाधिदेव,
ऐसे गुरुदेव सेव गुरुसिख संत है ॥ १४३ ॥

झूलना छंद ॥

[6]आदि धरमादि बिसमादि गुरुएनमह
प्रगट पूरन ब्रह्म जोति राखी।
मिल चतुर बरन इक बरन ह्वै साध संग,
सहज धुनि कीरतन सबद साखी ॥
[7]नाम निहकाम निजधाम गुरु सिख स्रवन,
धुनि, गुरु शिख सुमति अलख लाखी।

१-दया सागर, कृपा-सिन्धु सुख तथा शोभा के सागर की महिमा के भण्डार तक किसी अन्य (साधारण)व्यक्ति की पहुँच नहीं है। २-करोड़ों ही आदि, (माया) परमादि (ब्रह्म) में मिल जाते है, करोड़ों ही उस अनन्त को देख कर आश्चर्य में हैं। करोड़ों (पारावार) रहस्य मिल कर भी उस अपार का पार नहीं पा सकते, उस अथाह तक पहुँचने में करोड़ों थाह (तल) थक कर चूर हो जाते हैं। ४-ज्ञान ध्यान तथा मंत्रों के सिमरण की, वहा तक, गम्यता नहीं है। ५-अलक्ष, अज्ञेय तथा माया से रहित देवताओं का आश्रय रूप गुरुदेव की सिखों तथा साधुओं को सेवा करना चाहिये। ६-जो आरम्भ से आश्चर्य मय धर्म आदि सद्गुण सयुक्त हैं ऐसे गुरू को नमस्कार है (जिस में) व्यापक ब्रह्म ने प्रगट ही अपनी ज्योति रखी हुई है। ७-गुरु-शिक्षा को सुन कर अपने गृह में ही निष्काम हो कर नाम की ध्वनि लगाने से गुरु शिष्यों की मति अलक्ष को जान लेने में समर्थ हो गयी।

[1]किंचित कटाच्छ कर कृपा दै जांहि लै,
तांहि अवगाहि प्रिय प्रीत चाखी ॥१४४॥

[2]सबद की सुरति असफुरति ह्वै तुरत ही,
जुरत है साध संग मुरत नाही।
[3]प्रेम परतीत की रीति हित चीत कर,
जीत मन जगत मन दुरत नाही॥
[4]काम निःकाम निःकरम ह्वै करम करि,
आस निरास ह्वै झुरत* नाही।
ज्ञान गुरु ध्यान उर मान पूरन ब्रह्म,
जगत महिं भगत-मति छुरत नाही॥ १४५॥

कबित्त॥

[5]कोटिन कोटान ज्ञान ज्ञान अवगाहिन कै,
कोटिन कोटान ध्यान ध्यान उरधारही।
कोटिन कोटान सिमरन[6] सिमरन कर,
कोटिन कोटान उनमान[7] वारंवार ही॥
[8]कोटिन कोटानि श्रुति सबद औ दृसटि कै,
कोटिन कोटान राग नाद झुनकार ही।
[9]कोटिन कोटान प्रेम नेम गुरु सबद को,
नेति नेति नमो नमो कै नमसकार ही॥ १४६॥

१-(वे गुरु शिष्य) थोड़ी सी कृपा दृष्टि से जिसे दे वही विचार द्वारा प्रिय की प्रीत को आस्वादन करते हैं। २-शब्द की ज्ञात हृदय में इस तरह जाग उठती है (कि जज्ञासु का मन) साधु सङ्गति में मिल जाता है पीछे नहीं लौटता। ३-प्रेम पर निश्चय की रीति को चित द्वारा हित किया, जगत से मन को जीत लिया (अब) मन में पाप नहीं रहा। ४-कामणाओं से निष्काम हो कर कर्म करते हैं वे निःकर्म ही हैं। आशा में निराश रहते हैं, शोक नहीं करते। ५-करोड़ी ज्ञानी करोड़ों (प्रकार के) ज्ञान का (अवगाहन) विचार करते हैं, करोड़ों ध्यानी कोरोड़ों ध्येयों का ध्यान हृदय में धरते हैं। ६-स्मरण करने वाले। ७-विचार करते है। ८-करोड़ों कान, वाणी तथा दृष्टियां, करोड़ों ही प्रकार के राग नाद की झुनतकार करते हैं। ९-करोड़ों ही प्रेमी तथा नेमी (नियमों का पालन करने वाले) गुरु शब्द को अनन्त कह-कह कर नमस्कार करते हैं। *पाठांतर=झुरत।

सबद सुरति[१] लिव लीन अकुलीन[२] भए,
चतर बरन मिल साधु संग जानियै।
सबद सुरति लिवलीन जलमीन गति,
गुहज[३] गवन जल पान उनमानियै॥
सबद सुरति लिवलीन परबीन भए,
पूरन ब्रह्म एकै एक पहिचानियै।
सबद सुरति लिवलीन पग रीन[४] भए,
गुरमुख सबद सुरति उर आनियै॥ १४७॥

[५]गुरमुखि ध्यान कै पतिसटा सुखंबर लै,
अनिक पटंबर की सोभा न सुहावई।
गुरमुख सुख फल ज्ञान मिसटान्न पान,
नाना बिंजनादि स्वाद लालसा मिटावई॥
परम निधान प्रिय प्रेम परमारथ कै,
सर्व निधान की इच्छा न उपजावई।
पूरन ब्रह्म गुरु किंचित कृपा कटाच्छ,
मन मनसा[६] थकित अन्त न धावई॥ १४८॥

[७]धन्य-धन्य गुरुसिख्य सुन गुरुसिख भए,
गुरु सिख्य मन गुरु सिक्ख मन माने है।
[८]गुरु सिख भाइ गुरु सिख भाउ चाउ रिदै,
गुरु सिख जान गुरु सिख जग जाने है॥
गुरुसिख संधि मिलै गुरु सिख पूरन ह्वै,
गुरु सिख पूरन ब्रह्म पहिचाने हैं।

१-श्रेष्ठ प्रीति। २-कुलाभिमान से रहित। ३-गोह्य (रहस्य मय)। ४-धूलि। ५-गुरुमुख लोग प्रभु चरणों का ध्यान करते हुए प्रतिष्ठा के वस्त्र पहिन लेते हैं, उन्हे अनेक तरह के रेशमी वस्त्रों की शोभा नहीं भाती। ६-मन के सङ्कल्प विकल्प। ७-गुरु के शिष्य गुरु शिक्षा को सुन कर धन्य हुए गुरु शिक्षा पर विश्वास ला कर उस का मनन करते हैं। ८-गुरु शिक्षा को प्रेम करने से गुरु सिखों का हृदय प्रेम और आनन्द से भर जाता है।

[१]गुरु सिख प्रेम नेम गुरसिख सिख गुरु,
सोहं सोई बीस इक ईस उर आने हैं ॥ १४६ ॥

सत्गुरु सत्य, सत्गुरु मति सत्य रिदै,
[२]भिदै न दुतिआ भाउ त्रिगुन अतीत है।
पूरन ब्रह्म गुरु पूरन सरब मई,
एक ही अनेक मेक सकल के मीत है ॥
निरवैर निरलेप निराधार निरालंभ,
निरंकार निर्विकार निहचल चीत है।
निरमल निरमोल निरञ्जन निराहार,
निरमोह निरभेद अछल अजीत है ॥ १५० ॥

सत्गुरु सत्य सत्गुरु के सबद सत्य,
सत्य साध संगति है गुरमुखि जानियै
दरसन ध्यान सत्य सबद सुरति सत्य,
गुरसिख संग सत्य सत्य कर मानियैं ॥
[३]दरस ब्रह्म ध्यान, सबद ब्रह्म ज्ञान,
संगत ब्रह्म थान प्रेम पहिचानियै।
[४]सत्य रूप सत्य नाम सत्गुरु ज्ञान ध्यान,
काम निहकाम उनमन उनमानियै ॥ १५१ ॥

[५]गुरुमुख पूरन ब्रह्म देखे दसटि कै,
गुरुमुख सबद कै पूरन ब्रह्म है।

१—गुरु सिखों के प्रेम का नियम है कि पहले गुरु और सिख परस्पर अभेद पुनःईश्वर से अभेद हो जाते हैं, परन्तु फिर भी लोक मर्य्यादा के लिए (ब्रास) निश्चय पूर्वक एक ईश्वर को हृदय में ले आते हैं। २—सत्गुरु में द्वैत नहीं भेल सकता वह त्रिगुणातीत हैं। ३—(गुरु के) दर्शन से ब्रह्म का ध्यान तथा उन के (शब्द) उपदेश से ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है। ४—सत्गुरु के सत्य नाम का कामनाओं से निःकाम हो कर ध्यान करने से जिन्हें ज्ञान हुआ वे (उन्मन) ज्ञान अवस्था का विचार करते हैं। ५—गुरुमुख जन दृष्टि द्वारा केवल ब्रह्म को देखते हैं, वाणी द्वारा ब्रह्म ही बोलते हैं।

गुरुमुख पूरन ब्रह्म सुति[१] स्रवन कै,
मधुर वचन कहि बेनती बिसम है॥
गुरमुख पूरन ब्रह्म [२]रस गंध संधि,
[३]प्रेम रस चंदन सुगंधि गमागम है।
गुरुमुख पूरन ब्रह्म गुरु सरब मय,
गुरुमुख पूरन ब्रह्म नमो नम है॥ १५२॥

[४]दरस अदरस दरस असचरज मय,
हेरत हिराने दृग दसटि अगस है।
[५]सबद अगोचर सबद परमद्भुत,
अकत्थ कथा कै सुति[६] स्रवन बिसम है॥
[७]स्वाद रस रहित अपिअ[८] पीआ प्रेम रस,
रसना थकित नेति नेति नमो नम है।
निर्गुन सर्गुन अबिगति न गहन गति,
[९]सूखम सथूल मूल पूरन ब्रह्म है॥ १५३॥

खुले से बंधन बिखै भलो हो सीचाने[१०] जाते,
जीव घात करे न विकार होइ आवई।
खुले से बंधन बिखै चकई भली है जांते,
राम रेख मेटि निसि प्रिय संग पावई॥
खुले से बंधन बिखै भलो है सूआ प्रसिद्ध,
सुन उपदेस राम नाम लिवलावई।
मोख पदवी से तैसे मानस जनम भलो,
गुरमुखि होइ साधु संग प्रभु ध्यावई॥ १५४॥

१—कर्ण। २-भक्ति-रस की सुगंधि से मिलाप। ३-यह प्रेम रस चन्दनादि सुगन्धियों की गम्यता से अगम्य है। ४-गुरुमुखों का (दर्शन) सिद्धान्त पट् दर्शनों द्वारा अप्राप्य है अतएव आश्चर्य रूप है। ५-गुरु जी के अगोचर शब्द को सुन कर शब्द भी परम आश्चर्य हो रहा है। ६-सुन कर। ७-(रसना द्वारा) स्वाद रस रहित अमृत स्वरूप प्रेम रस पान किया। ८-अमृत। ९-सूक्ष्म तथा स्थूल रूप सृष्टि का मूल जो पूर्ण ब्रह्म है। १०-बाज।

जैसे [१]सूआ उडत फिरत बन बन प्रति,
जैसे ई बिरख बैठे तैसे फल चाखई।
पर बसि होइ जैसी जैसीए संगति मिलै,
सुन उपदेस तैसी भाखा लै सु भाखई॥
तैसे चित चंचल चपल जल को सुभाउ,
जैसे रंग संग मिलै तैसो रंग राखई।
[२]अधम असाध जैसे बारनी बिनास काल,
साध संग गंग मिलि सुजन भिलाखई॥ १५५॥

जैसे जैसे रंग संग मिलत सेतांबर ह्वै,
तैसो तैसो रंग अंग-अंग लपटाइ है।
भगवत कथा [३]अरधन* को धारनीक,
[४]लिखत कृतास पत्र बंध मोख दाइ है॥
सीत ग्रीखमादि बरखा [५]त्रिबिध बरख मैं,
निस दिन होइ लघु दीरघ दिखाइ है।
तैसे चित चंचल चपल पौन गौन गति,
संगम सुगंधि बिरगंधि प्रगटाए है॥ १५६॥

[६]चतुर पहर दिन जगत चतुर जुग,
निस महा परलय समान दिन प्रति है।
[७]उत्तम मधिम नीच त्रिगुण संसार गति,
लोग वेद ज्ञान उनमान आशक्ति है॥
रज तम सत्य गुन औगुन सिमृत चित,
त्रिगुन अतीत विरलोई गुरमति है।

१-तोता, कीर। २-नीच-असाधु पुरुष की सगति मद जैसी विनाश कारी है, साधु संगति गंगा की भान्ति अशुद्ध को शुद्ध कर देतो है। ३-स्मरण करने वाले को धारने योग है।४-कागज़ पर (कथा) लिखो जाने से (कागज़) वन्धनो से मुक्ति का कारण बनता है।५-वर्ष में तीनो ऋतुएं के कारण। ६-जगत् में चार पहर दिन चतुर युग की चौकड़ी के समान उत्पति का कारण हैं, और चार पहर रात्रि प्रलय के समान हैं। ७-उत्तम, मधिम और नीच यह त्रिगुणी रूप संसार की अवस्था है। *पा=अराधन।

[१]चतुर वरण सार चौपर को खेलु जगु,
साधु संग जुगल ह्वै जीवन मुक्ति है ॥ १५७ ॥

जैसे रंग संग मिलत सलिल[२] मिल,
होइ तैसो, तैसो रंग जगत मै जानिऐ।
चन्दन सुगन्धि मिल पवन सुगन्ध संग,
मल मूत्र सूत्र बिरगन्ध[३] उनमानिऐ[४] ॥
जैसे जैसे पाक[५] साक[६] बिञ्जन[७] मिलत घृत,
तैसो तैसो स्वाद रस रसना कै मानिऐ।
तैसे ही असाधु साधु संगति सुभाव गति,
[८]मूरी औ तम्बोल रस खाए पहिचानिऐ ॥ १५८ ॥

बालक, किसोर, जोबनादि औ जरा बिवस्था,
एक ही जनम होत अनिक प्रकार है।
जैसे निसि दिन तिथि वार पच्छ मास रुति,
चतुर मास [९]त्रिबिधि बरख बिथार है ॥
[१०]जाग्रत सुपन औ सुखोपति अवस्था कै,
तुरिया प्रकास गुरु ज्ञान उपकार है।
[११]मानस जनम साधु संग मिल साधु संत,
भगत बिवेकी जन ब्रह्म बिचार है ॥१५९॥

१–यह ससार चौपड़ का खेल हैं, चार प्रकार के जीव अर्थात अण्डज, ज्येरज, स्वेतज और उद्भुज रूप नरदें हैं, गुरुमुख और मनमुख दो मनुष्य खेलाड़ी हैं, मनमुख के तीन काने और गुरुमुख के पौ वारह हुए। अर्थात मनमुख को हार हुई, और गुरुमुख की जीवन मुक्ति रूप जीत। २–जल। ३–दुर्गन्धि। ४–प्रतीति होती है। ५–रसोई। ६–शाक, तरकारी। ७–सलुने। ८–मूली और पान का स्वाद खाने से पहिचाना जाता है। ९–तीन प्रकार की मुख्य वतुएं, एक 'वर्ष' का ही विस्तार मात्र हैं। १०–जैसे अवस्था के भेद हैं, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरिया जो गुरु ज्ञान के उपकार द्वारा प्रगट होती है। ११–मनुष्य-जन्म में आ कर जो पुरुष साधु सङ्गत में मिले वे साधु-सङ्गति का रूप हो गए, उन के नाम भले ही भक्त, साधु-सन्त एव ब्रह्म का विचार करने से विवेकी आदि रख लिये जाएं।

[1]जैसे चकई मुदित पेख प्रतिबिंब निसि,
सिंह प्रतिबिंब देख कूप में परत है।
जैसे कांच मंदिर में मानस आनंद मई,
स्वान पेख आप आप भूस कै मरत है॥
[2]जैसे रवि-सुत जम रूप औ धरमराइ,
धरम अधरम कै भाउ भय करत है॥
तैसे दुरमति गुरमति कै असाध साध,
[3]आपा आप चीनत न चीनत चरित है॥१६०॥

जैसे तौ सलिल मिल बरन-बरन बिखै,
जांही जांही रंग मिलै सोई हुइ दिखावई।
जैसे घृत जांही जांही पाक साक[4] संगि मिलै,
तैसो तैसो स्वाद रस रसना चखावई॥
जैसे स्वांगी एक ह्वै अनेक भांति भेख धारै,
जोई जोई स्वांग काछै[5] सोई तौ कहावई।
[6]तैसे चित्त चंचल चपल संग- दोख लेप,
गुरमुखि होइ एक टेक ठहिरावई॥१६१॥

[7]सागर मथत जैसे निकसै अमृत बिख,
परउपकार न बिकार समसर है।
बिख अचवत होत रतन[8] बिनास काल,

१–चकवी रात्री के समय अपना प्रतिबिम्ब जल में देख कर तथा उसे अपना पति समझ कर प्रसन्न होती है। परन्तु शेर, कूप में अपनी परछाहीं को अपना शत्रु रूप दूसरा शेर समझ कर उस में कूदता एवं प्राण गंवा लेता है। २–जैसे सूर्य का पुत्र धर्मराज तो एक ही है, किन्तु धर्म का पालन करने वालों को प्रेम करने से धर्मराज दिखाई देता है। और पापियों को भय रूप यमदूत दिखाई देता है। ३–(साधु) अपने स्वरूप को जानते हैं और (असाधु) अपने चरित्र को नहीं जानते। ४–शाक-भाजी। ५–बनाता है। ६–उसी तरह यह चञ्चल चित्त, चञ्चल माया के संग-दोष से लिप्त हो कर और भी चञ्चल हो जाता है, परन्तु गुरुमुख होने से (हरिनाम का) आश्रय ग्राहा हो जाता है और वह स्थिर हो जाता है। ७–एक ही स्थान से निकलने पर भी इन दोनो के परोपकार और विकार में समानता नहीं है। ८–रत्न-रूप मनुष्य शरीर।

अचए अमृत मूए जीवत अमर है ॥
जैसे [1]तारो तारी एक लासट मै प्रगट ह्वै,
[2]बंध मोख पदवी संसार बिसथर है ।
[3]तैसे ही असाध साध सन औ मजीठ गति,
गुरमति दुरमति टेव सै न टर है ॥१६२॥

बरखा संजोग मुकताहल[4] ओरा[5] प्रगास,
परउपकारी औ विकारी ही कहावई ।
ओरा बरखत जैसे धान पान[6] को बिनास,
मुकता अनूप रूप सभा सोभ पावई ॥
ओरा तौ विकार धार देखत बिलाइ जाइ,
परउपकारी मुकता ज्यों ठहिरावई ॥
तैसे ही असाध साध [7]जगत सुभाव गति,
गुरमति दुरमति दुरै न दुरावई ॥१६३॥

[8]लज्जा कुल अंकुस औ गुरु जन सील डील,
कुला बधू ब्रति कै पतिब्रत कहावई ॥
दुसट सभा संजोग अधम असाध संग,
बहु बिभिचार धार गनिका[9] बुलावई ।
कुला बधू सुत को बखानियत गोत्राचार,
गनिका सुअन[10] पिता नाम को बतावई
[11]दुरमति लाग जैसे काग बन बन फिरै
गुरमति हंस एक टेक जस पावई ॥१६४॥

१-ताला व ताली अर्थात् कुञ्जी। २-ताला बन्धन है और कुञ्जी को मोक्ष प्रदाता का पद प्राप्त है। ३-इसी प्रकार साधु एव असाधु (दुष्ट) की मति भी सन, (जिस से रस्सी बनती है और मजीठ (के रङ्ग) जैसी है। साधु गुरुमति और दुष्ट दुर्मति के स्वभाव से पीछे नहीं हटता। ४-मोती। ५--ओला। ६--पान की वागीची। ७--जगत में अपने २ स्वभाव अनुसार गुरुमत एवं दुमर्ति को छिपा नहीं सकते। ८--अपने कुल की लज्जा के अकुश द्वारा बड़े लोगों के सामने शील-स्वभाव के आचरण से कुल वधु व्रत का पालन करते हुए पतिव्रता कहलाती है। ६-वेश्या। १०-पुत्र। ११-दुर्मति में लगे मनुष्यकाग की तरह वन-वन में घूमते हैं तथा गुरुमति पर चलने वालेदहंसों की तरह एक (मान सरोवर रुप) सत्सति का आश्रय लेते हैं और यश प्राप्त करते हैं।

मानस जनम धार संगति सुभाव गति,
([1]गुरुते) गुरुमति दुरमति बिबिध बिधानी है।
[2]साधु संग पदवी भगति औ बिवेकी जन,
जीवन-मुकत, साधू ब्रह्म गिआनी है॥
[3]अधम असाध संग चोर जार औ जूआरी,
ठग बटवारा मतिवारा अभिमानी है।
आपने आपने रंग संग सुख मानै बिस,[4]
गुरुमति गति गुरुमुखि पहिचानी है॥ १६५॥

जैसे तौ असट धातु[5] डारियत नाउ बिखै,
[6]पारि परै ताहि तऊ वार पार सोई है।
[7]सोई धातु अगनि मैं होत है अगनि रूप,
तऊ जोई सोई पै सु घाट ठाट होई है॥
सोई धातु पारस परस पुन कंचन ह्वै,
[8]मोल कै अमोलानूप रूप अविलोई है।
[9]परस पारस गुरु परस पारस होत,
संगति होइ साधु संग सत संग पोई[10] है॥ १६६॥

जैसे घर लागैं आग भाग निकसत ग्रहिन[11],
प्रीतम परोसी धाय जरत[12] बुझावई।
गोधन हरत[13] जैसे करत पुकार गोप[14],
गाऊं मैं गोहार[15] लाग तुरत छुडावई॥

१-गुरु से गुरुमत ले कर गुरुमत-धारी एवं अनेक प्रकार से दुर्मति ले कर दुर्बुद्धि कहा जाता है। २-साधु संगत करने से भक्त, विवेकी जन, जीवन मुक्त, साधु और ज्ञानी आदि पद प्राप्त होते हैं। ३-नीच असाधुओं की संगति से मनुष्य चोर यारादि कहलाता है। ४-विषयों। ५-पीतल, कांसी, भरथ, ताम्र, लौह, जिस्त, सिक्का। ६-नाव पर चढ़ कर पार हो जाने पर भी वह धातु वही रहेगी। ७-अग्नि में अग्नि रूप हो कर तथा आभूषण घढ़ लेने पर भीं धातु वह रहती है। ८-मूल्य से अमूल्य हो कर उपमा रहित रूप में देखी जाती है। ९-सतगुरु रूप परस पारस के स्पर्श से मनुष्य स्वयं पारस हो जाता है। १०-मिलने से। ११-घर वाला। १२-जलते हुए। १३-चुरा ले जाय। १४—गवाला। १५-मनुष्य समुदाय.।

बूडत अथाह जैसे प्रबल प्रवाह बिखै,
पेखत पैरौआ[१] वार पार लै लगावई।
तैसे अंतकाल [२]जमजाल काल व्याल ग्रसे,
गुरु सिख साधु संग संकट मिटावई॥ १६७॥

निहकाम निहक्रोध निर्लोभ निर्मोह,
निहमेव[३] निहटेव[४] निरदोख बासी है।
निरलेप निरबान[५] निरमल निरवैर,
निरविम्राय निरालंभ[६] अविनासी है॥
निराहार निराधार[७] निरंकार निर्विकार,
निहचल निहभ्रांति निरभय निरासी[८] है।
निहकर्म[९] निहभ्रम निहस्रम निहस्वाद,
निरविवाद निरंजन सुन्न मै सन्यासी हैं॥ १६८॥

[१०]गुरमुखि सबद सुरति लिव साधु संग,
परमद्भुत प्रेम पूरन प्रगासे हैं।
[११]प्रेम रंग मैं अनेक रंग ज्यों तरंग गंग,
प्रेम रस मै अनेक रस ह्वै बिलासे हैं॥
प्रेम गंध[१२] संधि मै सुगंधि सनबंध कोटि,
[१३]प्रेम सुरति अनिक अनाहद उल्लासे हैं।
[१४]प्रेम आसपरस कोमलता सीतलता कै,
अनिक कथा बिनोद बिसम बिस्वासे हैं॥ १६९॥

१-तैरने वाला। २—यम अथवा काल (मृत्यु) रूप सर्प के जाल में फंसे हुए लोगों के संकट साधु संगत में रहने वाले गुरुसिख मिटा देते हैं। ३-नि +अहम् +एव (अहकार से रहित)। ४-कुस्वभाव रहित। ५-बन्धन रहित। ६-सांसारिक आश्रय के बिना। ७—देवी देवताओं के आधार से मुक्त। ८—(जगत से) उदासीन। ९—निष्काम कर्मों के करने वाले। १०—गुरुमुख जज्ञासु (गुरु) शब्द की प्रीति में वृत्ति लगा कर साधु संगत में रहते तथा परम आश्चर्य रूप पूर्ण प्रेम को प्रगट करते हैं। ११—गङ्गा के तरंग की तरह प्रेम रंग में रंगे हुए अनेक प्रकार के कौतुक प्रगट करते हैं। १२-प्रेम गन्ध अर्थात् भक्ति। १३-प्रेम की ज्ञात में अनेक अनहद शब्दों का उल्लास विद्यमान है। १४-अस्पर्श प्रेम की कोमलता और शीतलता की अनेक कथायें हैं, उन का विश्वास और विनोद भी आश्चर्य है।

प्रेम रंग समसरि पुजस न कोऊ रंग,
प्रेम रस पुजस न अनरस समानि कै।
प्रेम गंध पुजस न आन कोऊऐ सुगंध,
प्रेम प्रभुता पुजसि प्रभुता न आन कै॥
प्रेम तोल तुल्य न पुजसि तोल तुलाधार,
मोल प्रेम पुजसि न सरब निधान कै।
एक बोल प्रेम कै पुजसि नहीं बोल कोऊ,
[१]ज्ञान उनमान असथकत कोटान कै॥ १७०॥

[२]पूरण ब्रह्म गुरु चरन कमल रज,*
आनद सहज सुख बिसम कोटानि है।
[३]कोटिन कोटान सोभ लोम कै लुभित होइ,
कोटिन कोटानि छबि छबि कै लुभान है॥
कोमलता कोटि लोट पोट ह्वै कोमलता कै,
सीतलता कोटि ओट चाहित हिरान[४] है।
[५]अमृत कोटानि अनहद् गद गद होत,
मन मधुकर तिह संपट समान है॥ १७१॥

[६]सोवत पै सुपन चरित्र चित्र देख्यो चाहै,
सहिज समाधि बिखै उनमनी जोति है।
[७]सुरापान स्वाद मतवारा प्रति प्रसंन्न ज्यों,

१–ऐसे ज्ञान तथा विचार आदि करोड़ों थक कर रह जाते हैं। २–सगुण ब्रह्म स्वरूप सत्गुरु जी के चरण-कमलों की धूलि के आनन्द के सामने करोड़ों सहज-सुख आश्चय हैं। ३–करोड़ों प्रकार की करोड़ों शोभायें (सत्गुरु जी की शोभा के) लोभ में लुभित हो रही है। ४–हैरान=आश्चर्य। ५–करोड़ों अमृत निरन्तर गद-गद हो रहे हैं (गुरुमुखों का) मन भंवरे की भान्ति चरण कमलों के पुश्प में समा जाते हैं। ६–सोये हुए स्वप्न के चरित्रों के चित्र कोई जागते हुए देखना चाहे (तो नहीं देख सकता) इसी प्रकार सहज-समाधि में जो ज्ञान ज्योति का दर्शन हुआ है वह दूसरी अवस्था में असम्भव है। ७–सुरापान के मतवाले को जो स्वाद और आनन्द आता है वह अपने हर्ष को कह नहीं सकता इसी प्रकार अपार धारा के निर्झर के आनन्द का अनुभव भी है। *पाः–जस।

निज्झर अपार धार अनभय[1] उदोत है ॥
[2]बालक पै नाद बाद सबद बिधान चाहै,
अनहद् धुनै रुन झुन सुरति स्रोत है ।
अकथ कथा बिनोद सोई जानै जांसो बीतै,
चंदन सुगंधि ज्यों तरोवर न गोत है ॥ १७२ ॥

प्रेम रस को प्रताप सोई जानै जामैं बीते,
[3]मदन मदोन मतवारो जग जानियै ।
[4]घूरम ह्वै घायल सो घूमत अरुन दृग,
मित्र सत्रुता निलज्ज लज्जाहू लजानियै ॥
[5]रसना रसीली कथा अकथ कै मोन ब्रत,
अनरस रहित न उतर बखानियै ।
सुरति[6] संकोच समसरि अस्तुति निन्दा,
पग डगमग जत कत बिसमानियै ॥ १७३ ॥

तनिक ही जामन कै दूध दधि होत जैसे,
तनिक ही कांजी परै दूध फाट जाति है ।
तनिक ही बीज बोइ बिरख बिथार होइ,
तनिक ही चिनग परै भसम ह्वै समात है ॥
तनिक ही खाइ बिख होत है बिनास काल,
तनिक ही अमृत कै अमर ह्वै गात[7] है ।
संगति असाधु साधु गनिका बिवाहिता ज्यों,
तनिक ही मैं उपकार औ बिकार घात है ॥ १७४ ॥

१–अनुभव। २–जैसे बालक संगीत का आनन्द ले सकता है पर उस के यमों को कह नहीं सकता इसी प्रकार अनहत् शब्द की ध्वनि के सम्बन्ध में कहा हीं जा सकता। ३–काम की मस्ती में प्रमत्त मनुष्य को जगत में मतवाला कहा जाता है। -(प्रेमी) बेसुद्ध हो कर घायलों की तरह लाल आंखों के साथ घूमता है मित्र शत्रुता ौर लज्जा आदि को भूल कर। ५–वेसे मौन धारण किये रहता है किन्तु अकथ था का रसीली रसना से बखान करता है। ६–वृत्ति। ७–शरीर।

[1]साधु संग द्रसटि दरस कै ब्रह्म ध्यान,
सोई तौ असाधु संग द्रसटि विकार है।
साधु संग सबद सुरति कै ब्रहम ज्ञान,
सोई तौ असाधु संग बाद अहंकार है॥
[2]साधु संग असन बसन कै महा प्रसादि,
सोई तौ असाधु संग बिखम अहार है।
दुरमति जनम मरन ह्वै असाधु संग,
गुरुमति साधु संग मुकति दुआर है॥ १७५॥

[3]गुरुमति चरम द्रसटि दिव्य द्रसटि ह्वै,
दुरमति लोचन अच्छत अंध कंध है।
[4]गुरमति सुरति कै बज्जर कपाट खुलै,
दुरमति कठिन कपाट सनबंध है॥
गुरमति प्रेम रस अमृत निधान पान,
दुरमति मुख दुर बचन दुरगन्धि है।
गुरमति सहज सुभाइ न हरख सोग,
दुरमति बिग्रहि[5] बिरोध क्रोध संधि है॥ १७६॥

[6]दुरमति गुरमति संगति असाधु साधु,
काम चेसटा संजोग जत सतवंत है।
[7]क्रोध के बिरोध बिखै, सहिज संतोख मोख,

१–दृष्टि द्वारा साधु संगत के दर्शन से ब्रह्म में ध्यान लग जाता है किन्तु असाधुओं की संगति के दर्शन से वह दृष्टि भी विकार-मय हो जाती है। २–साधु संगति से जो असन (खाना) और कपड़ा मिलता है वह महा प्रसाद रूप है किन्तु असाधुओं की संगत में मांस मदिरा आदि विषम आहार ही मिलेंगे। ३–गुरुमति द्वारा चरम-दृष्टि से दिव्य दृष्टि हो जाती है किन्तु दुर्मति के नेत्रों से दृष्टि अन्धी दीवार के समान हैं। ४–गुरुमति द्वारा बुद्धि के वज्र समान किवाड़ खुल जाते हैं किन्तु दुर्मति द्वारा मनुष्य कठिन किवाड़ों में बन्ध जाता है। ५–लड़ाई-झगड़ा। ६–असाधु और साधुओं की संगति से जो दुर्मति और गुरमत प्राप्त होती हैं उन में से एक के द्वारा कामादि चेष्टाएं प्राप्त होती हैं और दूसरी से यत सत् प्राप्त होता है। ७–एक सदैव क्रोध तथा लोभादि लहरों के विरोध में डूबते हैं और दूसरे धर्म धीर पुरुष सन्तोष में रहते हुए सहजे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं।

लोभ लहिरंतर धरम धीर जंतु है ॥
माया मोह द्रोह कै अरथ परमारथ सैं,
अहंमेव टेव[1] दया द्रवीभूत[2] संत है।
दुकृत सुकृत चित् मित्र सत्रुता सुभाव,
परउपकार औ विकार मूल मंत है॥ १७७ ॥

[3]सत्गुरु सिक्ख रिदै प्रथम कृपा कै बसै,
तां पाछै करत आज्ञा मया कै मनावई।
[4]आज्ञा मान ज्ञान गुरु परम निधान दान,
गुरुमुख सुख फल निज पद पावई॥
[5]नाम निहकाम धाम सहज समाधि लिव,
अगम अगाध कथा कहित न आवई।
जैसा जैसो भाउ करि पूजत पदारबिंद,
सकल संसार कै मनोरथ पुजावई॥ १७८ ॥

जैसे प्रिया भेटत अधान[6] निरमान[7] होत,
[8]बांछित निधान खान पान अग्रभाग है।
जनमत सुत खान पान को संजम करै,
[9]सुत हित रस कस सकल तिआग है॥
तैसे गुरु चरन सरन कामना पुजाइ,
[10]नाम निहकाम धाम अनत न लाग है।

१–अहंकारी स्वभाव। २–दयार्द्र-विनम्र। ३–पहले सत्गुरु शिष्य के हृदय में कृपा कर के निवास करते हैं उपरान्त उसे आदेश देते हैं और अपनी दया दृष्टि से उसे मना भी लेते हैं। ४–आदेश को मान लेने से वह शिष्य गुरु-ज्ञान की निधि का दान प्राप्त करता है और गुरुमुख हो कर निज स्वरूप का सुख फल प्राप्त करता है। ५–(धाम) घर में रह कर ही निष्काम भाव से नाम में लिव (वृत्ति) लगाते हैं और सहज में उन की समाधि लग जाती है, उन की कथा अगम्य और अगाध है। ६–गर्भ। ७–विनम्र हो कर। ८–उस के चाहे हुए भोजन। ९–पुत्र के हित के लिए खट्टा-मीठा सब त्याग देती है। १०–निष्काम रह कर घर में रहते हुए नाम स्मरण करते हैं अन्य कहीं नहीं भटकते।

[1]निसि अंधिकार भवसागर संसार बिखे,
पंच तसकर जीत सिख ही सुजागि है ॥ १७९ ॥

सतुगुरु आज्ञा प्रतिपालक बालक[2] सिख,
[3]चरन कमल रज महिमा अपार है।
सिव सनकादिक ब्रह्मादिक न गम्मता है,
निगम[4] सेखादि नेति नेति कै उचार है ॥
चतुर पदारथ[5] त्रिकाल[6] त्रिभवन[7] चाहै,
जोगि भोगि[8] सुरसरि[9] सरधा संसार है।
[10]पूजन के पूज अरु पावन पवित्र करै,
अकथ कथा बीचार बिमल बिथार है ॥ १८० ॥

[11]गुरमुख सुख फल चाखत भई उलटि,
तन सनातन मन उनमन माने है।
दुरमति उलटि भई है गुरमति रिदै,
दुरजन सुरजन कर पहचाने है ॥
संसारी सै उलटि निरङ्कारी भए,
बग बंस हंस भए सतगुरु ज्ञाने है।
[12]कारन अधीन दीन कारन करन भए,
हरन भरन भेद अलख लखाने है १८१ ॥

गुरुमुख सुख फल चाखत उलटि भई,
जोनि कै अजोनि भए कुल अकुलीन[13] है।

१–आयु की अन्धेरी रात में जन्म मरण रूप संसार सागर में पांच काम क्रोधादि चोरों पर विजय प्राप्त करने वाले सिख सजग रहते हैं। २–अबोध। ३–उस शिष्य के चरण-धूलि की अपार महिमा है। ४–वेद। ५–धर्म अर्थ काम मोक्ष। ६–भूत भविष्य वर्त्तमान। ७–स्वर्ग मात और पाताल। ८–योगी और भोगी। ९–गङ्गा। १०–पूज्य जनों को पूज्य एवं पवित्रों को पवित्र बनाती है उस की अकथ्य कथा और निर्मल विचार का बहुत विस्थार है। ११–गुरुमुख के ज्ञान स्वरूप सुख फल को चखने से ही वृत्ति देहाध्यास से उलट गयी, मन ज्ञानावस्था में मान गया अर्थात् स्थित हो गया। १२–कारणों के आधीन जो दीन हो रहे थे वे अब कारणों के कर्त्ता हुए, पालन व संघार करने वाले अलक्ष को जान पाये हैं। १३–कुलाभिमान से रहित।

लोभ लहिरंतर धरम धीर जंतु है ॥
माया मोह द्रोह कै अरथ परमारथ सैं,
अहंमेव टेव[1] दया द्रवीभूत[2] संत है ।
दुकृत सुकृत चित् मित्र सत्रुता सुभाव,
परउपकार औ विकार मूल मंत है ॥ १७७ ॥

[3]सत्गुरु सिक्ख रिदै प्रथम कृपा कै बसै,
तां पाछै करत आज्ञा मया कै मनावई ।
[4]आज्ञा मान ज्ञान गुरु परम निधान दान,
गुरमुख सुख फल निज पद पावई ॥
[5]नाम निहकाम धाम सहज समाधि लिव,
अगम अगाध कथा कहित न आवई ।
जैसा जैसो भाउ करि पूजत पदारबिंद,
सकल संसार कै मनोरथ पुजावई ॥ १७८ ॥

जैसे प्रिया भेटत अधान[6] निरमान[7] होत,
[8]बांछित निधान खान पान अग्रभाग है ।
जनमत सुत खान पान को संजम करै,
[9]सुत हित रस कस सकल तिआग है ॥
तैसे गुरु चरन सरन कामना पुजाइ,
[10]नाम निहकाम धाम अनत न लाग है ।

१–अहंकारी स्वभाव । २–दयार्द्र-विनम्र । ३–पहले सत्गुरु शिष्य के हृदय में कृपा कर के निवास करते हैं उपरान्त उसे आदेश देते हैं और अपनी दया दृष्टि से उसे मना भी लेते हैं । ४–आदेश को मान लेने से वह शिष्य गुरु-ज्ञान की निधि का दान प्राप्त करता है और गुरुमुख हो कर निज स्वरूप का सुख फल प्राप्त करता है । ५–(धाम) घर में रह कर ही निष्काम भाव से नाम में लिव (वृत्ति) लगाते हैं और सहज में उन की समाधि लग जाती है, उन की कथा अगम्म और अगाध है । ६–गर्भ । ७–विनम्र हो कर । ८–उस के चाहे हुए भोजन । ९–पुत्र के हित के लिए खट्टा-मीठा सब त्याग देती है । १०–निष्काम रह कर घर में रहते हुए नाम स्मरण करते हैं अन्य कहीं नहीं भटकते ।

[1]निसि अंधिकार भवसागर संसार बिखे,
पंच तसकर जीत सिख ही सुजागि है ॥ १७६ ॥

सत्गुरु आज्ञा प्रतिपालक बालक[2] सिख,
[3]चरन कमल रज महिमा अपार है।
सिव सनकादिक ब्रह्मादिक न गम्मता है,
निगम[4] सेखादि नेति नेति कै उचार है॥
चतुर पदारथ[5] त्रिकाल[6] त्रिभवन[7] चाहै,
जोगि भोगि[8] सुरसरि[9] सरधा संसार है।
[10]पूजन के पूज अरु पावन पवित्र करै,
अकथ कथा बीचार बिमल बिथार है ॥ १८० ॥

[11]गुरमुख सुख फल चाखत भई उलटि,
तन सनातन मन उनूमन माने है।
दुरमति उलटि भई है गुरमति रिदै,
दुरजन सुरजन कर पहचाने है॥
संसारी सै उलटि निरङ्कारी भए,
बग बंस हंस भए सत्गुरु ज्ञाने है।
[12]कारन अधीन दीन कारन करन भए,
हरन भरन भेद अलख लखाने है १८१ ॥

गुरमुख सुख फल चाखत उलटि भई,
जोनि कै अजोनि भए कुल अकुलीन[13] है।

१—आयु की अन्धेरी रात में जन्म मरण रूप संसार सागर में पांच काम क्रोधादि चोरों पर विजय प्राप्त करने वाले सिख सजग रहते हैं। २—अबोध। ३—उस शिष्य के चरण-धूलि की अपार महिमा है। ४—वेद। ५—धर्म अर्थ काम मोक्ष। ६—भूत भविष्य वर्त्तमान। ७—स्वर्ग मात और पाताल। ८—योगी और भोगी। ६—गङ्गा। १०—पूज्य जनों को पूज्य एवं पवित्रों को पवित्र बनाती है उस की अकथ्य कथा और निर्मल विचार का बहुत विस्थार है। ११—गुरुमुख के ज्ञान स्वरूप सुख फल को चखने से ही वृत्ति देहाध्यास से उलट गयी, मन ज्ञानावस्था में मान गया अर्थात् स्थित हो गया। १२—कारणों के आधीन जो दीन हो रहे थे वे अब कारणों के कर्त्ता हुए, पालन व संघार करने वाले अलक्ष को जान पाये हैं। १३—कुलाभिमान से रहित।

जंतुन ते संत औ बिनासी अबिनासी भए,
अधम असाधु भए साधु परवीन है ॥
लालची ललूजन[1] ते पावन कै पूज कीने,
[2]अंजन जगत मैं निरंजनई दीन है।
काटि माया फासी गुरु गृह मैं उदासी कीने,
अनभै[3] अभ्यासी प्रिय प्रेम रस भीन है ॥ १८२ ॥

[4]सत्गुरु दरस धिआन असचरज मय,
दरसनी होत खट दरस अतीत है।
सत्गुरु चरन सरन निहकाम धाम,
सेवक न आन देव सेव की न प्रीति है ॥
सत्गुरु सबद सुरति लिव मूल मंत्र,
आन तंत्र मंत्र की न सिक्खन प्रतीत है।
सत्गुरु कृपा साधु संगति पंगति सुख,
हंस बंस मानसर अनत न चीत है ॥ १८३ ॥

घोंसला मों अण्डा तजि उडत आकासचारी,
संध्या समय अण्डा हेत[5] चेत फिर आवई।
तृरिया तिआग सुत जात बन खंड बिखै,
सुत की सुरति गृह आइ सुख पावई ॥
[6]जैसे जल कुंडि करि छाडियत जलचरी,
जब चाहे तब गहि लेत मनि भावई।
तैसे चित चंचल भ्रमत है चतुर कुंट,
[7]सत्गुरु बोहिथ बिहंग ठहिरावई ॥ १८४ ॥

१–लम्पट। २–माया रूप जगत में (निरञ्जनई) माया से रहित अवस्था दे दी गयी है। ३–अनभय=भय रहत परमात्मा। ४–सत्गुरु जी के आश्चर्यमय दर्शन का ध्यान करने से योगी जगम श्रेवड़े आदि षट् दर्शन वाले अपने दर्शनों (मतों) को त्याग देते हैं। ५–मोह। ६–जैसे थोड़े पानी के कुण्ड में मछुली को छोड़ा जाये तो जब चाहे पकड़ सकते हैं। ७–चञ्चल चित्त के ठहराने के लिए (ससार सागर में) सत्गुरु जहाज हैं।

[1]चतुर बरन मै न पाईऐ बरन तैसो,
खट दरसन मै न दरसन जाति है।
[2]सिंमृति पुरान बेद शासत्र समान खान,
राग नाद बाद मै न सबद उदोत है॥
[3]नाना बिंजनाद स्वाद अंतर न प्रेम रस,
सकल सुगंधि में न गंधि संधि होत है।
[4]उसन सीतलता सपरस अपरस न,
गुरमुख सुख फल तुल ओत पोत है॥ १८५॥

[5]लिखन पढ़न तौ लौ जानै दिसंतर जौ लौ,
कहित सुनत है बिदेस के संदेस कै।
[6]देखत औ देखियत इत उत दोइ होइ,
भेटत परसपर बिरह अवेस कै॥
[7]खाइ खाइ खोजी होइ खोजत चतुर कुंट,
मृग मद जुगति न जानत प्रवेस कै।
[8]गुरसिख संधि मिले अंतर अंतरजामी,
स्वामी सेव सेवक निरंतर आदेस कै॥ १८६॥

दीपक पतंग संग प्रीति इक अङ्गी होइ,
चंद्रमा चकोर घन[9] चात्रिक न होत है।

१-गुरुसिखों के वर्ण जैसा चार वर्णों में कोई नही, न ही उस के दर्शन जैसी षट्-दर्शनों में कान्ति है। २-शब्द के (उदोत) प्रगटता की समानता वेद शास्त्रों तथा स्मृति पुराणों, राग नाद आदि वाद्यों में नहीं है। ३-नाना प्रकार के भोजनों के स्वाद में प्रेम जैसा रस नहीं है। ४-गुरुमुख सुखफल में (ओत पोत) मिल कर गर्मी सर्दी अथवा स्पर्श अस्पर्शादि की तुलना नहीं करते। ५-पत्रादि का लिखना पढ़ना तब ही होता है जब प्रिय देशान्तर में हो। ६-तब तक प्रियतम औ प्रिया दोनो का इधर उधर देखना और दिखाना होता है जब तक वह बिरह के आवेश में परस्पर मिल नहीं जाते। ७-अज्ञान के स्वभाव वाला मृग कस्तूरी में प्रवेश पाने की युक्ति न जानने से खोजता हुआ चार कुण्ट में भटकता है। ८-जो शिष्य गुरु की सन्धि में मिले उन को हृदय में ही अन्तर्यामी मिल गये वे अपने स्वामी की सेवा में सेवक हो कर निरन्तर उन की आज्ञाओं का पालन करते हैं। ९-बादल।

चकई औ सूर, जल मीन, ज्यों कमल अलि[१],
कासट अगनि, मृग नाद को उदोत है ॥
पित सुत हित अरु भामिनी भतार गति,
माया औ संसार [२]द्वार मिटत न छोत है।
गुरुसिख संगति मिलाप को प्रताप साचो,
लोक परलोक सुखदाई ओत पोत है ॥ १८७ ॥

[३]लोगन मै लोगाचार अनिक प्रकार प्यार,
मिथन ब्योहार दुखदाई पहिचानियै।
[४]बेद मरजाद मैं कहित है कथा अनेक,
सुनियै न तैसी प्रीति मन मै न मानियै ॥
[५]ज्ञान उनमान मैं न जगत भगत बिखै,
राग नाद बाद आदि अंत हू न जानियै।
गुरसिख संगत मिलाप को प्रताप जैसो,
तैसो न त्रिलोक बिखै और ठौर आनियै ॥ १८८ ॥

पूरण ब्रह्म गुरु पूरन कृपा जौ करै,
हरे हौमै[६] रोग रिदै निम्रता निवास है।
सबद सुरति लिवलीन साधु संगि मिल,
भावनी[७] भगति भाइ[८] दुबिधा बिनास है ॥
प्रेम रस अमृत निधान पान पूरन ह्वै,
[९]बिसम बिस्वास बिखै अनभै[१०] अभ्यास है।
सहज सुभाइ चाइ चिंता मै अतीत चीत,

१-भवरा। २-एकाङ्गी प्रेम वाले भी अपने मिलाप के द्वार को छोडते नहीं। ३-संसार के लोगों में लोक रीति के अनेक तरह के प्यार मिथ्या व्यवहार अतएव दुखदाई हैं। ४-वेद-मर्यादा मै कथा तो बहुत कही जाती हैं वैसो प्रीत न तो वहा सुनी ही जाती है और ना ही मन मानता है। ५-ज्ञान के विचार में तथा जगत में रहते हुए ईश भक्त में, आदि से अन्त तक, राग नाद के यंत्रों में भी गुरु सिखों की प्रीति का सा मिलाप नहीं है। ६-अहम्मेव (अहंकार)। ७-श्रद्धा। ८-प्रेम। ९-आश्चर्य विश्वास में दृढ़ रह कर। १०-निर्भय हो कर।

[1]सत्गुरु सत्य गुरुमति गुरुदास है ॥ १८६ ॥

गुरमुखि सबद सुरति लिव साधु संगि,
त्रिगुन[2] अतीत चीत [3]आसा मै निरास है।
नाम निहकाम धाम सहज सुभाइ रिदै,
बरतै बरतमान ज्ञान को प्रगास है ॥
सूखम सथूल एक [4]एक औ अनेक मेक,
ब्रह्म बिवेक टेक ब्रह्म बिस्वास है।
चरन सरन लिव आपा खोइ होइ रेनु,
सत्गुरु सत्य गुरुमति गुरुदास है ॥ १६० ॥

[5]हौमै अभिमान कै अज्ञानता अवज्ञा गुरु,
निंदा गुरुदासन कै नाम गुरुदास है।
महुरा कहावै मीठा, गई सो कहावै आई,
रूठी को कहित तुठी होत उपहास है ॥
बांझ कहावै सुपूती दुहागनि सुहागनि,
कुरीति सुरीति काट्यो नकटा को नास है।
बांवरो कहावै भोरो, आंधरै कहैं सुजाखो,
चंदन समीप जैसे बास मै न बास[6] है ॥ १६१ ॥

[7]गुरु सिख एक मेक रोम न पुजस कोटि,
होम जग भोग नईवेद पूजाचार है।
जोग ज्ञान ध्यान अध्यातम ऋद्धि सिद्धि निधो,
जप तप संजमादि अनिक प्रकार है ॥

१-पूज्य सत्गुरुओं की सत्य शिक्षा को धारण करते हुए गुरु के दास हुए हैं। २-रज तम सत आदि तीन गुण। ३-आशा रूप संसार में रहते हुए भी निराश हो कर रहते हैं। ४-एक और अनेक में व्यापक। ५-भाई गुरुदास जी विनयशील और विनम्र शिष्य होने से अपने आप में दुर्गुण बता रहे हैं। मैं अहङ्कार और अभिमान में अज्ञानता द्वारा गुरु की अवज्ञा करता हूं गुरु दासों की निन्दा करता हूं किन्तु नाम गुरुदास रखा हुआ है। ६-सुगन्धि। ७-जो गुरु शिक्षा से मिले हैं उन के एक रोम को करोड़ों हवन यज्ञ भोग नैवेद्यादि पूजा आदि नहीं पहुंच सकते।

सिंमृति पुरान बेद शासत्र औ संगीत,
सुरसुरि देव सबल माया बिसथार है।
कोटिन कोटानि सिख संगति असंख्य जाकै,
श्री गुरु चरन नेति नेति नमसकार है॥ १६२॥

चरन कमल रज गुरु सिख माथै लागी,
[1]बांछित सकल गुरु सिख पग रेनु है।
कोटिन कोटान कोटि कमला कलपतरु,
पारस अमृत चिंतामणि कामधेनु है॥
सुर, नर, नाथ,[2] मुनि त्रिभुवन औ त्रिकाल,
लोग बेद ज्ञान उनमान [3]जेन केन है।
कोटिन कोटान सिख संगत असंख्य जाकै,
नमो नमो गुरुसिख सुख फल देन है॥ १६३॥

गुरुसिख संगति मिलाप को प्रताप अति,
भावनी भगति भाइ चाइकै[4] चईले है।
[5]दसटि दरस लिव अति असचरज मय,
बचन तंबोल संग रंग ह्वै रंगीले है॥
सबद सुरति लिव लीन जल मीन गति,
प्रेम रस अमृत कै रसिक रसीले है।
[6]सोभा निधि सोभ कोटि ओट लोभ कै लुभित,
कोटि छवि छाह छिपै छवि कै छवीले है॥ १६४॥

गुरुसिख एकमेक रोम की अकथ्य कथा,
गुरुसिख साधु संग महिमा को पावई।

१–समूह जगत के लोग गुरु सिखों की चरण-धूलि चाहने लगते हैं। २–नौ नाथ। ३–जितने भी हैं। ४–चाव। ५–अति अश्चर्य मय (गुरु) दर्शन में वृत्ति लगा कर पान की भान्ति गुरु वचनों के रंग में रंगे हुए हैं। ६–शोभा निधि (सिख) की शोभा की ओट में करोड़ों शोभा लुभित हो रही हैं तथा छवि (फबन) के छवीले (गुरु सिख) की प्रछाहीं में करोड़ों छवियां छिपी जा रही हैं।

एक ओअंकार के बिथार को न पारावार,
[1]सबद सुरति साधु संगति समावई ॥
पूरन ब्रह्म गुरु साधु संग मै निवास,
दासन दासान मति आपा न जतावई ।
सत्गुरु गुरु, गुरुसिख, साधु संगति है,
ओत पोत जोति[2] वांकी नाही बनिआवई ॥ १९५ ॥

पवनहि पवन मिलत नही पेखियत,
सलिलै सलिल मिलत नाहि पहिचानियै ।
जोती मिले जोति होत भिन्न भिन्न कैसे कर,
भसमहि भसम समानी कैसे जानियै ॥
कैसे पंच तत मेल खेल होत पिण्ड[3] प्रान,
बिछुरत पिंड प्रान कैसे उनुमानियै ।
अबिगति गति अति बिसम असचरज मय,
ज्ञान ध्यान अगमिति कैसे उर आनियै ॥ १९६ ॥

चार कुंट सात दीप मै न नवखंड बिखै,
दहदिसं देखियै न बन गृह जानियै ।
लोग वेद ज्ञान उनुमान कै न देख्यो सुनियो,
स्वरग पयाल मृत मण्डल न मानियै ॥
भूत औ भविखत न वर्तमान चारों जुग,
चतुर बरन खट दरस न ध्यानियै,
गुरु सिख्न संगति मिलाप को प्रताप जैसो,
तैसो और ठौर सुनियै न पहिचानियै ॥ १९७ ॥

[4]ऊख मै पयूख-रस रसना रहित होइ,
चंदन सुवास तास नासिका न होत है ।

१-ब्रह्म, साधु संगति की वृत्ति में समाया है । २-कांती । ३-शरीर ।
४-ईख में अमृत रस इसी लिये है कि वह अपने रस को चाख नहीं सकता, वह रसना रहित है । चन्दन इसी लिए सुगन्धि देता है कि वह नासिका विहीन है ।

[१]नाद बाद सुरति बिहून बिसमादि गति,
बिबिध बरन बिनु द्दसटि सुजोति है ॥
[२]पारस परस न सपरस उसन सीत,
कर चरण हीन धर औषधी उदोत है।
जाहि पंच दोख निरदोख मोख पावै कैसे,
[३]गुरुमुख सहज संतोख ह्वै अछोत है ॥ १६८ ॥

निहफल जिह्वा है सबद सुआद हीन,
निहफल सुरति न अनहदि नाद है।
निहफल द्दसटि न आपा-आप[४] देखियत,
निहफल स्वास नही बासु परमादि[५] है ॥
निहफल कर गुरु पारस परस बिन,
गुरमुख मारग बिहून पग बाद[६] है।
गुरमुख अंग अंग पंग[७] सरबंग लिव,
द्दसटि सुरति साध संगति प्रसादि है ॥ १६६ ॥

पसूआ मनुष देहि अंतर अंतरु इहै,
[८]सबद सुरति को बिबेक अबिबेक है।
पसु हरिआउ[९] कह्यो सुन्यो अनसुन्यो करै,
मानस जनम उपदेस रिदै टेक है ॥
पसूआ सबद हीन जिह्वा न बोल सकै,
मानस जनम बोलै बचन अनेक है।

---

१ वाद्य का आलाप श्रवण विहीन है तथा अनेक प्रकार के रंग दृष्टि की ज्योति के बिना हैं। २-पारस से सवर्ण बनाने की शक्ति इसी लिए है कि उस में गर्मी सर्दी की स्पर्शता नहीं है, पृथिवी से औषधियां उत्पन्न होती हैं किन्तु उन के हाथ पांव नहीं। ३-इसी लिए गुरुमुख लोग सहजे ही सन्तोष में रहते हैं तथा इन इन्द्रियों के विषयों से निर्लेप रहते हैं। ४-स्व-स्वरूप। ५-परमादि सुगंधि (भक्ति)। ६-व्यर्थ। ७-शुद्ध। ८-(मनुष्य को) शब्द के (सुरति) ज्ञान का विवेक है (पशु को) अविवेक है)। ९-हरी खेती।

[1]सबद सुरति सुनि समझि बोलै बिबेकी,
नातर अचेत पसु प्रेत हूँ मैं एक है ॥ २०० ॥

सबद सुरति हीन पसूआ पवित्र देहि,
खड़[2] खाइ अमृत प्रवाहि को सुआउ[3] है।
गोबर गोमूत्र सूत्र[4] परम पवित्र भए,
मानस देहि निषिद्ध अमृत अप्याउ[5] है ॥
बचन बिबेक टेक साधुन कै साधु भए,
अधम असाधु खल बचन दुराउ[6] है।
[7]रसना अमृत रसि रसिक रसाइनि ह्वैं,
मानस बिख धर बिखम बिख ताउ है ॥ २०१ ॥

पसू खड़ि खात खल सबद सुरति हीन,
मौन को महातम पैं अमृत प्रवाह जी।
नाना मिसटान्न खान पान को मानुस मुख
रसन रसीली होइ सोई भली ताहि जी॥
[8]बचन बिबेक टेक मानस जनम फल,
बचन बिहून पसु परमिति आहि जी।
मानुस जनमु गति[9] बचन बिबेक हीन,
[10]बिखधर बिखम चकित चित चाहि जी ॥ २०२ ॥

परस ध्यान बिरहा ब्यापै दृगन ह्वै,
स्रवन बिरह ब्यापै मधुर बचन कै।

१-यदि मनुष्य भी शब्द की ज्ञात को सुन समझ कर बोलता है तब तो विवेकी है, नहीं तो वह भी अचेत पशु-प्रेतों में से ही एक समझना चाहिये। २-घास। ३-लाभ। ४-कर्म-कांड की मर्य्यादा। ५-अपवित्र भोजन। ६-छिपाव, छल-कपट। ७-(साधुओं की) रसना अमृत रस रसायण की रसिक होती है परन्तु असाधु विषधर (सर्प) की तरह कठिन विष की तप्त देने वाले हैं। ८-विवेक (विचार) वाले वचनों की टेक लेना ही मनुष्य जन्म का फल है (विवेक मय) बचनों के अतिरिक्त पशु-मर्य्यादा से भी परे है। ९-प्राप्त। १०-विषम विषधर भी उसे देख कर चित में चकित होते हैं।

[1]संगम समागम बिरहों ब्यापै जिहवा कै,
पारस परस अंकमाल की रचन कै ॥
सिहजा गवन बिरहा ब्यापै चरन ह्वै,
प्रेम रस बिरह सर्वंग ह्वै सचन[2] कै।
रोम रोम बिरह बृथा कै बिहबल भई,
ससा[3] ज्यों बहीर[4] पीर प्रबल तचन[5] कै ॥ २०३ ॥

[6]किंचित कटाच्छ कृपा बदन अनूप रूप,
अति असचरज मय नाइका कहाई है।
[7]लोचन की पुतरी मै तनिक तारिका स्याम,
तांको प्रतिबिंब तिल बनिता बनाई है ॥
[8]कोटिन कोटानि छबि तिल (मैं) छपत छाह,
कोटिन कोटानि शोभ लोभ ललचाई है।
कोटि ब्रह्मंड के नाइक की नाइका भई,
[9]तिलके तिलक सर्ब नाइका मिटाई है ॥ २०४ ॥

सुपन चरित्र चित्र बानक[10] बने बचित्र,
पावन पवित्र मित्र आज मोरे आए हैं।
परम दयाल लाल लोचन बिसाल मुख,
बचन रसाल मधु मधुर पीआए हैं ॥
सोभत सेजासन बिलासन[11] दे अंकमाल[12],

१-परस्पर सङ्गम का समागम उपस्थित होने पर जो चर्चा होती थी उस का वियोग जिह्वा को हुआ है, परस्पर आलिंगन का बिरह अंकमाल (छातियों) की रचना को हुआ। २—मिलना। ३—खरगोश। ४-शिकारियों की सेना। ५-ताड़ना। ६-रञ्चक मात्र कृपा कटाक्ष द्वारा दृष्टि पात करने से मुखाकृति उपमा रहित हो गयी जिस से नायका अति आश्चर्य-मय कहलाई। ७—(प्रिय सद्गुरु के) नेत्रों की काली पुतली में जो नन्हा सा काला तारा है उस के तिल मात्र प्रतिबिम्ब ने मुझे स्त्री बना दिया है। ८-करोड़ों छवियां (श्री गुरु जी के) नेत्रों के तिल की परछाईं में छिप जाती हैं, करोड़ों शोभाएं लोभ में ललचा रही हैं। ९-तिल मात्र की कृपादृष्टि से मैं सब की (तिलक) शिरोमणि हो गयी हू शेष सब नायकाएं मिटा दी गयी। १०-बनावट में। ११—आनन्द। १२—हृदय।

प्रेम रस बिसम ह्वै सहज समाए हैं।
चात्रिक सबद सुन अखियां उघर गई,
भई जल मीन गति बिरह जगाए हैं॥ २०५॥

देखबे को द्रसटि न दरस दिखाइबे कौ,
कैसे प्रिय दरसन देखियै दिखाइयै।
कहिबे कौ सुरति[१] है न स्रवन सुनबे कौ,
कैसे गुन निधि गुन सुनियै सुनाइयै॥
मन मै न गुरमति गुरमति मै न मन,
निहचल ह्वै न उनमन[२] लिवलाइयै।
अंग अंग भंग,[३] रंग-रूप-कुल-हीन, दीन,
[४]कैसे बहु नाइक की नाइका कहाइयै॥ २०६॥

बिरह बियोग रोग दुखित ह्वै बिरहनी,
कहित संदेस पथिकन पै उसास[५] ते।
देखहु त्रिगद[६] जोनि प्रेम कै परेवा[७],
[८]पर करा, नारि देख टूटत अकास से॥
तुम तो चतुर दस विद्या के निधान प्रिय,
त्रिया न छुडावहु (हाय) बिरह रिपु त्रास ते।
[९]चरन बिमुख दुख तारिक चमतकार,
हेरत हिराहि रबि दरस प्रगास ते॥ २०७॥

जोई प्रिय[१०] भावै ताँहि देख औ दिखावै आप,
[११]द्रसटि दरस मिल सोभा दै सुहावई।

१–बुद्धि। २–ज्ञानावस्था। ३–टूटा हुआ है। ४–बहु नायकाओं के नायक की प्रिया नायका कैसे कहला सकती हूं। ५–शोक सूचक लम्बी सांस। ६–त्रियग-योनि, टेढा चलने वाले पशु पक्षी। ७–कबूतर। ८–अपनी नारी को पृथिवी पर देख कर आकाश से नीचे टूट कर आ पढ़ता है। ९–आपके चरनों से विमुख होने के कारण रात्रि को तारिका मण्डल का चमत्कार तथा दिन को देख कर दुखी होती हूँ। १०–प्यारा परमेश्वर। ११–जज्ञासु की दृष्टि और परमेश्वर के दर्शन मिल जायें तो जज्ञासु को शोभा दे कर शोभावान बना देता है।

जोइ प्रिय भावै मुख बचन सुनावै तांहि,
सबद सुरति गुरु ज्ञान उपजावई ॥
जोई प्रिय भावै दस दिस प्रगटावै तांहि,
सोई बहु नाइक की नाइका कहावई ।
जोई प्रिय भावै सिहजासन मिलावै तांहि,
प्रेम रस बस करि अपिउ[१] पीआवई ॥ २०८ ॥

जोई प्रिय भावै तांहि सुंदरता कै सुहावै,
सोई सुंदरी कहावै छबि कै छबीली है ।
जोई प्रिय भावै तांहि [२]बानक बधू बनावै,
सोई बनिता[३] कहावै [४]रंग मै रंगीली है ॥
जोई प्रिय भावै ताकी सभै कामना पुजावै,
सोई कामिनी कहावै [५]सील कै सुसीली है ।
जोई प्रिय भावै तांहि प्रेम रस लै पीआवै,
सोई प्रेमनी कहावै रसिक रसीली है ॥ २०९ ॥

[६]बिरह बियोग रोग सेत रूप ह्वै कृतास,
टूक टूक भए पाती लिखियै बिदेस ते ।
बिरह अगनि से [७]सवानी मास कृसन ह्वै,
बिरहनी भेख लेख बिखम संदेस ते ॥
बिरह बियोग रोग लेखनि की छाती फटी,
रुदन करत लिखै आतम आवेस[८] ते ।
[९]बिरह उसासन प्रकासन दुखित गति,
बिरहनी कैसे जीऐ बिरह प्रवेस ते ॥ २१० ॥

१–अमृत । २–मर्य्यादा पूर्वक स्त्री बनाता है । ३–पत्नी । ४–प्रेम के रंग में रंगी हुई । ५–शुद्ध आचरण वाली सुशीला । ६–विरह तथा वियोग के रोग से (मेरा शरीर) कृतास (कागज) की तरह सफेद तथा टुकडे टुकड़े हो गया है' ऐसी पत्रिका (स्त्री) विदेश (गए पती को) लिखती है । ७–(आपकी) पत्नी का मास काला हो गया है अत वह बिरहणी के वेष में अपने लिखे पत्र पर कठिन सन्देशे लिख रही । ८–जोश से । ९–बिरह के कारण ठंडे सासों के निकलने से दु खी हालत है ।

पूरब संजोग [1]मिल सुजन सगाई होत,
सिमरत सुनि सुनि स्रवन संदेस कै।
[2]विधि से बिवाहे मिल द्रसटि दरस लिव,
विद्यमान ध्यान रस रूप रंग भेस कै॥
[3]रैन सैन सभै सुति सबद बिबेक टेक,
आतम ज्ञान परमातम प्रवेस कै।
[4]ज्ञान ध्यान सिमरन उल्लंघ इकत्र होइ,
प्रेम रस बस होत बिसम अवेस कैं॥ २११ ॥

एक सैं अधिक एक नाइका अनेक जांकै,
दीन कै दयाल ह्वै कृपाल कृपाधारी है।
सजनी [5]रजनी-ससि प्रेम रस औसर मै,
[6]अबले अधीन गति बेनती उचारी है॥
जोई जोई आज्ञा होइ सोई सोई मान जान,
हाथ जोरै अग्र भाग होइ आज्ञा कारी है।
[7]भावनी भगति भाइ चाइ कै चईलो भजौ,
सफल जनम धन्य आज मेरी बारी है॥ २१२ ॥

[8]प्रीतम की पुतरी मै तनिक तारिका स्याम,
तांको प्रतिबिंब तिल तिलक त्रिलोक को।

१-भले पुरुषों के (परस्पर) मिलने से (कन्या की) सगाई होती है। २-शास्त्र की विधि के अनुसार विवाह हो जाने पर पत्नि की दृष्टि और वृत्ति (पती के) उपस्थित दर्शन के ध्यान में तथा उस के वेश रूप रङ्ग आदि का रस लेने में लग जाती है। ३-रात को सोने के समय अपने (परमात्म) पती के ज्ञान को अपने आत्मा में प्रवेश देने के लिए शब्द के विचार की टेक श्रुति में लेती है। ४-दोनो पती-पत्नी एकत्र होने पर ज्ञान, ध्यान तथा स्मरण की अवस्थाओं को उल्लंघ जाते हैं तथा विस्मयता में स्थिति पा कर प्रेम रस के वश में हो जाते हैं। ५-चान्दनी रात को। ६-अबलाओं की सी नम्र गति के साथ। ७-श्रद्धा प्रेम तथा भक्ति से (विनय करे) हे चाईले (आनन्दी) पति! आज मेरे साथ रमण करो। ८-प्रियतम के नयनों की पुतलियों के नन्हे से काले तारे का तिल मात्र प्रतिबिम्ब मुझ पर जो पड़ा तो मैं त्रिलोकों की शिरोमणि बना दी गयी।

[1]बनिता बदन पर प्रगट बनाइ राख्यो,
कामदेव कोटि लोट पोट अविलोक को ॥
कोटिन कोटान रूप की अनूप रूप छबि,
सकल सिंगार को सिंगार सर्व थोक को।
किंचित कटाच्छ कृपा तिल की अतुल सोभा,
[2]सरसुती कोट मान भंग ध्यान कोक[3] को ॥ २१३ ॥

[4]श्री गुरु दरस ध्यान खट-दरसन देखे,
सकल दरस समदरस दिखाए है।
[5]श्री गुरु सबद पंच सबद गिआन गंम,
सरब सबद अनहद समझाए है॥
[6]मंत्र उपदेस परवेस कै अवेस रिदै,
आदि कौ आदेस कै ब्रह्म ब्रह्माए है।
ज्ञान ध्यान सिमरन प्रेम रस रसिक ह्वै,
एक औ अनेक के बिवेक प्रगटाए है॥ २१४ ॥

[7]सत् बिन संजमु न पत बिनु पूजा होइ,
सचु बिनु सोच न जनेऊ जत हीन है।
बिनु गुर दीखिआ ज्ञान बिन दर्स ध्यान,
भाउ बिन भगति न कथनी भय भीन है॥
सांति न संतोख बिनु सुख न सहज बिन,

१-जिस स्त्री ने अपने मुख पर नियमों के तिल को प्रत्यक्ष ही बना रखा है उस के रूप को देख कर करोड़ों कामदेव लोट पोट हो रहे हैं। २-सरस्वती का शोभा वर्णन करने और चकोर के ध्यान लगाने का मान भङ्ग हुआ है। ३-चकोर। ४-जो योगियों के षट् सम्प्रदायों में श्री गुरु जी का दर्शन देखे उसे सब दर्शन एक से दिखाई देने लगते हैं। ५-श्री गुरु-शब्द को सुन लेने से अन्य (पच) महापुरुषों के शब्दों के ज्ञान में गम्यता प्राप्त हो जाती है। सर्व शब्दों में अनहद् के भाव को समझने लगते हैं। ८-गुरु मत्र का हृदय में प्रवेश करा लेने से सकल ब्रह्माण्ड में आदि ब्रह्म को आदेश (नमस्कार) कराते हैं। ७-सत्य के बिना सयम व्यर्थ है, पात्रता के विना पूजा (ढोंग है) सच के विना पवित्रता नहीं यत के अतिरिक्त यज्ञोपवीत किसी काम का नहीं।

सबद सुरति बिन प्रेम न प्रवीन है।
ब्रह्म बिबेक बिनु हिरदे न एक टेक,
बिनु साधसंगत न रंग लिवलीन है॥ २१५॥

[1]चरन कमल मकरंद रस लुभित ह्वै,
चरन कमल तांहि जग मधुकर है।
श्री गुरु सबद धुनि सुनि गद गद होइ,
अमृत बचन तांहि जगत् उधर है॥
किंचित कटाच्छ कृपा गुरु दया निधान,
सरब निधान दान दोख दुख हर है।
श्री गुरु दासन दास दासन दासान दास,
तास न इंद्रादि ब्रह्मादि समसर है॥ २१६॥

जब ते परम गुरु चरन सरनि आए,
चरनि सरनि लिव सकल संसार है।
चरन कमल मकरंद चरणामृत कै,
चाहत चरन रेनु सकल आकार[2] है॥
चरन कमल सुख संपट[3] सहज घरि,
निहचल मति परमारथ बीचार है।
चरन कमल गुरु महिमा अगाध बोध,
नेति नेति नमो नमो कै नमसकार है॥ २१७॥

चरन कमल गुरु जबते रिदै बसाए,
तब ते सथिर चित्त अनत न धावई।
चरन कमल मकरंद चरणामृत कै,
प्रापति अमरपद सहज समावई॥
चरन कमल गुरु जब ते ध्यान धारे,
आन ज्ञान ध्यान सरबंग बिसरावई।

१–जो मनुष्य सत्गुरु के चरण कमलों के पराग-रस का लोभी होता है, जगत उस के चरण कमलों का भंवरा बन जाता है। २–जगत। ३–मिलाप।

चरन कमल गुरु मधुप कमल गति,
[१]मन मनसा थकित निज गृह आवई ॥ २१८ ॥

[१]नारी बहु नाइक की नाइका पिआरी केरी,
सेरी स्रान प्रबल ह्वै निद्रा नयन छाइकै।
प्रेमिनी पतिब्रता चाईली प्रिय आगम[२] की,
[३]निद्रा को निरादरु कै सोई न भय भाइ कै ॥
[४]सरी हुती सोत भई गई सुखदाइक पै,
जहां के तहां लै राखे संगम सुलाइ कै।
सुपन चरित्र ये न मित्रहि मिलन दीनी,
ब्रम रूप जामिनी न निबहै बिहाइ कै ॥ २१९ ॥

रूप हीन, कुल हीन, गुन हीन, ज्ञान हीन,
सोभा हीन, भाग हीन, तप हीन बावरी।
द्रसटि दरस हीन, सबद सुरति हीन,

अगुआ ऊबाट पारै, कापै दीन भाखियै ॥
खेत जो खाइ बार, कौन धाइ राखनहार,
चक्रवै[1] करे अन्याउ पूछै कौन साखियै[2] ।
रोगियै जो बैद मारै, मित्र जो कमावै द्रोह,
गुरु न मुकति करै कापै अभिलाखियै ॥ २२१ ॥

मन मधुकर गति भ्रमत चतुर कुंट,
चरन कमल सुख संपट समाईऐ ।
सीतल सुगंधि अति कोमल अनूप रूप,
मधु मकरंद रस अनत न धाईयै ॥
[3]सहज समाधि उनमन जगमग जोति,
अनहद धुनि रुणझुण लिव लाईऐ ।
[4]गुरमुखि बीस इकईस सोहं सोई जानै,
आप अपरंपर परम पद पाईऐ ॥ २२२ ॥

मन मृग, मृगमद[5] अछत अंतरगति,
भ्रम्यो भ्रम खोजत फिरत बनमाही जी ।
दादर सरोज[6] गति एकै सरवरु बिखै,
[7]अंतर दिसंतर ह्वै समझत नाही जी ॥
जैसे बिखिआधर[8] तजे न बिख बिखम को,
अहिनिस बावन-बिरख[9] लपटाही जी ।
[10]जैसे नरपति सुपनंतर भेखारी होइ,
गुरमुख जगत मै भ्रम मिटाही जी ॥ २२३ ॥

१–सम्राट । २–गवाही । ३–ध्यानावस्था में ज्ञान की प्रकाशित ज्योति में सहज समाधि लगा कर हरि कीर्त्तन अनहद शब्द की झंकार में वृत्ति लगाता है । ४–गुरुमुख विश्व में एक ईश्वर को व्यापक और अभेद समझते हैं अतः (अपर) संसार से परे अमर पद को प्राप्त कर लेते हैं । ५–कस्तूरी । ६–कमल । ७–अपने हृदय में भेद होने से । ८–विषधर (सर्प) । ९–चन्दन वृक्ष । १०–जैसे कोई राजा स्वप्न में भिखारी हो जाये, किन्तु जागने पर पुनः वह राजा ही है; इसी प्रकार जो लोग गुरुमुख हुए हैं, उन का जगत में रहते हुए ही भ्रम दूर हो जाता है ।

चरन कमल गुरु मधुप कमल गति,
[1]मन मनसा थकित निज गृह आवई ॥ २१८ ॥

[2]बारी बहु नाइक की नाइका पिआरी केरी,
घेरी आन प्रबल ह्वै निद्रा नयन आइकै ।
प्रेमिनी पतिब्रता चईली प्रिय आगम[3] की,
[4]निद्रा को निरादरु कै सोई न भय भाइ कै ॥
[5]सखी हुती सोत भई गई सुखदाइक पै,
जहां के तहां लै राखे संगम सुलाइ कै ।
सुपन चरित्र ये न मित्रहि मिलन दीनी,
जम रूप जामिनी न निबहै बिहाइ कै ॥ २१६ ॥

रूप हीन, कुल हीन, गुन हीन, ज्ञान हीन,
सोभा हीन, भाग हीन, तप हीन बावरी ।
दसटि दरस हीन, सबद सुरति हीन,
बुधि बल हीन सूधे हसत न पावरी ॥
प्रीति हीन, रीति[6]हीन, भाइ, भय प्रतीति[7] हीन,
चित्त[8]हीन, बित्त[9]हीन [10]सहज सुभावरी ।
अंग[11] अंग[12]हीन दीनाधीन[13] पराधीन लग,
चरन सरनि कैसे प्रापत है रावरी ॥ २२० ॥

जननि सुतहिं बिख देत हेत कौन राखै,
घर मूसे पाहरुआ कहो कैसे राखियै ।
करिया[14] जौ बोरै नाव कहो कैसे पावै पार

१-मन की वृत्तियां थक कर स्व-स्वरूप में समा गयी हैं । २-बहु स्त्रियों के पति की मैं भी एक नायिका हूं, मेरी बारी थी किन्तु मुझे नींद ने आ कर घेर लिया । ३-आने वाले । ४-सौ-भाग्य स्त्रियों ने निद्रा का निरादर किया, सोई नहीं । ५-सखी ! मैं सोयी थी जिस से उस सुखदायक पति से मैं (बिछुड़) गयी । इस संयोग ने मैं जहां थी, वहीं ले जा कर (नींद में) रख दिया । ६-मर्य्यादा । ७-श्रद्धा । ८-शुद्ध चित्त । ९-गुणों के धन बिना । १०-शान्त सुभाव से रहित । ११-हृदय । १२-साधना से विहीन । १३-दीनता के आधीन । १४-मल्लाह ।

अगुआ उबाट पारै, कापै दीन भाखियै ॥
खेत जो खाइ बार, कौन धाइ राखनहार,
चक्रवै[1] करे अन्याउ पूछै कौन साखियै[2] ।
रोगियै जो बैद मारै, मित्र जो कमावै द्रोह,
गुरु न मुकति करै कापै अभिलाखियै ॥ २२१ ॥

मन मधुकर गति अमत चतुर कुंट,
चरन कमल सुख संपट समाईऐ ।
सीतल सुगंधि अति कोमल अनूप रूप,
मधु मकरंद रस अनत न धाईयै ॥
[3]सहज समाधि उनमन जगमग जोति,
अनहद धुनि रुणझुण लिव लाईऐ ।
[4]गुरमुखि बीस इकईस सोहं सोई जानै,
आप अपरंपर परम पद पाईऐ ॥ २२२ ॥

मन मृग, मृगमद[5] अच्छत अंतरगति,
भूल्यो भ्रम खोजत फिरत बनमाही जी ।
दादर सरोज[6] गति एकै सरवरु बिखै,
[7]अंतर दिशंतर ह्वै समझत नाही जी ॥
जैसे बिखिआधर[8] तजे न बिख बिखम को,
अहिनिस बावन-बिरख[9] लपटाही जी ।
[10]जैसे नरपति सुपनंतर भेखारी होइ,
गुरमुख जगत मै भ्रम मिटाही जी ॥ २२३ ॥

१–सम्राट। २–गवाही। ३–ध्यानावस्था में ज्ञान की प्रकाशित ज्योति में सहज समाधि लगा कर हरि कीर्त्तन अनहद् शब्द की झंकार में वृत्ति लगाता है। ४–गुरुमुख विश्व में एक ईश्वर को व्यापक और अभेद समझते हैं अत· (अपर) संसार से परे अमर पद को प्राप्त कर लेते हैं। ५–कस्तूरी। ६–कमल। ७–अपने हृदय में भेद होने से। ८–विषधर (सर्प)। ९–चन्दन वृक्ष। १०–जैसे कोई राजा स्वप्न में भिखारी हो जाये, किन्तु जागने पर पुनः वह राजा ही है; इसी प्रकार जो लोग गुरुमुख हुए हैं, उन का जगत में रहते हुए ही भ्रम दूर हो जाता है।

[1]बाइ ह्वै बघूला बाइ मंडल फिरै तौ कहा,
बासना की आगि जागि जुगति न जानियै।
[2]कूप जल गरो बांधे निकसे न ह्वै समुद्र,
चील ह्वै उडै न खगपति[3] उनमानियै॥
मूसा बिल खोदि न जुगीसर गुफा कहावै,
सरप ह्वै चिरंजीव[4] बिख न बिलानियै।
गुरमुख त्रिगुण[5] अतीत चीत ह्वै अतीत[6],
हौंमै खोइ होइ रेनु कामधेनु मानियै॥ २२४॥

सबद सुरति लिव [7]गुरसिख सन्धि मिले,
आतम अवेस परमातम प्रवीन है।
[8]तत्तै मिल तत्त स्वांति बूंद मुकताहल होइ,
पारस कै पारस परस्पर कीन है॥
[9]जोति मिलि जोति जैसे दीप कै दिपत दीप,
हीरै हीरा बेधियत आपै आपा चीन है।
चन्दन बनास्पती बासना सुबासु गति,
चतुर बरन जन कुल अकुलीन है॥ २२५॥

गुरुमति सत्य रिदय [10]सत्य-रूप देखे द्दग,
सत्यनाम जिह्वा कै प्रेम रस पाए है।
[11]सबद बिबेक सत्य स्रवन सुरति नाद,
नासिका सुगंधि सत्य आघ्रन अघाए हैं॥

१-वायु के बगूले की तरह उड़ कर वायु मण्डल में उडे तो क्या हुआ जब कि वासना की अग्नि (हृदय में) लग रही है। २-गला बांध देने से गगरी कूप से पानी वाहर ले जाती है, पर वह समुद्र नहीं हो जाती। ३-गरुड। ४-विष का नाश नहीं होना। ५-रज, तम, सत। ६-त्यागी। ७-गुरु सिखों के समर्ग में आने से। ८-तत्व स्वरूप परमात्मा से मिल कर (सीप में) स्वांति नक्षत्र की बूंद के मोती हो जाने की तरह अमुल्य हो जाता है। ९-ज्योति से मिल कर ज्योति स्वरूप हो जाते हैं अथवा जैसे दीपक से दीपक प्रज्वलित हो जाता है, हीरे से हीरा वेंध कर अमुल्य बना लिया जाता है है वैसे ही । १०-परमात्मा के सत्य रूप को प्रत्यक्ष देखते हैं। ११-सत्य स्वरूप शब्द (ब्रह्म) के विचार का नाद कानों मे सुनते हैं और सत्य की सुगन्धि से नासिका की प्राण शक्ति तृप्त हुई है।

संत चरनामृत [1]हसत अवलंब सत्य,
पारस[2] परस होइ पारस दिखाए है।
[3]सत्य रूप सत्यनाम सत्गुरु ज्ञान ध्यान,
गुरुसिख संधि मिले अलख लखाए है॥ २२६॥

आतम त्रिबिधि[4] जत्र कत्र सैं एकत्र भए,
गुरमति सत्य निहचल मन माने है।
[5]जग जग-जीवन में जग जग-जीवन है,
पूरन ब्रह्म ज्ञान ध्यान उर आने है॥
सूखम स्थूल मूल एक ही अनेक मेक,
गोरस[6] गोबंस[7] गति प्रेम पहिचाने है।
कारन मै कारनकरन[8] चित्र मै चितेरो,
जंत्र धुनि जंत्री जन[9] कै जनक[10] जाने है॥ २२७॥

[11]नाइक है एक अरु नाइका असट ताकैं,
एक एक नाइका के पांच पांच पूत हैं।
एक एक पूत गृह चारि चारि नाती भए,
एकै एकै नाती दोइ पतनी प्रसूति हैं॥
ताहू ते अनेक पुनः एकै एकै पांचि पांचि,
तांते चार चार सुत संतति संभूत हैं।
तांते आठ आठ सुता, सुता सुता आठ सुत,
ऐसो परिवार कैसे होइ एक सूत है॥ २२८॥

एक मन आठ खंड,[12] खंड खंड पांच टूक[13],
टूक टूक चार फार[14] फार दोइ फार[15] है।

१-हाथों द्वारा सत्य का आश्रय लेते हैं। २-सत्संगति रूप पारस। ३-सत्गुरु द्वारा सत्य रूप तथा सत्य नाम के ज्ञान का ध्यान करने एवं गुरु की सन्धि में मिलने से अलक्ष प्रभु को जान गये हैं। ४-तीन प्रकार (रज तम सत) का आत्मा अर्थात मन। ५-जगत् परमेश्वर में और परमेश्वर जगत में मिला हुआ है, पूर्ण ब्रह्म का यह ज्ञान हृदय में बसाते हैं। ६-दूध। ७-अनेक प्रकार की गऊओं। ८-कारणों का करने वाला (परमात्मा)। ९-पुत्र। १०-पिता। ११-आगे के कबित्त में इस का भाव बताया गया है। १२-पांच सेरी। १३-सेर। १४-पाव। १५-आधा पाव।

[1]बाइ ह्वै बघूला बाइ मंडल फिरै तौ कहा,
बासना की आगि जागि जुगति न जानियै।
[2]कूप जल गरो बांधे निकसे न ह्वै समुद्र,
चील ह्वै उडै न खगपति[3] उनमानियै॥
मूसा बिल खोदि न जुगीसर गुफा कहावै,
सरप ह्वै चिरंजीव[4]बिख न बिलानियै।
गुरमुख त्रिगुण[5] अतीत चीत ह्वै अतीत[6],
हौमै खोइ होइ रेनु कामधेनु मानियै॥ २२४॥

सबद सुरति लिव [7]गुरसिख सन्धि मिले,
आतम अवेस परमातम प्रवीन है।
[8]तत्तै मिल तत्त स्वांति बूंद मुकताहल होइ,
पारस कै पारस परस्पर कीन है॥
[9]जोति मिलि जोति जैसे दीप कै दिपत दीप,
हीरै हीरा बेधियत आपै आपा चीन है
चन्दन बनास्पती बासना सुबासु गति,
चतुर बरन जन कुल अकुलीन है॥ २२५॥

गुरुमति सत्य रिदय [10]सत्य-रूप देखे दृग,
सत्यनाम जिहबा कै प्रेम रस पाए है।
[11]सबद बिबेक सत्य स्रवन सुरति नाद,
नासिका सुगंधि सत्य आघ्रन अघाए हैं॥

१–वायु के बगूले की तरह उड़ कर वायु मण्डल में उडे तो क्या हुआ जब कि वासना की अग्नि (हृदय में) लग रही है। २–गला बांध देने से गगरी कूप से पानी बाहर ले जाती है, पर वह समुद्र नहीं हो जाती। ३–गरुड। ४–विष का नाश नहीं होना। ५–रज, तम, सत। ६–त्यागी। ७–गुरु सिखों के संसर्ग में आने से। ८–तत्व स्वरूप परमात्मा से मिल कर (सीप में) स्वांति नक्षत्र की बूंद के मोती हो जाने की तरह अमुल्य हो जाता है। ९–ज्योति से मिल कर ज्योति स्वरूप हो जाते हैं अथवा जैसे दीपक से दीपक प्रज्वलित हो जाता है, हीरे से हीरा वेंध कर अमुल्य बना लिया जाता है है वैसे ही । १०–परमात्मा के सत्य रुप को प्रत्यक्ष देखते हैं। ११–सत्य स्वरूप शब्द (ब्रह्म) के विचार का नाद कानों में सुनते हैं और सत्य की सुगन्धि से नासिका की घ्राण शक्ति तृप्त हुई है।

संत चरनामृत [1]हसत अवलंब सत्य,
पारस[2] परस होइ पारस दिखाए है।
[3]सत्य रूप सत्यनाम सत्गुरु ज्ञान ध्यान,
गुरुसिख संधि मिले अलख लखाए है॥ २२६ ॥

आतम त्रिविधि[4] जत्र कत्र सैं एकत्र भए,
गुरमति सत्य निहचल मन माने है।
[5]जग जग-जीवन में जग जग-जीवन है,
पूरन ब्रह्म ज्ञान ध्यान उर आने है॥
सूखम स्थूल मूल एक ही अनेक मेक,
गोरस[6] गोवंस[7] गति प्रेम पहिचाने है।
कारन मै कारनकरन[8] चित्र मै चितेरो,
जंत्र धुनि जंत्री जन[9] कै जनक[10] जाने है॥ २२७ ॥

[11]नाइक है एक अरु नाइका असट तांकै,
एक एक नाइका के पांच पांच पूत हैं।
एक एक पूत गृह चारि चारि नाती भए,
एकै एकै नाती दोइ पतनी प्रसूति हैं॥
ताहू ते अनेक पुनः एकै एकै पांचि पांचि,
तांते चार चार सुत संतति संभूत हैं।
तांते आठ आठ सुता, सुता सुता आठ सुत,
ऐसो परिवार कैसे होइ एक सूत है॥ २२८ ॥

एक मन आठ खंड,[12] खंड खंड पांच टूक[13],
टूक टूक चार फार[14] फार दोइ फार[15] है।

१–हाथों द्वारा सत्य का आश्रय लेते हैं। २–सत्संगति रूप पारस। ३–सत्गुरु द्वारा सत्य रूप तथा सत्य नाम के ज्ञान का ध्यान करने एवं गुरु की सन्धि में मिलने से अलक्ष प्रभु को जान गये हैं। ४–तीन प्रकार (रज तम सत) का आत्मा अर्थात मन। ५–जगत् परमेश्वर में और परमेश्वर जगत में मिला हुआ है, पूर्ण ब्रह्म का यह ज्ञान हृदय में बसाते हैं। ६–दूध। ७–अनेक प्रकार की गऊओं। ८–कारणों का करने वाला (परमात्मा)। ९–पुत्र। १०–पिता। ११–आगे के कवित्त में इस का भाव बताया गया है। १२–पांच सेरी। १३–सेर। १४–पाव। १५–आधा पाव।

[1]बाइ ह्वै बघूला बाइ मंडल फिरै तौ कहा,
बासना की आगि जागि जुगति न जानियै।
[2]कूप जल गरो बांधे निकसे न ह्वै समुद्र,
चील ह्वै उडै न खगपति[3] उनमानियै॥
मूसा बिल खोदि न जुगीसर गुफा कहावै,
सरप ह्वै चिरंजीव[4]बिख न बिलानियै।
गुरमुख त्रिगुण[5] अतीत चीत ह्वै अतीत[6],
हौमै खोइ होइ रेनु कामधेनु मानियै॥ २२४॥

सबद सुरति लिव [7]गुरसिख सन्धि मिले,
आतम अवेस परमातम प्रवीन है।
[8]तत्तै मिल तत्त स्वांति बूंद मुकताहल होइ,
पारस कै पारस परस्पर कीन है॥
[9]जोति मिलि जोति जैसे दीप कै दिपत दीप,
हीरै हीरा बेधियत आपै आपा चीन है।
चन्दन बनास्पती बासना सुबासु गति,
चतुर बरन जन कुल अकुलीन है॥ २२५॥

गुरुमति सत्य रिदय [10]सत्य-रूप देखे द्दग,
सत्यनाम जिहबा कै प्रेम रस पाए है।
[11]सबद बिबेक सत्य स्रवन सुरति नाद,
नासिका सुगंधि सत्य आघ्रन अघाए हैं॥

१–वायु के बगूले की तरह उड कर वायु मण्डल में उडे तो क्या हुआ जब कि वासना की अग्नि (हृदय में) लग रही है। २–गला बांध देने से गगरी कूप से पानी बाहर ले जाती है, पर वह समुद्र नहीं हो जाती। ३–गरुड़। ४–विष का नाश नहीं होता। ५–रज, तम, सत। ६–त्यागी। ७–गुरु सिखों के संमर्ग में आने से। ८–तत्व स्वरूप परमात्मा से मिल कर (सीप में) स्वांति नक्षत्र की बूंद के मोती हो जाने की तरह अमुल्य हो जाता है। ९–ज्योति से मिल कर ज्योति स्वरूप हो जाते हैं अथवा जैसे दीपक से दीपक प्रज्वलित हो जाता है, हीरे से हीरा वेध कर अमुल्य बना लिया जाता है है वैसे ही । १०–परमात्मा के सत्य रूप को प्रत्यक्ष देखते हैं। ११–सत्य स्वरूप शब्द (ब्रह्म) के विचार का नाद कानों मे सुनते हैं और सत्य की सुगन्धि से नासिका की घ्राण शक्ति तृप्त हुई है।

संत चरनामृत [1]हसत अवलंब सत्य,
पारस[2] परस होइ पारस दिखाए है।
[3]सत्य रूप सत्यनाम सत्गुरु ज्ञान ध्यान,
गुरुसिख संधि मिले अलख लखाए है॥ २२६ ॥

आतम त्रिबिधि[4] जत्र कत्र सैं एकत्र भए,
गुरमति सत्य निहचल मन माने है।
[5]जग जग-जीवन में जग जग-जीवन है,
पूरन ब्रह्म ज्ञान ध्यान उर आने है॥
सूखम स्थूल मूल एक ही अनेक मेक,
गोरस[6] गोबंस[7] गति प्रेम पहिचाने है।
कारन मै कारनकरन[8] चित्र मै चितेरो,
जंत्र धुनि जंत्री जन[9] कै जनक[10] जाने है॥ २२७ ॥

[11]नाइक है एक अरु नाइका असट तांकैं,
एक एक नाइका के पांच पांच पूत हैं।
एक एक पूत गृह चारि चारि नाती भए,
एकै एकै नाती दोइ पतनी प्रसूति हैं॥
ताहू ते अनेक पुनः एकै एकै पांचि पांचि,
तांते चार चार सुत संतति संभूत हैं।
तांते आठ आठ सुता, सुता सुता आठ सुत,
ऐसो परिवार कैसे होइ एक सूत है॥ २२८ ॥

एक मन आठ खंड,[12] खंड खंड पांच टूक[13],
टूक टूक चार फार[14] फार दोइ फार[15] है।

१-हाथों द्वारा सत्य का आश्रय लेते हैं। २-सत्संगति रूप पारस। ३-सत्गुरु द्वारा सत्य रूप तथा सत्य नाम के ज्ञान का ध्यान करने एवं गुरु की सन्धि में मिलने से अलक्ष प्रभु को जान गये हैं। ४-तीन प्रकार (रज तम सत) का आत्मा अर्थात मन। ५-जगत् परमेश्वर में और परमेश्वर जगत में मिला हुआ है, पूर्ण ब्रह्म का यह ज्ञान हृदय में बसाते हैं। ६-दूध। ७-अनेक प्रकार की गऊओं। ८-कारणों का करने वाला (परमात्मा)। ९-पुत्र। १०-पिता। ११-आगे के कवित्त में इस का भाव बताया गया है। १२-पांच सेरी। १३-सेर। १४-पाव। १५-आधा पाव।

ताहू ते पईसे[1] औ पईसा एक पांच टांक,
टांक टांक मासे चार, अनिक प्रकार है ॥
मासा एक आठ रत्ती, रत्ती आठ चावर की,
हाट हाट कनु कनु[2] तोल तुलाधार है।
पुर पुर पूर रहे सकल संसार बिखैं,
[3]बस आवै कैसे जांको एतो विसतार है ॥ २२६ ॥

[4]खगपति प्रबल पराक्रमी परमहंस,
चातर चतुर मुख चपला चपल है।
भुज बली अस्ट भुजा ताके है चालीस कर,
एक सौ छु साठ पाउ चाल चला चल[5] है।
जाग्रत सुपन अहिनिसि दहिदिसि धावै,
त्रिभुवन प्रति होइ आवै एक पल है।
पिंजरी मै अच्छत उडत पहुँचै न कोऊ,
[6]पुर पुर पर गिरि तर जल थल है ॥ २३० ॥

जैसे पंछी उडत फिरत है अकासचारी,
जारी[7] डारि पिंजरी मै राखियत आन कै।

रचना चरित्र चित्र बिसम[1] बिचित्र पुनः
एक मैं अनेक भांति अनिक प्रकार है।
लोचन मैं द्रसटि, स्रवन मैं सुरति राखी,
नासिका सुबास रस रसना उचार है॥
[2]अंतर ही अंतर निरंतरीन स्रोतन मैं,
काहू की न कोऊ जानै बिखम बिचार है।
[3]अगम चरित्र चित्र जानियै चितेरो कैसो,
नेति नेति नेति नमो नमो नमसकार है॥ २३२॥

[4]माया छाया पंच दूत भूत उदमाद ठट,
घट घट छटिका मै सागर अनेक है।
औध पल घटिका जुगादि परजंत आसा,
लहिर तरंग[5] मैं न [6]तृसना की टेक है॥
मन मनसा प्रसंग धावत चतुर कुंट,
छिनेक मैं खंड ब्रह्मंड जावदेक[7] है।
आधि कै बिआधि कै उपाधि कै असाध मन,
साधबे को चरन सरन गुरु एक है॥ २३३॥

जैसो मन लागत है लेखक कौ लेखै बिखै,
हरि जस लिखत न तैसो ठहिरावई।
जैसो मन बनज बिउहार के बिथार बिखै,
सबद सुरति अवगाहन[8] न भावई॥

१–विस्मय जनक। २–निरन्तर सब के स्रोत (इन्द्रिय) भीतर ही भीतर जो विषम विचार देते हैं, उसे कोई दूसरा नहीं जान सकता। ३–जब इस (संसार रूपी) चित्र का चरित्र ही अगम्य है तो चित्रकार को हम कैसे जान सकते हैं। इस लिए मन वाणी और काया से उसे 'नेति' 'नेति' कह कर नमस्कार करनी चाहिये। ४–माया की छाया (अविद्या) तथा पांच (कामादि) भूतों की चपलता से शरीरों की चपलता से शरीरों को बुद्धियों में प्रमत्तता का बनाव बना है। ५–सङ्कल्प विकल्पादि। ६–तृष्णा का कोई आधार ही नहीं। ७–एक ही चला जाता है। ८–विचार करने में।

ताहू ते पईसे[१] औ पईसा एक पांच टांक,
टांक टांक मासे चार, अनिक प्रकार है ॥
मासा एक आठ रत्ती, रत्ती आठ चावर की,
हाट हाट कनु कनु[२] तोल तुलाधार है।
पुर पुर पूर रहे सकल संसार बिखै,
[३]बस आवै कैसे जांको एतो विसतार है ॥ २२६ ॥

[४]खगपति प्रवल पराक्रमी परमहंस,
चातर चतुर मुख चपला चपल है।
भुज बली अस्ट भुजा ताके है चालीस कर,
एक सौ सु साठ पाउ चाल चला चल[५] है।
जाग्रत सुपन अहिनिसि दहिदिसि धावै,
त्रिभुवन प्रति होइ आवै एक पल है।
पिंजरी मै अच्छत उडत पहुँचै न कोऊ,
[६]पुर पुर पर गिरि तर जल थल है ॥ २३० ॥

जैसे पंछी उडत फिरत है अकासचारी,
जारी[७] डारि पिंजरी मै राखियत आन कै।
जैसे गजराज गहिवर[८] बन मैं मदन[९],
बस ह्वै, महावत के अंकसहि [१०]मान कै ॥
जैसे बिखियाधर[११] बिखम बिल मै पाताल,
गहे सापहेरा ताहि मंत्रिन की कान[१२] कै।
तैसे त्रिभुवन प्रति भ्रमत चंचल चित,
निहचल होत मति सत्गुर ज्ञान कै ॥ २३१ ॥

१–सरसाही (तोल)। २–पोसत का बीज। ३–ऐसा विस्तार जिस मन का है, वह वश में कैसे हो। ४–यह मन गरुड़ की तरह पौरुष वाला प्रबल एवं उद्योगी है, परमहंसों की भान्ति बुद्धिमान प्रमुख चतुरों का चतुर है, किन्तु बिजली की तरह चपल भी है। ५–चञ्चल। ६–(इस का मन), नगरों पर्वत्तों, नदियों आदि जल थल में घूम आता है। ७–जाल। ८–घोर। ९–कामातुर हो कर। १०–मानता है, सहन करता है। ११–सर्प। १२–बल से।

रचना चरित्र चित्र बिसम[१] बिचित्र पुनः
एक मैं अनेक भांति अनिक प्रकार है।
लोचन मैं द्रसटि, स्रवन मैं सुरति राखी,
नासिका सुबास रस रसना उचार है॥
[२]अंतर ही अंतर निरंतरीन स्रोतन मैं,
काहू की न कोऊ जानै बिखम बिचार है।
[३]अगम चरित्र चित्र जानियै चितेरो कैसो,
नेति नेति नेति नमो नमो नमसकार है॥ २३२॥

[४]माया छाया पंच दूत भूत उदमाद ठट,
घट घट छटिका मैं सागर अनेक है।
औध पल घटिका जुगादि परजंत आसा,
लहिर तरंग[५] मैं न [६]त्रसना की टेक है॥
मन मनसा प्रसंग धावत चतुर कुंट,
छिनेक मैं खंड ब्रह्मंड जावदेक[७] है।
आधि कै बिआधि कै उपाधि कै असाध मन,
साधबे को चरन सरन गुरु एक है॥ २३३॥

जैसो मन लागत है लेखक कौ लेखै बिखै,
हरि जस लिखत न तैसो ठहिरावई।
जैसो मन बनज बिउहार के बिथार बिखै,
सबद सुरति अवगाहन[८] न भावई॥

१—विस्मय जनक। २—निरन्तर सब के स्रोत (इन्द्रिय) भीतर ही भीतर जो विषम विचार देते हैं, उसे कोई दूसरा नहीं जान सकता। ३—जब इस (संसार रूपी) चित्र का चरित्र ही अगम्य है तो चित्रकार को हम कैसे जान सकते हैं। इस लिए मन वाणी और काया से उसे 'नेति' 'नेति' कह कर नमस्कार करनी चाहिये। ४—माया की छाया (अविद्या) तथा पांच (कामादि) भूतों की चपलता से शरीरों की चपलता से शरीरों की बुद्धियों में प्रमत्तता का बनाव बना है। ५—सङ्कल्प विकल्पादि। ६—तृष्णा का कोई आधार ही नहीं। ७—एक ही चला जाता है। ८—विचार करने में।

जैसो मन कनिक औ कामनी सनेह बिखै,
साधु संग तैसो नेह पल न लगावई।
माया बंध धंध बिखै आवधि बिहाइ जाइ,
गुरु उपदेस हीन पाछै पछुतावई ॥ २३४ ॥

जैसो मन धावै पर तन धन दूखन लौं,
श्री गुरु सरन साधु संग लौ न आवई।
जैसो मन लाग [१]पराधीन हीन दीनता मैं,
साधु संग सत्गुरु सेवा न लगावई ॥
जैसे मन [२]किरति-बिरति मैं मगन होइ,
साधु संग कीरतन मै न ठहरावई।
कूकर ज्यों चंच[३] काढि चाकी चाटिबे को जाइ,
जांके मीठी लागी देखे ताही पाछै धावई ॥ २३५ ॥

सरवर मैं न जानी दादर कमल गति,
मृग मृगमद[४] गति अंतर न जानी है ॥
[५]मणि महमा न जानी अहि बिष बिषम कै,
सागर मैं संख निधि हीन बकबानी है ॥
चंदन समीप जैसे बांस निरगंध कंध[६],
उल्लूऐ अलख दिन दिनकर[७] ध्यानी है।
तैसे बांझ बधू मम श्री गुरु पुरख भेट,
निहफल सेंबल ज्यों हौमैं अभिमानी है ॥ २३६ ॥

बरखा चतुर मास भिदै न पखान सिला,
निपजै न धान पान अनिक उपाव कै।
उदित बसंत परफुल्लित बनासपती,

१-धन प्राप्ति के लिए दासता में। २-वृत्युपार्जन के कृत्यों में। ३-जिह्वा। ४-कस्तूरी। ५-कठिन विष के कारण सर्प ने मणि की महिमा को न समझा, सागर में रहता हुआ भी संख वहां की निधियों से खाली रह कर अभी तलक बकवाद किये जा रहा है। ६-शरीर। ७-सूर्य।

मौले न करीर आदि बंस के सुभाव कै ॥
सिहजा संजोग भोग निहफल बांझ बधू,
होइ न अधान दुखो दुविधा दुराव कै ।
तैसे ममकाग साधु संगति मराल सभा,
रह्यो निराहार मुकताहल अपिआव[1] कै ॥ २३७ ॥

कपट सनेह जैसे ढेकुली नवावै सीस,
ताके बस होइ जलु बंधन मै आवई ।
डारि देत खेत ह्वै प्रफुल्लित सफल तांते,
आप निहफल पाछै बोझ [2]उकतावई ॥
[3]अरध उरध होइ अनुक्रम कै ही जब,
परउपकार अविकार न मिटावई ।
तैसे ही असाधु साधुसंगति सुभाव गति,
गुरमति दुरमति सुख दुख पावई ॥ २३८ ॥

जैसे तो कुचील अपवित्रता अतीत माखी,
राखी न रहित जाइ बैठे इच्छाचारी है ।
पुनः जो अहार सनूबंध [4]परवेस करै,
जरै न अजर उकलेद[5] खेद भारी है ॥
बद्धक विधान ज्यो उद्यान में टाटी दिखाइ,
करै जीव घात अपराध अधिकारी है ।
हृदय बिलाउ[6] अरु नयन बग ध्यानी प्राणी,
कपट सनेही देही अंत ह्वै दुखारी है ॥ २३९ ॥

[7]गऊ मुख बाघ जैसे बसै मृग-माल[8] विखै,
कंगना पहर ज्यों बिलईया खग मोहई ।

१–भोजन। २–उठाती है। ३–क्रम से वह जब कभी नीचे और कभी ऊपर होती है। जल अपने उपकार तथा ढींगली अपकार को नहीं छोड़ती। ४–पेट में चली जाय तो पेट से सहन नहीं हो सकती। ५–उलटी (वमन)। ६–बिल्ली। ७–गऊ का सा मुख बना कर। ८–मृगों की पंक्ति।

जैसे बग ध्यान धार करत आहार मीन,
गनिका सिंगार साजि बिभचार जोहई ॥
[1]पंच बटवारो भेख धारी ज्यों संगाती होइ,
अंत फांसी डारि मारैं द्रोह कर द्रोहई ।
कपट सनेह कै मिलत साधु संगति में,
चंदन सुगंधि बांस गठीलो न बोहई ॥ २४० ॥

आदि ही अधान[2] बिखैं होइ निरमान प्राणी,
मास दस गनत ही गनत बिहात है ।
जनमत सुत सब कुटुंब आनंद मयो,
बाल-बुद्धि गनत बितीत निसि प्रात है ॥
पढ़त बिवाहीयति जोबन में भोग बिखैं,
बनज बिउहार के बिथार लपटात है ।
[3]बढत बिआज काज गनत अवध बीती,
गुरु उपदेस बिनु जमपुरि जात है ॥ २४१ ॥

जैसे चकई चकवा बधिक एकत्र कीने,
पिंजरी मैं बसै निसि दुख सुख माने है ।
कहत परसपर कोटि सुरजन वारों,
ओट[4] दुरजन पुर जांहि गहि आने है ॥
[5]सिमरन मात्र कोटि अपदा संपदा कोटि,
संपदा अपदा कोटि प्रभु बिसराने है ।
[6]सत्य रूप सत्य नाम सत्य गुरु ज्ञान ध्यान,
सतगुरु मति सत्य सत्य कर जाने है ॥ २४२ ॥

[1]पुनः कत पंच तत्त मेल खेल होइ कैसे,
भ्रमत अनेक जोनि कुटुंब संजोग है।
पुनः कत मानस जनम निरमोल होइ,
दसटि सबद सुति रस कस भोग है॥
पुनः कत साधु संग चरन सरन गुरु,
ज्ञान ध्यान सिम्रण प्रेम मधु[2] प्रयोग है।
सफल जनम गुरमुख सुखफल चाख,
जीवन मुकति होइ लोग में अलोग[3] है॥ २४३॥

रचन चरित्र चित्र बिसम बिचित्र पुन,
[4]चित्रहि चितै चितैं चितेरा उर आनियै।
[5]बचन बिबेक टेक एक ही अनेक मेक,
सुनि धुनि जंत्र जंतधारी उनमानियै॥
असन बसन धन सरब निधान दान,
करुणा निधान सुखदाई पहिचानियै।
कथता बकता श्रोता दाता भुगता सर्वज्ञ,
पूरन ब्रह्म गुरु साध संग जानियै॥ २४४॥

लोचन स्रवन मुख नासिका हसत पग,
[6]चिहन अनेक मन मेक जैसे जानियै।
अंग अंग पुसट तुसटमान[7] होत जैसे,
[8]एक मुख स्वाद रस अरपति आनियै॥
[9]मूल एक साखा पर साखा जल ज्यों अनेक,

१–मनुष्य जन्म के व्यतीत हो जाने के बाद हमें अनेक योनियों में से होते हुए, गुरु-शिष्यों के कुटुम्ब का सा संयोग कब प्राप्त हो सकेगा ? २–अमृत। ३–लोकाचार से रहित। ४–चित्र को चित्रण करने वाले चेतन स्वरूप चित्रकार को हृदय में लाना चाहिये। ५–विवेक पूर्ण वचनों के आधार पर अनेकों में मिले हुए एक को जान लिया जैसे बाजे की ध्वनि में बाजे वाले के स्वर का अनुमान किया जाता है। ६–उक्त अनेक (चिन्ह) इन्द्रियों में एक मन मिला हुआ जाना जाता है। ७–सन्तुष्ट। ८–स्वादिष्ट रसों को एक मुख के अर्पण करने पर। ९–जैसे जल (वृक्ष के) एक मूल से ही सब शाखा प्रशाखाओं में पहुँचता है वैसे ब्रह्म भी एक है, उस का विचार हृदय में लाना चाहिये।

जैसे बग ध्यान धार करत आहार मीन,
गनिका सिंगार साजि बिभचार जोहई ॥
[1]पंच बटवारो भेख धारी ज्यों संगाती होइ,
अंत फांसी डारि मारैं द्रोह कर द्रोहई ।
कपट सनेह कै मिलत साधु संगति में,
चंदन सुगंधि बांस गठीलो न बोहई ॥ २४० ॥

आदि ही अधान[2] बिखैं होइ निरमान प्राणी,
मास दस गनत ही गनत बिहात है ।
जनमत सुत सब कुटुंब आनंद मयी,
बाल-बुद्धि गनत बितीत निसि प्रात है ॥
पढ़त बिवाहीयति जोबन में भोग बिखै,
बनज बिउहार के बिथार लपटात है ।
[3]बढत बिआज काज गनत अवध बीती,
गुरु उपदेस बिनु जमपुरि जात है ॥ २४१ ॥

जैसे चकई चकवा बधिक एकत्र कीने,
पिंजरी मैं बसे निसि दुख सुख माने है ।
कहत परसपर कोटि सुरजन वारों,
ओट[4] दुरजन पुर जांहि गहि आने है ॥
[5]सिमरन मात्र कोटि अपदा संपदा कोटि,
संपदा अपदा कोटि प्रभु बिसराने है ।
[6]सत्य रूप सत्य नाम सत्य गुरु ज्ञान ध्यान,
सत्गुरु मति सत्य सत्य कर जाने है ॥ २४२ ॥

१-कोई डाकू (लुटेरा) पंचों की तरह का वेष धारण किये हुए यदि किसी के संग चले। २-गर्भ। ३-संसार के कार्यों में लग कर गिनतियां करते हुए आयु व्यतीत हुई। ४-ऊपर से। ५-प्रभु का सिमरण करते हुए करोड़ों विपदाये सुख रूप हो जाती हैं और उसे विसार देने पर सुख भी दु.ख रूप है। ६-सत्गुरु द्वारा सत्यनाम एवं सत्य स्वरूप के ज्ञान का ध्यान किया। श्री गुरु जी की शिक्षा को सत्य सत्य कर जान लिया है।

[1]पुनः कत पंच तत्त मेल खेल होइ कैसे,
भ्रमत अनेक जोनि कुटुंब संजोग है।
पुनः कत मानस जनम निरमोल होइ,
द्रसटि सबद सुति रस कस भोग है॥
पुनः कत साधु संग चरन सरन गुरु,
ज्ञान ध्यान सिम्रण प्रेम मधु[2] प्रयोग है।
सफल जनम गुरमुख सुखफल चाख,
जीवन मुकति होइ लोग में अलोग[3] है॥ २४३॥

रचन चरित्र चित्र बिसम बिचित्र पुन,
[4]चित्रहि चितै चितै चितेरा उर आनियै।
[5]बचन बिबेक टेक एक ही अनेक मेक,
सुनि धुनि जंत्र जंतधारी उनमानियै॥
असन बसन धन सरब निधान दान,
करुणा निधान सुखदाई पहिचानियै।
कथता बकता श्रोता दाता भुगता सर्वज्ञ,
पूरन ब्रह्म गुरु साध संग जानियै॥ २४४॥
लोचन स्रवन मुख नासिका हसत पग,
[6]चिह्‌न अनेक मन मेक जैसे जानियै।
अंग अंग पुसट तुसटमान[7] होत जैसे,
[8]एक मुख स्वाद रस अरपति आनियै॥
[9]मूल एक साखा पर साखा जल ज्यों अनेक,

१-मनुष्य जन्म के व्यतीत हो जाने के बाद हमें अनेक योनियों में से होते हुए, गुरु-शिष्यों के कुटुम्ब का सा संयोग कब प्राप्त हो सकेगा ? २-अमृत। ३-लोकाचार से रहित। ४-चित्र को चित्रण करने वाले चेतन स्वरूप चित्रकार को हृदय में लाना चाहिये। ५-विवेक पूर्ण वचनों के आधार पर अनेकों में मिले हुए एक को जान लिया जैसे बाजे की ध्वनि में बाजे वाले के स्वर का अनुमान किया जाता है। ६-उक्त अनेक (चिन्ह) इन्द्रियों में एक मन मिला हुआ जाना जाता है। ७-सन्तुष्ट। ८-स्वादिष्ट रसों को एक मुख के अर्पण करने पर। ९-जैसे जल (वृक्ष के) एक मूल से ही सब शाखा प्रशाखाओं में पहुँचता है वैसे ब्रह्म भी एक है, उस का विचार हृदय में लाना चाहिये।

ब्रह्म बिबेक जावदेक उर आनियै।
गुरमुख दरपन देखियति आपा आप,
आतम अवेस परमातम गिआनियै॥ २४५॥

[1]जत सत सिंहासन सहज संतोख मंत्री,
धरम धीरज धुजा अबिचल राज है।
सिव नगरी[2] निवास दया दुलहनी मिली,
भाग[3] तो भंडारी [4]भाउ भोजन सकाज है॥
[5]अरथ बिचार परमारथ कै राजनीति,
छत्रपति[6] छमा[7] छत्र छाया छबि छाज है।
आनद समूह सुख सांति परजा प्रसन्न,
[8]जग मग जोति अनहदि धुनि बाज है॥ २४६॥

पांचों मुंद्रा[9], चक्र-खट[10] भेद चक्रवै कहाए,
उलंघि त्रिबेनी[11] त्रिकुटी त्रिकाल जाने हैं।
नवघर[12] जीति निज आसन सिंहासन[13] मैं,
नगर अगम पुरि जाइ ठहिराने हैं॥
आन सर त्याग मानसर निहचल हंस,
परम निधान बिसमाहि बिसमाने है।
उनमन मगन गगन[14] अनहद धुनि,
बाजत नीसान ज्ञान ध्यान बिसराने हैं॥ २४७॥

१–गुरु शिष्यों का आध्यात्मिक स्वराज्य ऐसा है। २–कल्याण स्वरूप नगरी-साधु संगति। ३–पूर्बले कर्मों के फल भाग्य। ४–ज्ञान का भोजन पाने का सुकर्म करते हैं। ५–विचार की सम्पत्ति लिये हुए एवं परमार्थ को राजनीति समझे हुए हैं। ६–चवर। ७–क्षमा। ८–हृदय में ज्ञान ज्योति जगमगा रही है, एक रस शब्दों की ध्वनि ही अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। ९–योग की मुद्राए (महा, खेचरी, मूलबंद, बज्रौली, उडान)। १०–(१) आधार पद्म (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूर (४) अनाहत (५) बिसुध (६) आज्ञा। ११–त्रिकुटी (इड़ा, पिङ्गला, सुखमना) का सन्धि-स्थान। १२–नौ गोलक कर्ण, नेत्र, नासिका, मुख, गुदा आदि। १३–दशम द्वार।

[1]अवघटि उतरि सरोवर मज्जन करै,
जपत अजपा जाप अनभै[2] अभ्यासी है।
[3]निझर अपार धार बरखा अकास बास,
जगमग जोति अनहद् अबिनासी है॥
आतम अवेस परमातम प्रवेस कै,
अध्यातम ज्ञान ध्यान ऋद्धि सिद्धि निधि दासी है।
जीवन मुकति जग जीवन जुगति जानी,
सलिल कमल गति माया मैं उदासी है॥ २४८॥

चरन कमल सरन गुरु कंचन भए मनूर,
कंचन पारस भए पारस परसि कै।
बायस[4] भए हैं हंस, हंस ते परमहंस,
चरन कमल चरनामृत सु रस कै॥
सेंबल सकल फल सकल सुगंधि बांस,
सूकरी से कामधेनु करुना बरस कै।
श्री गुरु चरन रज महिमा अगाध बोध
लोग बेद ज्ञान कोटि बिसम नमस कै॥ २४६॥

[5]कोटिन कोटान असचरज असचरज मय,
कोटिन कोटान बिसमाद बिसमाद है।
[6]अद्भुत परमद्भुत ह्वै कोटान कोटि,
गद-गद होत कोटि अनहद् नाद है॥
[7]कोटिन कोटान उनमनी गनी जात नहि,

१-कामादि दुस्तर घाट से नीचे उतर कर सत्सङ्गति के सरोवर में स्नान करते हैं। २-अनुभव। ३-प्रकाशित ज्योति-स्वरूप, तथा अनहत् अविनाशी रूप एक रस अपार अमृत की, हृदयाकाश में वर्षा हुई। ४-कौवा। ५-करोड़ों ही लोग आश्चर्य प्रभु के कर्त्तव्यों को देख कर आश्चर्य में हैं और करोड़ों उस के, विस्माद रूप कार्यों (जगत् रचना) को देख कर हैरान हो रहे हैं। ६-करोड़ों ही करोड़ों लोग आश्चर्य रूप जगत् के पदार्थों को देख कर परमाश्चर्य होते हैं और अनेक लोग उस के निरन्तर शब्द को सुन कर ही प्रसन्न हो रहे हैं। ७-करोड़ों को उन्मनि अवस्थायें प्राप्त है जिन की गिणती नहीं हो सकती और अनेकों ही निर्विकल्प-अवस्था में हैं।

कोटिन कोटानि कोटि सुन्न मंडलादि है।
[1]गुरुमुख सबद सुरति लिव साध संग,
अंत कै अनंत प्रभु आदि परमादि है॥ २५० ॥

[2]गुरमुख सबद सुरति लिव साध संग,
उलटि पवन मन मीन की चपल है।
सोहं सो अजपा जाप चीनियत आपा आप,
उनमनी[3] जोति को उदोत[4] ह्वै प्रबल है॥
अनहदि नादि बिसमादि रुनिझुनि सुनि,
निज्झर झरन बरखा अमृत जल है।
अनभै अभ्यास को प्रगास असचरज मय,
बिसम बिस्वास बास ब्रह्मसथल है॥ २५१ ॥

[5]द्रसटि दरस समदरस धिआन धार,
दुबिधा निवार एक टेक गहि लीजियै।
सबद सुरति लिव असतुति निन्दा छाडि,
अकथ कथा बीचार मौन ब्रत कीजियै॥
जग जीवन मय[6] जग, जग जगजीवन कै,
[7]जानियै जीवन मूल जुग जुग जीजियै।
एक ही अनेक औ अनेक एक सरब मै,
ब्रह्म बिबेक टेक प्रेम रस पीजियै॥ २५२ ॥

अबिगति[8] गति[9] कत आवत अंतरगति,
अकथ कथा सु कहि कैसे कै सुनाईयै।
अलख अपार किधौं पाईयति पार कैसे,

१–परन्तु गुरुमुख सिक्ख साधु संगति में जा कर गुरु शब्द द्वारा परमादि अनन्त प्रभू से प्रीति करते हैं। २–गुरुमुख सिख साधु संगति में जा कर गुरु शब्द में वृति लगाते हैं तथा मछली की भान्ति चंचल मन को अपनी सङ्कल्प-शक्ति से रोक लेते हैं। ३–तुरियावस्था। ४–प्रगट। ५–ध्यान द्वारा समदृष्टि धारन कर, द्वैत की निवृत्ति एव एक (परमात्मा) का आधार ग्रहण करना चाहिये। ६–रूप। ७–जीवन का मूल प्रभू को जान कर चिरंजीव हो जाए। ८–अव्यक्त, छिपा हुआ। ९–मर्य्यादा।

दरस अदरस को कैसे कै दिखाइयै ॥
अगम[1] अगोचर[2] [3]अगह्व गहियै धौ कैसे,
निरालंब[4] को न अवलंब[5] ठहिराइयै।
[6]गुरमुख संधि मिले सोई जानै जामै बीतै,
बिसम बिदेह जल बूंद ह्वै समाइयै ॥ २५३ ॥

गुरमुख सबद सुरति साध संग मिल,
[7]पूरन ब्रह्म प्रेम भगत बिवेक है।
[8]रूप कै अनूप रूप अति असचरज मय,
द्रसटि दरस लिव टरत न टेक है ॥
राग नाद बाद[9] बिसमाद कीरतन समय,
सबद सुरति ज्ञान-गोसट[10] अनेक है।
[11]भावनी भवय भाइ चाइ चाह चरनामृत की,
आस प्रिय सदीव अंग अंग जावदेक है ॥ २५४ ॥

होम जग नईवेद[12] आदि कै पूजा अनेक,
जप तप संजम अनेक पुन्न दान कै।
जल थल गिरि[13] तरु[14] तीरथ [15]भुवन भूअ,
[16]हिमाचल धारा अग्र अरपन प्रान कै ॥
राग नाद बाद औ संगीत वेद पाठ बहु
[17]सहज समाधि साध कोटि जोग ध्यान कै।

१–अपहुंच। २–इन्द्रियों के अविषय। ३–अग्राह्य को कैसे पकड़ा जाये। ४–आश्रय बिना। ५–आश्रय। ६–गुरुमुख-सिख और प्रभू के संयोग के आनन्द को वे लोग ही जानते है जो भुक्त-भोगी है, वह देहाभिमान से रहत हो कर जल बिन्दु की भान्ति जल निधि (प्रभू) में समा जाते हैं। ७–पूर्ण प्रभू की प्रेमा-भक्ति का विचार करते हैं। ८–रूप के विषय में वे अति सुन्दर तथा आश्चर्य रूप हैं, दृष्टि दर्शन में लगी हुई है जो चलायमान नहीं होती। ९-(वाद्य) बाजे। १०–ज्ञान चरचा। ११–गुरु-सिख का अंग-अंग, श्रद्धा, भय तथ प्रेम के उत्साह, चरणामृत पान की इच्छा एवं प्रियतम् की आशा से भरपूर रहता है। १२–नैवेद्य (समर्पण)। १३–पर्वत। १४–वृक्ष। १५–पृथ्वी। १६–हिमाचल की धारा में अपने प्राण त्याग दे। १७–अनेक सहज समाधिए और कोटान कोट ही योग ध्यान को।

[1]चरन सरन गुर सिख साध संग पर,
वार डारौं निग्रह हठ जतन कोटान के ॥ २५५ ॥

मधुर बचन समसर[2] न पुजस मधु,
करक[3] सबद सर बिख[4] न बिखम[5] है।
मधुर[6] बचन सीतलता[7] मिसटान[8] पान[9],
[10]करक सबद सतपत कटु क्रम है।
मधुर बचन कै तृपत औ संतोख सांति,
करक सबद असंतोख दोख स्रम[11] है।
[12]मधुर बचन लगि अगम सुगम होइ,
करक सबद लगि सुगम अगम है ॥ २५६ ॥

[13]गुरमुख सबद सुरति साध संग मिल,
भानु ज्ञान जोति के उदोत प्रगटायो है।
[14]नाभ सरवरु बिखै ब्रह्म कमल दल,
होइ प्रफुल्लित बिमल जल छायो है ॥
[15]मधु मकरंद रस प्रेम पर पूरन कै,
मनु मधुकर सुख संपट समायो है।
[16]अकथ कथा विनोद मोद औ आमोद लिव,
उनमन ह्वै मनोद अनत न धायो है ॥ २५७ ॥

१–गुरु-सिख और साधु संगति के चरणकमलों पर उपरोक्त साधन और करोड़ों हठ-योग आदि यत्न न्योछावर कर दू। २–बराबर। ३–कटु। ४–विष, ज़हर। ५–भयानक। ६–मीठा। ७–नम्र मचन। ८–मिठाई। ९–पीना। १०–कटु शब्द की जलन की अपेक्षा कटुता भी कम कड़वी है। ११—कष्ट देता है। १२—मीठे वचनों से कठिन कार्य सहज हो जाता है, और कटु वचनों से सहज कार्य भी कठिन हो जाते हैं। १३—गुरुमुख पुरुष साधु सगति में मिल कर उपदेश में प्रीति लगाते है जिस से ज्ञान सूर्य की ज्योति प्रकट हो आती है। १४–नाभि-सरोवर (प्राणों के निर्मल जल) में ज्ञान सूर्य द्वारा ब्रह्म-कमल-पत्र प्रफूल्लित हो रहा है। १५–अमृत मयी सुगन्धि के रस में प्रेम से अघाया हुआ मन-भवरा सुख-सपट में समा जाता है। १६–ससारिक आनन्दों से रहित जो आनन्द है उस के कौतुक की अकथनीय कथा की ओर जो लगे हुए हैं, उन की वृत्ति तुरियावस्था में मस्त हुई है, जो उस को छोड़ कर और कहीं नहीं जाती।

जैसे काचो पारो महा बिखम न खायो जाइ,
मारे निहकलंक ह्वै कलंक न मिटावई।
तैसे मन सबद बीचारि मार हौमै मेटि,
परउपकारी ह्वै बिकार न घटावई॥
[1]साध संग अधम असाध ह्वै मिलत जब,
चूना ज्यों तंबोल रस रंग प्रगटावई॥
तैसे ही चंचल चित भ्रमत चतुर कुंट,
चरन कमल सुख-संपट[2] समावई॥ २५८॥

[3]गुरमुखि मारग ह्वै धावत बरज राखै,
सहज बिस्राम-धाम निहचल बास है।
[4]चरन सरनि रज रूप कै अनूप रूप,
दरस दरसि समदरसि प्रगास है॥
[5]सबद सुरति लिव वज्र-कपाट खुले,
अनहद नाद बिसमाद को बिस्वास है।
[6]अमृत बाणी अलेख लेख कै अलेख भये,
परदच्छना कै सुख दासन के दास है॥ २५९॥

[7]गुरु सिख साधु रूप रंग अंग अंग छवि,
देह कै बिदेह औ संसारी निरंकारी है।

१–नीच-असाधु भी साधु संगति से उत्तम हो जाता है, जैसे चूना (कली) पान के रस के साथ मिल कर लाल रंग बना देता है। २–सुख रूप पात्र में। ३–गुरमुख पुरुष गुरु मार्ग को प्राप्त हो कर दौड़ते हुए मन को रोक कर रखते हैं, (इसी कारण) वे सहज-पद में स्थित होते हैं। ४–गुरु चरण-शरण द्वारा प्राप्त हुई धूलि से उन का रूप अनुपम हो जाता है और गुरु दर्शन को देख कर (उन के हृदय में) समदृष्टि का प्रकाश होता है। ५ शब्द श्रुति में वृति लगाने से हृदय के किवाड़ खुल जाते हैं, तथा अनहद शब्द की ध्वनि से अनुभवी अवस्था का निश्चय हो जाता है। ६–अमृत और अलेख रूप गुरु वाणि को जान कर स्वयं अलेख हुए, गुरुदेव की प्रदक्षणा की जिस से परम सुख की प्राप्त हुई। ७–गुरु सिख साधु स्वरूप होते हैं, उन के हृदय में गुरु-प्रेम का रंग खिल रहा है, अग-अंग पर ईश्वरीय शोभा छायी है, देहि में रहते हुए ही वे देहाध्यास रहत तथा संसारी होते हुए भी उदासीन है।

दरस दरस समदरस ब्रह्म ध्यान,
सबद सुरति गुरु ब्रह्म बीचारी है॥
गुरु उपदेस परवेस लेख कै अलेख,
चरन सरनि कै बिकारी उपकारी है।
[1]प्रदच्छना कै ब्रह्मादिक परिक्रमादि,
पूरन ब्रह्मा अग्र भाग आज्ञाकारी है॥ २६० ॥

[2]गुरुमुख मार्ग ह्वै [3]भ्रमन को भ्रम खोयो,
चरन सरनि गुरु एक टेक[4] धारी है।
दरस दरसि समदरस धिआन धारि,
[5]सबद सुरति कै [6]संसारी निरंकारी है॥
सतगुरु सेवा करि [7]सुरि नर सेवक ह्वै,
मान गुरु आज्ञा सभि जग आज्ञाकारी है।
[8]पूजा प्रान प्रानपति सरब निधान दान,
पारस परस गति परउपकारी है॥ २६१ ॥

[9]पूरन ब्रह्म गुरु महिमा कहै सु थोरी,
[10]कथनी बदनी बादि नेति नेति नेति है।
पूरन ब्रह्म गुरु पूरन [11]सरब मई,
निंदा करियै सु कांकी नमो नमो हेति[12] है॥
ताही ते बिवरजित अस्तुति निंदा दोऊ,
[13]अकथ कथा बीचार मौन ब्रत लेत है।

१-ब्रह्मादि देवता गण पूर्ण ब्रह्म स्वरूप गुरुदेव के आज्ञाकारी हो कर रहते हैं और प्रदक्षिणादि करते हैं। २-गुरुमुख मार्गी हो कर। ३-भटकने का भ्रम दूर किया। ४-आश्रय। ५-शब्द में प्रेम कर के। ६-गृहस्थि होते हुए भी त्यागी हैं। ७ देवता। ८-गुरु सिख प्राणपति (प्रभू) की प्राणों द्वारा पूजा करता है, सर्व निधियों का दान करता है और पारस के समान परोपकारी हो जाता है। अर्थात् अपने छूने मात्र से स्वर्ण की तरह शुद्ध जीवन प्रदान करता है। ९-पूर्ण ब्रह्म स्वरूप गुरु की। १०-हमारी कथनी बदनी निरार्थिक है (क्योंकि वेद भी तो उस अनन्त को) नेति नेति कहते हैं। ११-सर्व रूप। १२-प्रेम से। १३-यह कथा अकथनीय जान कर मौन व्रत धारन करते हैं।

[१]बाल सुधि सुधि करि देह कै बिदेह भए,
जीवन मुकति गति बिसम सुचेत है॥ २६२॥

गुरुसिख संगत मिलाप को प्रताप अति,
[२]प्रेम कै परस्पर बिसम स्थान है।
[३]द्रसटि दरस कै दरस कै द्रसटि हरी,
हेरत हिरात सुधि रहत न ध्यान है॥
[४]सबद कै सुरति[५] [६]सुरति कै सबद हरे,
कहत सुनत गति रहत न ज्ञान है।
असन[७] बसन[८] तन मन बिसिमरन[९] ह्वै,
[१०]देह कै बिदेह उनमत्त मधु पान है॥ २६३॥

जैसे लग मात्र हीन पढत और की और,
पिता पूत पूत पिता समसरि जानियै।
सुरति बिहून जैसे बांवरो बखानियत,
और कहै और कछु हिरदै मै आनियै॥
जैसे गुंग सभा मध्य कहि न सकत बात,
बोलत हँसाइ होइ बचन बिधानियै[११]।
[१२]गुरमुखि मारग मै मनमुख थकत ह्वै,
लगन सगन मानें कैसे मन मानियै॥ २६४॥

कोटिन कोटानि छबि[१३] रूप रंग सोभा निधि,
कोटिन कोटानि कोटि जगमग जोति कै।

१-बाल बुद्धि (अज्ञान) को शुद्ध कर के, देह-ममता को त्याग, आश्चर्य-जीवन मुक्ति को प्राप्त हुए और परम सुचेत हैं। २-परस्पर प्रेम के कारण आश्चर्य का स्थान बना हुआ है। ३-दृष्टि द्वारा सद्गुरु देव के दर्शन करने तथा बाह्य पदार्थों के देखने-दिखाने की सुधि अथवा ध्यान रहिता ही नहीं। ४-उपदेश। ५ सुनकर। ६-अन्य उपदेश और सुनना खत्म हो जाते हैं। ७-खाना। ८ वस्त्र। ९-सुधि-भूल गई। १०-अनुभव का अमृत पी कर आनन्द मग्न हो रहे हैं और देहि से विदेह हैं। ११-विध+आनियै=अन्य प्रकार के वचन। १२-ऐसे ही गुरमुख मार्ग में मनमुख लोग थक हो जाते हैं। क्योंकि वह शकुन अप-शकुन आदि में फंसे रहिते हैं, उन का मन गुरु-मार्ग में कैसे [illegible] हो सकता है। १३-शोभा।

कोटिन कोटान राज भाग प्रभुता प्रताप,
कोटिन कोटान सुख आनंद उदोत[१] कै ॥
कोटिन कोटानि राग नाद बाद ज्ञान गुन,
कोटिन कोटान जोग भोग ओत पोत[२] कै ।
कोटिन कोटान तिल महिमा अगाध बोध,
[३]नमो नमो दसटि दरस सबद स्रोत कै ॥ २६५ ॥

अहिनिसि[४] [५]भ्रमत कमल कुमुदनी को ससि,
[६]रवि मिल बिछुरत सोग हरख व्यापही ।
[७]रवि ससि उलंघ सरन सत्गुरु गही,
चरन कमल सुख संपट[८] मिलाप ही ॥
[९]सहज समाधि निज आसन सुबासन कै,
मधु मकरंद रस लुभित अजाप ही ।
त्रिगुन अतीत[१०] ह्वै बिस्राम निहकाम[११] धाम,
उनमन[१२] मगन अनाहद अलापही ॥ २६६ ॥

रवि[१३] ससि[१४] दरस कमल कुमदनी हित,
[१५]भ्रमत भ्रमर मन सजोगी बियोगी है ।
[१६]त्रिगुन अतीत गुरु चरन कमल रस,
मधु मकरंद रोग रहत अरोगी है ॥

१-प्रगट । २-ताना पेटा, घुला मिला हुआ । ३-शब्द श्रोत और दर्शन-दृष्टि कर उपरोक्त गुरु सिख के प्रति पुन: पुन नमस्कार है । ४-दिन-रात । ५-भटकते हैं कमल और कमुदिनि चन्द्रमा तथा (सूर्य) के लिये । ६-कमल को सूर्य और कुमुदिनि को चन्द्रमा मिल जाए तो प्रसन्न हो जाते हैं और जब विछुड़ जाते हैं तब शोकातुर हो जाते हैं । ७-सूर्य और चन्द्रमा की क्षण भङ्गर प्रीति को पार कर सत्गुरु की शरण को पकडते हैं । ८-सुख रूप डिब्बे में समा जाते हैं । ९-"निज आसन" आत्म पद में स्वाभाविक ही स्थित हुए प्रेम रस मकरन्द मधु को प्राप्त कर अजाप की श्रेष्ठ सुगन्धि में लुभित हो रहे हैं । १०-रहित । ११-कामणाओं से रहित । १२-तुरियावस्था । १३-सूर्य । १४-चन्द्रमा । १५-भवरे का मन भ्रमण करने से सयोगी-वियोगी है । १६-त्रिगुण रहित सत्गुरु जी के चरण कमल की प्रेम रस मकरन्द मधु शिष्य को रोग रहित कर देती है ।

[1]निहचल मक्रंद सुख संपट सहज धुनि,
सबद अनाहद कै लोग में अलोगी है।
गुरमुख सुखफल महिमा अगाध बोध,
जोग भोग अलख निरंजन प्रजोगी है ॥ २६७ ॥

जैसे दरपन बिखे बदन[2] बिलोकियत,
[3]ऐसे सरगुन साखीभूत गुरु ध्यान है।
जैसे जंत्र धुनि बिखे बाजत जंत्री को मन,
तैसे घट घट गुरु सबद गिआन है ॥
मन बच क्रम जत्र कत्र से एकत्र भए,
पूरन प्रगास प्रेम परम निधान[4] है।
उनमन[5] मगन गगन[6] अनहद धुनि,
सहज समाधि निरालंब[7] निरबान[8] है ॥ २६८ ॥

[9]कोटिन कोटान ध्यान द्रसटि दरस मिल,
अति असचरजमय हेरत हिराए हैं।
कोटिन कोटान ज्ञान सबद सुरति मिल,
महिमा महातम न अलख लखाए हैं ॥
[10]तिल की अतुल सोभा तुल[11] न तुलाधार[12]
[13]पार कै अपार न अनंत[14] अंत पाए हैं।
कोटिन कोटानि चंद्रभानु[15] जोति को उदोत[16],
होत बलिहार बारंबार न अघाए[17] हैं ॥ २६९ ॥

१–अविनाशी मक्रन्द के सुख में (संपट) बद्ध हो कर गुरुमुख का मन अनहद शब्द की सहज ध्वनि में लिवलीन रहने के कारण संसारी होता हुआ भी असंसारी है। २–मुख। ३–ऐसे ही साची भूत प्रभु, गुरु ध्यान में सगुण रूप हो प्रगट हो आता है। ४–खजाना। ५–तुरियावस्था। ६–दशमद्वार (आकाश)। ७–विना आधार के। ८–अखंड समाधि। ९–करोड़ों दृष्टिएं दर्शे ध्यान में मिल कर भी अतिशयाश्चर्य रूप को (हेरत) देखते ही हार जाती हैं। १०–तिल मात्र की शोभ भी अतुलनीय है। ११–तराजू के बांट। १२–तराजू। १३–पार की दृष्टि से अपार है। १४–शेष नाग। १५–सूर्य। १६–प्रगट। १७–तृप्त।

कोटि ब्रह्मांड जांके [1]एक रोम अग्र भाग
पूरन प्रगास तास[2] कहा धौ समावई।
जांकै एक तिल को महातम अगाध बोध,
पूरन प्रगास जोति [3]कैसे कहि आवई॥
जांके ओअंकार के बिथार की अपार गति,
[4]सबद बिबेक एक जीह कैसे गावई।
पूरन ब्रह्म गुरु महिमा अकथ कथा,
नेति नेति नेति [5]नमो नमो कर आवई॥ २७०॥

चरन कमल मकरंद रस लुभित ह्वै,
मन मधुकर[6] सुख संपट[7] समाने है।
परम सुगंधि[8] अति कोमल[9] सीतलता कै,[10]
बिमल सथल[11] निहचल[12] न डुलाने हैं॥
[13]सहज समाधि अति अगम अगाध लिव,
अनहद रुनझुन धुनि उर गाने हैं।
पूरन परम जोति परम निधान दान,
आन ज्ञान ध्यान सिमरन बिसराने हैं॥ २७१॥

रज तम सत काम क्रोध लोभ मोह हंकार,
[14]हरि गुरु ज्ञान बान क्रांति निहक्रांति है॥
काम निहकाम[15] निहकरम करम गति[16],
आसा कै निरास भए भ्रांति[17] निहभ्रांति है॥

१-एक बाल की नोक। २-तिस का। ३-किस प्रकार कहने में आए। ४-गुरु शब्द की विचार एक जिह्वा कैसे गा सकती है? ५-नमस्कार करना ही योग्य है। ६-भवरा। ७-डिब्बा। ८-भक्ति रूप। ९-क्रूरता की अत्यन्त निवृत्ति रूप। १०-ईर्ष्या रहत सहनशील। ११-निर्मल पद, परम पद। १२-स्थित हैं। १३-अगम अगाध रूप सहज समाधि में वृत्ति लगी हुई है और झकार संयुक्त अनहत् शब्द की ध्वनि का हृदय में गायन हो रहा है। १४-गुरुदेव ने ज्ञान के क्रान्तिकारी तीरों से कामादिकों को हार दे कर बहुत तेज कर दिया। १५-कामना से निश्काम। १६-कर्म प्रवृत्ति से नि.कर्म हो गए। १७-भ्रम।

स्वाद निहस्वाद अरु बाद निहबाद भए,
[1]असंस्रेह निसस्रेह देह गेह पांति[2] है ।
[4]गुरमुख प्रेम रस बिसम बिदेह सिख,
माया में उदास वास एकांकी इकांति है ॥ २७२ ॥

प्रथम ही तिल बोए धूरि मिल बूट बाधै,
एक से अनेक होत प्रगट संसार में ।
कोऊ लै चबाइ कोऊ [5]खाल काढै रेवरी कै,
कोऊ करे तिलवा[6] मिलाइ गुर बारि[7] में ॥
कोऊ तो उकखली डारि कूट तिलकुट्ट करै,
कोऊ कोल्हू पियर[8] दीप दिपत[9] अंध्यार में ।
जांके एक तिल को बिचार न कहत आवै,
[10]अबिगति गति कत आवत बीचार में ॥ २७३ ॥

रचना चरित्र[11] चित्र बिसम[12] बिचित्रपन,
[13]एक चीटी को चरित्र कहत न आवई ।
प्रथम ही चीटो के मिलाप को प्रताप देखो,
सहस अनेक एक बिल में समावई ॥
[14]अग्रभागी पाछै एकै मार्ग चलत जात,
पावत मिठास बास[15] तही मिल धावई ।
[16]भृङ्गी मिलि ततकाल भृङ्गी रूप हुइ दिखावै,
[17]चीटी चित्र अलख चितेरै कत पावई ॥ २७४ ॥

१-इच्छा, से निरिच्छित । २-(पतन) नाश । ४-गुरुमुख सिख प्रेम रस को पा कर आश्चर्यता को प्राप्त होता है और देहि की सुधि भुला कर विदेह हुआ है । ५-छिलका उतार कर । ६-तिल मरूंडा । ७-जल में । ८-निपीड़ कर । ९-प्रकाश । १०-अव्यक्त प्रभु की गति कैसे विचार में आ सकती है ? ११-कौतुक । १२-आश्चर्य । १३-एक च्योंटी का चरित्र (वृत्तान्त) भी अकथनीय है । १४-आगे-पीछे । १५-सुगन्धि १६-भृङ्गी को मिल कर तुरन्त भृङ्गी बन जाती है । १७-कीड़ी (च्योंटी) का चित्र जाना नहीं जाता, तो चित्रकार का (अन्त) कैसे जाना जा सकता है ।

[1]रचना चरित्र चित्र बिसम बिचित्रपन,
घट घट एक ही अनेक ह्वै दिखाए हैं।
उतते लिखत इत पढत अन्तर्गत,
इतहूं ते लिख प्रतिउत्तर[2] पठाए[3] हैं॥
उत ते सब्द राग नाद को प्रसन्न कर,
[4]इत सुनि समझि कै उत समझाए हैं।
रतन परीछा पेखि परमिर्ति[5] कै सुनावै,
गुरमुखि संधि मिले अलख लखाए हैं॥ २७५॥

[6]पूर्ण ब्रह्म गुरु पूर्ण कृपा कै दीनो,
साच उपदेश रिदै निहचल मति है।
सबद सुरति लिव लीन [7]जल मीन भए,
[8]पूर्ण सरबमयी पय[9] घृत[10] जुगति[11] है॥
साचु रिदै साचु देखै सुनै बोलै गन्ध रस,
पूर्ण परस्पर भावनी भगति है।
[12]पूर्ण ब्रह्म द्रुम साखा पत्र फूल फल,
एक ही अनेकमेक सतगुरु सति है॥ २७६॥

पूर्ण ब्रह्म गुरु पूर्ण परम जोति,
ओति पोति [13]सूत्र गत एक ही अनेक है।
लोचन स्रवन[14] स्रोत[15] एक ही [16]दरस सबद,

१-प्रभु की रचना के चरित्र का चित्र अद्भुत और आश्चर्य पूर्ण है। २-जवाब। ३-भेजता है। ४-इस ओर श्रोता सुन और समझ कर दूसरों को समझाता है। ५-मर्य्यादा, मुल्य। ६-पूरे गुरुदेव ने कृपा कर के, पूर्ण ब्रह्म का हृदयों में सत्य उपदेश दिया, जिस से हमारी मति स्थिर हो गई। ७-जल में मछुली की भान्ति हुए है। ८-दूध में घी की तरह प्रभु सर्व रूप हो कर संपूर्ण व्यापक हो रहा है। ९-दूध। १०-घी। ११-तरह। ११-शाखा (टाहनी), पत्र, फूल, और फल में (द्रुम) जैसे वृक्ष की ही सत्ता व्यापक हो रहीं है वैसे ही पूर्ण ब्रह्म की सत्ता अनेकों में एकमेक हो रही है, वही ब्रह्म सत्ता सत्य रूप सतगुरु है। १३-सूत्र की तरह। १४-कर्ण, कान। १५-प्रवाह,। १६-देखना और सुनना एक है।

वार[1] पार[2] कूल[3] गति सरिता[4] विवेक है ॥
चन्दन वनासपती कनिक[5] अनिक धातु,
[6]पारस परसि जानियत जावदेक[7] है।
[8]ज्ञान गुरु अञ्जन निरञ्जन अंजुन विखै,
दुविधा निवार गुरुमति एक टेक है ॥ २७७ ॥

[9]दरस ध्यान लिव द्रसटि अचल भई,
सबद विवेक सुति स्रवण अचल है।
[10]सिमरन मात्र सुख जिहवा अचल भई,
गुरुमति अचल उनमन असथल है ॥
[11]नासिका सुवास कर[12] कोमल सीतलता कै,
पूजा प्रणाम परस चरण कमल है।
[13]गुरुमुखि पन्थ चर अचर ह्वै अंग अंग,
पंग सरबंग बूंद सागर सलल है ॥ २७८ ॥

[14]दर्शन सोभा द्रग द्रसटि ज्ञान गम्म,
द्रसटि ध्यान प्रभ दरस अतीत है ॥

१-इस पार। २-उस पार। ३-किनारा (तट)। ४-नदी। ५-स्वर्ण। ६-जैसे चन्दन की सुगन्धि से वनास्पति चन्दन हो जाती है और पारस को छू कर अनेक धातुएं स्वर्ण होती जान पड़ती हैं। ७-जावद+एक, जितना एक है। ८-गुरुसिख गुरुदेव से ज्ञान का अंजन (सुरमा) (बुद्धि के नेत्रों में) प्राप्त कर अञ्जन (माया) में रहिते हुए निरञ्जन (निर्लेप) रहते हैं और द्वैत भाव को निवृत कर, एक गुरुमत का ही आश्रय ग्रहण करते हैं। ९-गुरुदेव के दर्शन के ध्यान से दृष्टि की वृत्ति अचल हो गई, और गुरु शब्द की विचार को सुन कर श्रवणों की (वृति) भी टिकाव में आ गई। १०-जिह्वा नामोच्चार्ण से ही शुद्ध हो कर स्थिर हुई तथा (बुद्धि) गुरुमति द्वारा तुरिया पद में स्थित हो गई। ११-नासिका गुरुचरण रज की सुगन्धि से, हाथ कोमलता और शीतलता के स्पर्श से, शिर गुरु चरण कमलों की पूजा प्रणाम से निश्चल हो जाते हैं। १२-हाथ। १३-गुरमुख मार्ग पर चलने से अग प्रत्यंग शुद्ध हो कर (अचर) अचल हो गए जैसे जल-बिन्दु सर्वाङ्ग रूप से जल में मिल कर समुद्र रूप बन जाते हैं। १४-ज्ञान दृष्टि द्वारा प्रभू-दर्शन की शोभा गम्य है और ध्यान दृष्टि, प्रभू दर्शन से अतीत (रहित) है। अर्थात् ज्ञान दृष्टि द्वारा प्रभू दर्शन की शोभा प्राप्य है परन्तु ध्यान दृष्टि से अप्राप्य है।

शब्द सुरति[1] परै[2] [3]सुरति सबद परै,
[4]जास बास अलख सुबासना सरीत है ॥
[5]रस रसना रहित रसना रहित रस,
कर असपरस परसन कराजीत है।
चरण गवन गम्म गवन चरन गम्म,
आस प्यास बिसम बिस्वास प्रिय प्रीति है ॥ २७६

गुरमुखि सबद सुरति हउमै मारि मरै,
जीवन मुक्त जगजीवन कै जानीऐ ॥
अंतर निरंतर [6]अंतर पट घटि गए,
अंतरजामी अंतरागति[7] उनमानीऐ[8] ॥
ब्रह्म मयी[9] है माया माया मयी है ब्रह्म,
[10]ब्रह्म बिबेक टेक एकै पहिचानीऐ।
पिण्ड[11] ब्रह्मण्ड ब्रह्मण्ड पिण्ड ओति पोति,
जोती मिल जोति [12]गोति ब्रह्मज्ञानीऐ ॥ २८० ॥

चरन सरन गुरु [13]धावत बरज राखै,
निहचल चित सुख सहज निवास है।
जीवन की आसा अरु मरन की चिन्ता मिटी,
जीवन मुक्त गुरुमत को प्रगास है ॥
आपा खोइ होनहार होइ सोई भलो मानै,
सेवा सर्वातम कै दासन को दास है।

१–बुद्धि। २–पड़ने से। ३–(संसार के अन्य) शब्द-श्रोत (परै) दूर हो जाते हैं। ४-जिस को नासिका (अलख) प्रभू की सुगन्धि युक्त है वह अन्य (सुबास) सुगन्धियों से (रीत) खाली हो जाते हैं। ५–जिस की रसना (प्रेम) रस में रहती है, वह अन्य रसों से रहत हो जाते हैं, एवम् उन के हाथ ससारी स्पर्शों से अस्पर्श हो कर अजित हो जाते हैं। ६–भीतरी (पट) परदे कम हो गए। ७–अन्तर+आगति, अन्तर आया हुआ। ८–समझिए। ९–रूप। १०–एक ब्रह्म विचार के आश्रय को ही जानना चाहिए। ११–शरीर। १२–जाति सञ्ज्ञा ब्रह्मज्ञानी की संज्ञा हो जाती है अर्थात् वह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। १३–दौड़ते हुए मन को रोक रखते हैं।

[1]श्री गुरु दरस सबद ब्रह्म ज्ञान ध्यान,
पूरण सरब मई ब्रह्म निवास है॥ २८१ ॥

गुरमुखि सुखफल काम निहकाम कीने,
गुरमुखि उद्यम निरुद्यम उकति है।
गुरमुखि मारगि होइ दुबिधा भ्रम खोइ,
चरण सरण गहे निहचल मति है।
दरसन परसत आसा मनसा थकित,
सबद सुरति ज्ञान प्राण प्राणपति है।
रचना चरित्र चित्र बिसम बिचित्र पन,
चित्र में चितेरा को बसेरा सति सति है॥ २८२।

श्री गुरु सबद सुन [2]स्रवण कपाट खुलैं,
[3]नादै मिलि नाद अनहदु लिवलाई है।
गावत सबद रस रसना रसायण[4] कै,
निझर अपार धार भाठी कै चुआई है।
हृदय निवास गुरु सबद निधान ज्ञान,[5]
धावत बरज उनमन सुधि पाई है।
[6]सबद अवेस परमार्थ प्रवेस[7] धारि,
[8]दिब्य देहि दिब्य जोति प्रगट दिखाई है॥ २८३ ॥

गुरु सिख संगति मिलाप को प्रताप अति,
[9]प्रेम कै परस्पर पूरण प्रगास है।

१-श्री गुरुदेव जी के दर्शन तथा उपदेश से ब्रह्म का ध्यान एवं ज्ञान प्राप्त होता है और साथ ही सर्व स्वरूप (पूर्ण ब्रह्म के प्रति) श्रद्धा भी प्राप्त होती है। २-कानों के परदे खुल जाते हैं। ३-गुरु उपदेश में आश्चर्य ध्वनि मिलने से निरन्तर वृत्ति लग जाती है। ४-रस का घर। ५—ज्ञान का खजाना। ६-(हृदय में) शब्द के समा जाने से। ७-प्रवेश करने से। ८-दिव्य देहि में दिव्य ज्योति प्रकट ही दिखाई देने लगती है। ९-(क्योंकि) परस्पर प्रेम के कारण उन के में हृदय पूर्ण प्रभू का प्रकाश हो जाता है।

[1]दरस अनूप रूप रंग अङ्ग अङ्ग छबि,
हेरत हिराने द्रग बिसम बिस्वास है ॥
सबद निधान[2] अनहद रुन झुन धुनि,
[3]सुनत सुरति मति हरन अभ्यास है।
द्रसटि दरस अरु सबद सुरति मिलि,
परमद्भुत गति पूरण बिलास[4] है ॥ २८४ ॥

गुरमुखि संगति मिलाप को प्रताप अति,
[5]पूर्ण प्रगास प्रेम नेम कै परसपर है।
चरण कमल रज बासना सुबास रसि,
सीतलता कोमल पूजा कोटि न समसर है।
रूप कै अनूप रूप अति असचरज मय,
[6]नाद बिसमादि राग रागनी न पटंतर है।
निझर अपार धार अमृत निधान पान,
परमद्भुत गति आन नाही समसर है ॥ २८५ ॥

नवन गवन जल शीतल अमल जैसे,
अगनि उरध मुख तपत मलीन है।
[7]बरन बरन मिल सलिल बरन सोई,
स्याम अगनि सर्ब बरन छबि छीन है ॥
जल प्रतिबिम्ब पालक प्रफुल्लित बनास्पती,
अगनि प्रदग्ध करत सुख हीन है।
तैसो ही असाधु साधु संगम सुभावगत,
गुरम[illegible] दुर्मति सुख दुख हीन है ॥ २८६ ॥

१-गुरु[illegible] दर्शन, रूप-रग की छवि (फबन) अग-अग में स्फुरित हो
जिस[illegible] नेत्र विस्मित हो जाते हैं। (गुरु चरणों में) आश्चर्य
[illegible] २-खजाना। ३-चतुरताई को त्याग कर
[illegible]ने का अभ्यास करते हैं। ४-आनन्द।
[illegible] मिलाप से [illegible]दय में प्रेम के नियमों का प्रकाश हो
[illegible]ों [illegible]भी उस के समान नहीं। ७-भिन्न
[illegible]ो जाता है, किन्तु अग्नि का रंग अन्त
कर देता है।

काम क्रोध लोभ मोह अहम्मेव कै असाधु,
साधु सत्य धर्म दया अर्थ सन्तोख कै।
गुरुमत साधु संग भावनी भगति भाइ,
[1]दुर्मति कै असाधु संग दुख दोख कै॥
जनम मरन गुरु चरन सरन बिनु,
मोख पद चरन कमल चित् चोख[2] कै।
[3]ज्ञान अंस हंस गति गुरमुखि बंस बिखै,
दुकृत सुकृत खीर नीर सोख पोख कै॥ २८७॥

(हार मानी) झगरो मिटत रोस[4] मारे से रसायण[5] होइ,
[6]पोट डारे लागत न डण्ड जग जानिए।
[7]हौमै अभिमान अस्थान ऊंचे नाहिं जल,
नमत नवन थल जल पहिचानिए॥
अंग सर्बंग तरह[8] रहोत है चरन,
ताते चरनामृत चरन रेनु मानिए।
तैसे हरि भगत जगत में नम्रीभूत,
जग पग लग [9]मसतक परमानिए॥ २८८॥

पूजीऐ न सीस ईस ऊचो देहि में कहावै,
पूजीऐ न लोचन दृष्टि दृष्टांत के।
पूजीऐ न श्रवण [10]सुरति सम्बन्ध कर,
पूजीऐ न नासिका सुवास स्वास क्रांत[11] के॥

१—कुशिक्षा के संग दोष से असाधु पुरुष दु खदायी दोष निकालते हैं। २—गाढ़ कर। ३—वे गुरुमुखों के वेश में, हंसों की भान्ति, ज्ञान अंश प्राप्त कर लेते हैं—(अर्थात्) दुष्कर्मों के पानी का शोषण कर के श्रेष्ठ कर्मों के दूध से पुष्ट होते हैं। ४—क्रोध। ५—प्रेम। ६—जिस बोझ पर (दण्ड) कर लग रहा हो उसे फैंक दिया जाय तो कर नहीं लगता। ७—अहंता व ममता वाले अभिमानी, ऊंचे स्थान की तरह हैं जहां जल नहीं (ठहरता) तथा नम्र पुरुषों को नीची जगह की तरह पहचानो। ८—नीचे। ९—अपने मस्तक को प्रमाणीक बनाते हैं। १०—सुनने के सम्बन्ध के कारण। ११—चलने से।

[1]दरस अनूप रूप रंग अङ्ग अङ्ग छबि,
हेरत हिराने दग विसम बिस्वास है ॥
सबद निधान[2] अनहद रुन झुन धुनि,
[3]सुनत सुरति मति हरन अभ्यास है।
दसटि दरस अरु सबद सुरति मिलि,
परमद्भुत गति पूरण बिलास[4] है ॥ २८४ ॥

गुरमुखि संगति मिलाप को प्रताप अति,
[5]पूर्ण प्रगास प्रेम नेम कै परस्पर है।
चरण कमल रज बासना सुबास रसि,
सीतलता कोमल पूजा कोटि न समसर है।
रूप कै अनूप रूप अति असचरज मय,
[6]नाद बिसमादि राग रागनी न पटंतर है।
निझर अपार धार अमृत निधान पान,
परमद्भुत गति आन नाही समसर है ॥ २८५ ॥

नवन गवन जल शीतल अमल जैसे,
अगनि उरध मुख तपत मलीन है।
[7]बरन बरन मिल सलिल बरन सोई,
स्याम अगनि सर्ब बरन छबि छीन है ॥
जल प्रतिबिम्ब पालक प्रफुल्लित बनास्पती,
अगनि प्रदग्ध करत सुख हीन है।
तैसो ही असाधु साधु संगम सुभावगत,
गुरुमति दुर्मति सुख दुख हीन है ॥ २८६ ॥

१-गुरु का अनूपम दर्शन, रूप-रंग की छबि (फबन) अंग-अंग में स्फुरित हो रही है जिस को देख कर नेत्र विस्मित हो जाते हैं। (गुरु चरणों में) आश्चर्य श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। २-खजाना। ३-चतुरताई को त्याग कर अनहद् शब्द की ध्वनि सुनने का अभ्यास करते हैं। ४-आनन्द। ५-गुरुमुखों की सङ्गति के परस्पर मिलाप से हृदय में प्रेम के नियमों का प्रकाश हो जाता है। ६-आश्चर्य राग-रागनियों के स्वर भी उस के समान नहीं। ७-भिन्न भिन्न रङ्गों में मिलने से पानी का रंग भी वही हो जाता है, किन्तु अग्नि का रंग अन्त में काला पड़ जाता है तथा दूसरों की छबि को भी नष्ट कर देता है।

काम क्रोध लोभ मोह अहम्मेव कै असाधु,
साधु सत्य धर्म दया अर्थ सन्तोख कै।
गुरुमत साधु संग भावनी भगति भाइ,
[1]दुर्मति कै असाधु संग दुख दोख कै॥
जनम मरन गुरु चरन सरन बिनु,
मोख पद चरन कमल चित् चोख[2] कै।
[3]ज्ञान अंस हंस गति गुरमुखि बंस बिखै,
दुकृत सुकृत खीर नीर सोख पोख कै॥ २८७॥

(हार मानी) झगरो मिटत रोस[4] मारे से रसायण[5] होइ,
[6]पोट डारे लागत न डराड जग जानिऐ।
[7]हौमै अभिमान अस्थान ऊंचे नाहिं जल,
नमत नवन थल जल पहिचानिऐ॥
अंग सर्बंग तरह[8] रहोत है चरन,
ताते चरनामृत चरन रेनु मानिऐ।
तैसे हरि भगत जगत में नम्रीभूत,
जग पग लग [9]मसतक परमानिऐ॥ २८८॥

पूजीऐ न सीस ईस ऊंचो देहि में कहावै,
पूजीऐ न लोचन दृष्टि दृष्टांत के।
पूजीऐ न श्रवण [10]सुरति सम्बन्ध कर,
पूजीऐ न नासिका सुबास स्वास क्रांत[11] के॥

१–कुशिक्षा के संग दोष से असाधु पुरुष दु:खदायी दोष निकालते हैं। २–गाड़ कर। ३–वे गुरुमुखों के वेश में, हंसों की भान्ति, ज्ञान अंश प्राप्त कर लेते हैं–(अर्थात्) दुष्कर्मों के पानी का शोषण कर के श्रेष्ठ कर्मों के दूध से पुष्ट होते हैं। ४–क्रोध। ५–प्रेम। ६–जिस बोझ पर (दण्ड) कर लग रहा हो उसे फैंक दिया जाय तो कर नहीं लगता। ७–अहंता व ममता वाले अभिमानी, ऊंचे स्थान की तरह हैं जहां जल नहीं (ठहरता) तथा नम्र पुरुषों को नीची जगह की तरह पहचानो। ८–नीचे। ९–अपने मस्तक को प्रमाणीक बनाते हैं। १०–सुनने के सम्बन्ध के कारण। ११–चलने से।

पूजीऐ न मुख स्वाद सबद संजुक्त कै,
पूजीऐ न हसत सकल अंग पांत कै।
द्दसटि सबद सुरति गन्ध रस रहत ह्वै,
पूजीऐ पदारविन्दु नवन[1] महांत कै॥ २८६॥

नवन गवन जल निर्मल सीतल है,
नवन बसुंधरा[2] सर्व रस रास[3] है।
उर्ध तपस्या कै श्रीखण्ड[4] बासु बोहे बन,
नवन समुद्र होत रतन प्रगास है॥
नवन गवन पग पूजियत जगत में,
चाहे चरणामृत चरन रज तास है।
तैसे हरि भगत जगत में नम्रीभूत,
काम निःकाम धाम बिसम बिस्वास है॥ २६०॥

[5]सबद सुरति लिव लीन जल मीन गति,
सुखमना संगम हुइ उलट पवन कै॥
बिसम बिस्वास बिखै अनभै[6] अभ्यास रस,
प्रेम मधु अपिउ पीवै [7]गुह्य गवन कै॥
सबद कै अनहद सुरति कै उनमनी,
प्रेम कै निज्झर धार सहज रवन कै।
त्रिकुटी[8] उलंघ सुख सागर संजोग भोग,
दशम स्थल[9] निःकेवल भवन कै॥ २६१॥

जैसे जल जलज[10] औ जल दुध सील[11] मीन,
चकई कमल दिनकर[12] प्रति प्रीत है।

१-नम्रता। २-पृथ्वी। ३-राशि-(भण्डार)। ४-चन्दन। ५-शब्द की प्रीति में, जल में मछली की भान्ति मग्न हो कर श्वासों की गति को उलटा चलाया और सुखमना नाड़ी के सहयोगी हुए। ६-अनुभव। ७-प्राणों को गुप्त रीति से चला कर। ८-इड़ा, पिंगला, सुखमना। ६-दशमद्वार। १०-कमल। ११-जल। १२-सूर्य।

दीपक पतङ्ग अलि कमल चकोर ससि,
मृग नाद बाद घन चात्रिक सुचीत है ॥
नारि औ भतार सुत मात जल तृषावन्त
छुध्यार्थी भोजन दारिद्र धन मीत है।
माया मोह द्रोह दुखदायी न सहायी होत,
गुरु सिख सन्धि मिले त्रिगुण[1] अतीत है ॥ २६२ ॥

[2]चरन कमल मकरन्द[3] रस लुभित होइ,
अंग अंग बिसम सर्बंग में समाने है।
द्रसटि दरस लिव दीपक पतंग संग,
सबद सुरति मृगनाद[4] हूइ हैराने है।
काम निःकाम क्रोधाक्रोध निर्लोभ लोभ,
मोह निर्मोह अहमेव हूँ लजाने है।
बिसमै बिसम असचर्जे असचर्ज मय
अद्भुत परमद्भुत अस्थाने है ॥ २६३ ॥

[5]दरसन जोति के उदोत सुख सागर में,
कोटिक स्तुति छबि तिल को प्रगास है।
किञ्चित कृपा कोटिक कमला कल्पतरु,
[6]मधुर बचन मधु कोटिक बिलास है ॥
[7]मन्द मुस्कान बाण खानि है कोटानि ससि,
शोभा कोटि लोट पोट कुमुदनी तास है।
मन मधुकर[8] मकरन्द रस लुभित ह्वै,
सहज समाधि लिव बिसम बिस्वास है ॥ २६४ ॥

१–रज, तम, सत गुण। २–सद्गुरु जी के। ३–सुगन्धि (भक्ति)। ४–घण्डाहेड़े का शब्द। ५–सुख सागर स्वरूप सत्गुरु के दर्शन की ज्योति का उदय हुआ है, उस की तिल मात्र शोभा की स्तुति में कोटिशः स्तुतियों का प्रभाव है। ६–सत्गुरु के मधुर वचनों में करोड़ों ही अमृत तथा आनन्द की प्रतीत है। ७–सत्गुरु जी की मन्द मुस्कान बाणों की खानि है, उस के सामने कोटिशः चन्द्रों की शोभा तथा कुमुदनीएं लोट-पोट हो रही है। ८–भंवरा।

[1]चरन सरन रज मज्जन मलीन मन,
दर्पण गति गुरुमति निहचल है।
ज्ञान गुरु अञ्जन दे चपल खञ्जन[2] दृग,
अकुल[3] निरञ्जन ध्यान जल थल है॥
भञ्जन भय भ्रम अरु [4]गञ्जन कर्म काल,
पाँच प्रपञ्च बलवञ्च[5] निर्दल है।
सेवा करञ्जन[6] सर्वात्म निरञ्जन भए,
माया में उदास कलिमल[7] निर्मल है॥ २६५

चन्द्रमा अच्छित रवि राहु न सकत ग्रास,
[8]दसटि अगोचर होय सूरज ग्रहण है।
पच्छिम उदोत होत चन्द्रमे नमस्कार,
[9]पूर्व संजोग ससि केतु खेत हन है॥
कासट में अगनि मगन चिरङ्काल रहै,
अगनि में कासट परत ही दहन है।
तैसे सिव[10] सकति[11] असाधु साधु संगम कै,
दुर्मति गुरुमति दुसह सहन है॥ २६६॥

साधु की सुजनताई पाहन की रेख प्रीति,
बैर जल रेख ह्वै बिसेख साधु सङ्ग में।
दुर्जनता असाधु प्रीति जल रेख अरु,
बैर तो पाषाण रेख सेख[12] अंग अंग में॥

१-चरण शरण की धूलि में मलीन मन स्नान करके दर्पन की तरह निर्मल हुआ जिस में गुरुमत स्थित हुई है। २-ममोला। ३-कुल रहित (वाहिगुरु)। ४-कर्म तथा काल का नाश हो गया है। ५-बल पूर्वक ठगने वाले से निर्दल हुआ है। ६-करते हुए। ७-पापों से। ८-चन्द्रमा के दृष्टि से ओझल होते ही। ९-पूर्व में सूर्य के संयोग में रहते हुए केतु चन्द्रमा को युद्ध क्षेत्र में मार लेता है। १०-कल्याण। ११-तमो गुणी स्वभाव। १२-विशेष।

कासट अगनि गति गीति बिपरीत,
रसुरी जल वारुणी सरूप जल गंग में ॥
र्मति गुरुमति अजया[2] सर्प गति,
पकारी औ बिकारी ढङ्ग ही कुढङ्ग में ॥ २६७ ॥

ुर्मति गुरुमति संगत असाधु साधु,
कासट अगनि गति [3]टेव न टरत है।
अजया सर्प जल गङ्ग वारुणी बिधान,
सन औ मजीठ खल पण्डित लरत है ॥
कंटक पुहप[4] सैल[5] घटिका[6] सनाह शस्त्र,
हंस काग बग ब्याध[7] मृग होइ निबरत है।
लोष्ट कनिक सीप संख मधु कालकूट,
[8]सुख दुख दायक संसार बिचरत है ॥ २६८ ॥

दादर-सरोज, बांस-बावन, मराल[9] बग,
पारस-पखान, बिख-अमृत संजोग है।
मृग मृगमद[10] अहि-मणि[11] मधु-माखी[12] साखी,
बांझ बधू नाह[13] नेह निःफल भोग है ॥
दिनकर जोति उल्लू बरखै समय जवांसो[14],
[15]असन बसन जैसे बृथावन्त रोग है।
तैसे गुरुमत बीज जमत न कालर में,
अंकुर उदोत होत नाहिन वियोग है ॥ २६९ ॥

१–अग्नि काष्ट में रहे तो वह उसे अपने भीतर समाये रखता है, किन्तु यदि काष्ट अग्नि में डाला जाय तो वह उसे भस्म कर देती है। इसी तरह शराब गंगा में डाली जाय तो वह उसे गंगा रूप बना लेती है परन्तु गंगा जल शराब में उन्डेलने से वह भी शराब हो जाता है। २–बकरी। ३–स्वभाव नहीं छोड़ते। ४–फूल। ५–पत्थर। ६–घड़ा। ७–शिकारी। ८–उक्त समूह वस्तुएं संसार में सुख तथा दुख देने वाली हो कर विचरण करती हैं। ९–हंस। १०–कस्तूरी। ११–सर्प की मणि। १२–शहद की मक्खी। १३–पति। १४–जवाहां का पौदा। १५–व्यथावन्त रोगी के लिए भोजन वस्त्र भी दुखदायी हैं।

सङ्गम संजोग प्रेम नेम कउ पतङ्ग जानै,
बिरह वियोग सोग मीन भल जानई।
एक टक दीपक ध्यान प्राण परिहरै,
सलिल वियोग मीन जीवन न मानई।
चरन कमल मिल बिछुरे मधुप मन,
कपट सनेह धृग जन्म अज्ञानई।
निःफल जीवन मरन गुरु विमुख होइ,
प्रेम अरु बिरह न दोऊ उर आनई ॥ ३०० ॥

[१]द्रसटि दरस लिव देखे और दिखावै सोई,
सर्व दरस एक दरस कै जानीऐ।
सबद सुरत लिव कहत सुनत सोई[२],
सर्व सबद एक सबद कै मानीऐ॥
कारण करण कर्तज्ञ सर्वज्ञ सोई,
कर्म कर्तूत कर्त्तार पहिचानीऐ।
[३]सत्गुरु ज्ञान ध्यान एक ही अनेकमेक
ब्रह्म बिवेक टेक एकै उर आनीऐ॥ ३०१ ॥

किञ्चित कटाच्छ[४] माया मोहे ब्रह्मण्ड खण्ड,
[५]साधु सङ्ग रङ्ग में बिमोहित मगन है।
[६]जांकै ओंकार के अकार हैं नाना प्रकार,
कीर्त्तन समय साधु सङ्ग सों लगन है।
सिव सनकादि ब्रह्मादि आज्ञाकारी जांके,
अग्र भाग [७]साधुसङ्ग गुणन अगन है।

१-(सोई) परमात्मा दृष्टि द्वारा दर्शन में प्रीति लगा कर दिखलाता है तो जज्ञासु सर्व दर्शनों को एक सत्गुरु के दर्शन में ही देखने लगता है। २-परमात्मा। ३-सत्गुरु जी के ज्ञान में ध्यान लगाने से अनेकों में मिले हुए एक ब्रह्म के विचार का आधार प्राप्त होता है और फिर वह एक हृदय में समा जाता है। ४-कटाक्ष (वक्रदृष्टि)। ५-साधु सङ्ग के प्रेम में वह भी मग्न और विमोहित होती है। ६-कीर्त्तन के समय साधु सङ्गति में ओंकार भी प्रेम करते हैं। ७-साधु-सगंति के गुण उस से भी अगणित (अधिक) हैं।

[1]अगम अपार साधु महिमा अपार विषय,
अति लिवलीन जलमीन अभगन है ॥ ३०२ ॥

निज घर मेरो साधु संगति नारद मुनि,
दर्शन साधुसङ्ग मेरो निज रूप है।
साधु सङ्ग मेरो माता पिता औ कुटुम्ब सखा,
साधु सङ्ग मेरो सुत श्रेष्ठ अनूप है।
साधु सङ्ग सर्व निधान प्राण जीवन में,
साधु सङ्ग निज पद सेवा दीप धूप है।
साधु सङ्ग रङ्ग रस भोग सुख सहजमय
साधु सङ्ग शोभा अति उपमा औ ऊप[2] है ॥ ३०३ ॥

अगम अपार देव अलख अभेव अति,
अनिक जतन कर निग्रह[3] न पाईऐ।
पाईऐ न जङ्ग-योग पाईऐ न राज-योग,
नाद बाद वेद कै न अगह[4] गहाईऐ।
तीर्थ पर्व देव देव सेव कै न पाईऐ,
कर्म धर्म ब्रत नेम लिव लाईऐ।
निःफल अनिक प्रकार कै आचार सबै,
सावधान साधु सङ्ग ह्वै सबद सु गाईऐ ॥ ३०४ ॥

सुपन चरित्र चित्र जोई देखै सोई जानै,
दूसरो न देखै पावै कहो कैसे जानीऐ।
नालि[5] विषय बात कीए सुनियत कान दीए,
वक्ता औ श्रोता बिनु का पै उनमानीए।
पघुला[6] के मूल विषय जैसे जल पान कीजै,
लीजीऐ जतन कर पीए मन मानीऐ।

१—अगम तथा अपार परमात्मा के भीतर जल में मछली की तरह साधु संगति निरन्तर लिव लीन है। २—उपमान। ३—हठयोग। ४—न पकड़ा जाने वाला। ५—नाली। ६—घास।

[1]गुरु सिख सन्धि मिले गुहज कथा विनोद,
ज्ञान ध्यान प्रेम रस बिसम बिधानीऐ ॥ ३०५ ॥

नवन गवन जल शीतल अमल[2] जैसे,
अगनि ऊर्ध मुख तपत मलीन है।
सफल ह्वै आंब झुके रहत है चिरङ्काल,
नमै न अरिण्ड तांते आवँला[3] छीन है।
चन्दन सुबास जैसे बासीए बनासपती,
बांस तो बडाई बूडियो सङ्ग लिवलीन है।
तैसे ही असाधु साधु अहंबुद्धि नम्रता कै,
सन[4] औ मजीठ[5] गति पाप पुण्य कीन है ॥ ३०६ ॥

सकल बनास्पती बिपय द्रुम दीर्घ द्वय,
निःफल भये बूडे बहुत बडाई कै।
चन्दन सुबासना कै सेंबल सुबासु होत,
बांस निर्गंध बहु गांठन ढीठाई कै।
सेंबल के फल तूल[6] खग मृग छाया ताकै,
बांस तौ बरण दोखी जारत बुराई कै।
तैसे ही असाधु साधु होत साधु सङ्ग कै,
[7]तृष्टे न गुरु गोप द्रोह गुरु भाई कै ॥ ३०७ ॥

बृत्त बली मिलाप सफल सघन छाया,
बांस तो बरन दोखी मिलैं जरै जारि है।
सफल ह्वै तरुहरि झुकत सकल तरु,
बांस तो बडाई बूडियो [8]आपन सम्हार है।

१-गुरु तथा शिष्य के मिलाप के आनन्द की कथा गूढ़ है, उस के ज्ञान ध्यान तथा प्रेम रस के नियमों को आश्चर्य रूप माना गया है। २-निर्मल। ३-आयु। ४-सन ऊ ची होती है, रस्सी रूप हो कर बांधती है। ५-मजीठ पृथ्वी में नम्र रहती है, शोभा बढ़ा कर उपकार करती है। ६-रूई। ७-अपने गुरु को छिपाने वाले तथा गुरु भाईयों के विद्रोही के हृदय में भक्ति स्थित नहीं होती। ८-अपने आप (अहंकार) को ही देखता है।

सकल बनास्पति शुद्ध हृदय मौन गहे,
बांस तौ रीतो गठीले बाजे [1]भारि मारि है।
चन्दन समीप ही अच्छत निर्गन्धि रहे,
गुरुसिख दोखी वज्र प्राणी न उधार है॥ ३०८ ॥

गुरु सिख सङ्गति मिलाप को प्रताप ऐसो,
प्रेम कै परस्पर पग लपटावही।
द्रसटि दरस अरु सबद सुरति[2] मिलि,
पूर्ण ब्रह्म ज्ञान ध्यान लिव लावही।
एक मिष्टान्न पान लाबत महा प्रसाद,
एक गुरुपर्व कै सिक्खन बुलावही।
शिव सनकादि बांछै तिन के उच्छिष्ट[3] कौ,
साधुन की दूखना कवन फल पावही॥ ३०९ ॥

जैसे बोझ भरी नाव आंगुरी द्वय बाहर होय,
पारि परै पूर सबै कुसल बिहात है।
जैसे एकाहारी एक घरी पाकशाला बैठ,
भोजन कै बिजनादि स्वादि कै आघात है।
जैसे राजद्वार जाय करत जुहार जन,
एक घरी पाछै देस भोगता ह्वै खात है।
आठ ही पहर साठ घरी में जो एक घरी,
साधु समागम करै निज घर जात है॥ ३१० ॥

कार्तिक जैसे दीपमालिका रजनी[4] समय,
दीप जोति का उदोत[5] होत ही बिलात है।
बरखा समय जैसे तउ बुद्बुदा को प्रगास,
तास नाम पलक में न ठहिरात है।
ग्रीखम समय जैसे तौ मृग तृसना चरित्र,

१-(मार) पवन को धारण करके। २-कर्ण। ३-जूठ। ४-रात। ५-प्रकाश।

झाई[1] सी दिखाई देत उपज समात है।
[2]तैसे मोह माया छाया बृच्छ चपल छल,
छलैं छैल श्री गुरु चरण लपटात है ॥ ३११ ॥

जैसे तौ बसन अङ्ग सङ्ग मिलि होइ मलीन,
सलिल साबुन मिलि निर्मल होत है।
जैसे तौ सरोवर सिबाल कै आछादियों[3] जल
झोल पीए निर्मल देखिऐ अछोत है।
जैसे निसि अन्धकार तारिका चमत्कार,
होत उजियारो दिनकर के उदोत है।
तैसे माया मोह भ्रम होत है मलीन[4] मति,
सत्गुरु ज्ञान ध्यान जगमग जोति है ॥ ३१२ ॥

[5]अन्तर अच्छित ही देसन्तर गमन करै,
पाछै परे पहुँचे न पाइक[6] जो धावई।
पहुँचे न रथ पहुँचे न गजराज[7] बाजि[8],
पहुंचे न खग मृग फांधत उडावई।
पहुंचे न पवन गवन त्रिभुवण प्रति,
अर्ध ऊर्ध अन्तरिच्छ ह्वै न पावई।
पञ्च दूत भूत लग अधम असाधु मन,
गहे गुरु ज्ञान साधु सङ्ग बस आवई ॥ ३१३ ॥

[9]आंधरे को सबद सुरति कर चर टेक,
बहरे चरन कर दिसटि सबद है।
गूगे टेक चर कर दृष्टि सबद सुरति लिव,
लूले टेक दृष्टि सबद श्रुति पद है।

१–चमक। २–इसी प्रकार माया तथा उस का मोह वृच्छ की छाया की भान्ति चञ्चल है। उस सुन्दर माया को भी छल लेते हैं जो श्री गुरु चरणों से लिपटे रहते हैं। ३–ढका हुआ है। ४–अपवित्र। ५–(मन) अन्तर रहते ही। ६–पैदल चलने वाला। ७–हाथी। ८–घोड़ा। ९–अन्धे को शब्द कर्ण हाथ तथा पाव का आश्रय है।

पांगुरे को टेक दृष्टि सबद सुरति कर टेक,
एक एक अङ्ग हीन [1]दीनता अच्छद है।
अन्ध गुंग सुन्न[2] पंगु लुञ्ज दुख पुञ्ज मम
[3]अन्तर कै अन्तरयामी प्रवीन सद है॥ ३१४॥

आंधरे को सबद सुरति कर चर टेक,
अन्ध गुंग सबद सुरति कर चर है।
अन्ध गुंग सुन्न कर चर अवलम्ब टेक,
अन्ध गुंग सुन्न पंगु टेक एक कर है।
अन्ध गुंग सुन्न पंगु लुञ्ज दुख पुञ्ज मम,
सर्वंग हीन दीन दुखित अधर[4] है।
अन्तर की अन्तर्यामी जानै अन्तर्गति,
कैसे निर्वाहु करै [5]सरै नरहर है॥ ३१५॥

चकई चकोर मृग मीन भृङ्ग औ पतङ्ग,
प्रीति इक अङ्गी [6]बहु रङ्गी दुखदाई है।
एक एक टेक से टरत न मरत सबै,
आदि अन्त की सु चाल चली जग आई है।
गुरु सिख सङ्गति मिलाप को प्रताप ऐसा,
लोक परलोक सुखदायक सहाई है।
गुरमति सुनि दुरमति न मिटत जांकी,
अहि[7] मिलि चन्दन ज्यों बिख न मिटाई है॥ ३१६॥

मीन कउ न सुरति[8] जल कउ न सबद ज्ञान,
दुविधा मिटाय न सकत जल मीन की।
सर सरिता अथाह प्रबल प्रवाह बसै,

१-दीनता से ढके हुए हैं। २-बहरा। ३-मेरे भीतर को प्रेरने वाले प्रवीन प्रभो! आप ही मुझे ज्ञान और सुख के देने वाले हो। ४-आश्रय रहत। ५-(अत.) नरहरि परमात्मा की शरण हूं। ६-अनेक प्रकार से दुख देने वाली है। ७-सर्प। ८-ज्ञात।

[1]ग्रसै लोह राख न सकत मति हीन की।
जल बिन तरफ तजित प्रिय प्राण मीन,
जानत न पीर नीर [2]दीनताई दीन की।
दुखदायी प्रीति की प्रतीति मीन कुल दृढ़,
[3]गुरु सिख बंस धृग प्रीति पराधीन की॥ ३१७॥

दीपक पै आवत पतङ्ग प्रीति रीति लग,
दीपकहि महा विप्रीति मिले जार है।
अलि चल आवत कमल पै स्नेह कर,
कमल सम्पट बांध प्राण परिहार है।
[4]मन बच क्रम जल मीन लिव लीन गति,
बिछुरत राखि न सकत गहि डार है।
दुखदायी प्रीति की प्रतीति कै मरै न टरै,
गुरुसिख सुखदायी प्रीति क्यों बिसार है॥ ३१८॥

[5]दीपक पतङ्ग दिव्य दृष्टि दरस हीन,
श्री गुरु दरस ध्यान त्रिभुवण गम्मिता।
[6]बासना कमल अलि भ्रमत न राख सकै,
चरण शरण गुरु अनत न रम्मिता।
मीन जल प्रेम नेम अन्त न सहाई होत,
गुरु सिख सागर है इत-उत[7] सम्मिता॥
एक एक टेक सें टरत न मरत सबै,
श्री गुरु सर्वङ्गी सङ्गी[8] महातम अम्मृता[9]॥ ३१९॥

१—बद्धिक के लौह कांटे से हीन मति (मछली) की जल रक्षा नहीं कर सकता। २—दीन मछली की दीनता को (जल) नहीं देखता। ३—गुरु सिखों की कुल में से हो कर जो पराधीनों (देवी देवताओं) से प्रेम करते हैं उन्हें धिक्कार है। ४—मन वाणी तथा शरीर से मछली पानी के प्रेम में लीन रहती है। ५—दीपक के दर्शन कर लेने पर भी पतङ्ग दिव्य-दृष्टि से हीन ही रहता है परन्तु श्री गुरु-दर्शन का ध्यान कर लेने से सिख को तीन लोकों का ज्ञान हो जाता है। ६—कमल की सुगन्धि भवरे को अन्य फूलों के पास घूमने से नहीं रोक सकती। ७—लोक-परलोक। ८—सर्वांग पूर्ण। ९—अमरता।

दीपक पतङ्ग मिलि जरत न राख सकै,
जरे मरे आगे[1] न परमपद पाए है।
मधुप कमल मिलि भ्रमत न राखि सकै,
सम्पट में मूए से न सहज[2] समाए है।
जल मिलि मीन की न दुबिधा मिटाए सकी,
बिछुर मरत हरि लोक न पठाए है।
इत उत संगम सहाई सुखदायी गुरु,
ज्ञान ध्यान प्रेम रस अमृत पियाए है॥ ३२० ॥

दीपक पतंग अलि कमल सलिल मीन,
चकई चकोर मृग रवि ससि नादि है।
प्रीति एकाङ्गी बहु रंगी नही संगी कोऊ,
सबै दुखदायी न सहायी अन्त आदि है।
जीवत न साधु संग मूए न परमगति,
[3]ज्ञान ध्यान प्रेम रस प्रीतम प्रसादि है।
मानस जनम पाय श्री गुरु दया निधान,
चरन शरन सुखफल बिसमाद है॥ ३२१ ॥

गुरुमुख पन्थ गुरु ध्यान सावधान रहै,
लहै निज-घरु[4] अरु सहज निवास जी।
[5]सबद बिवेक एक टेक निःचल मति,
मधुर बचन गुरु ज्ञान को प्रगास जी।
चरन कमल चरनामृत निधान पान,
प्रेम रस बस भए बिसम बिस्वास जी।
ज्ञान ध्यान प्रेम नेम पूर्ण प्रतीति चीति,
बन गृह समसर माया में उदास जी॥ ३२२ ॥

१—परलोक में। २—शान्ति। ३—ज्ञान और ध्यान तथा प्रेम का रस प्रियतम (सत्गुरु) की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। ४—स्व स्वरूप। ५—गुरु-शब्द के विवेक का आधार प्राप्त कर लेने से मति स्थिर हो गई, मीठे वचनों द्वारा गुरु ज्ञान को प्रगट करते हैं।

मारिबे को त्रास देख चोर न तजत चोरी,
बटवारा[1] बटवारी[2] संग ह्वै तकत है।
बेस्वा-रति व्यथा भये मन में न शंका मानै,
जुआरी न सर्वस्व हारे से थकत है।
अमली न अमल तजत ज्यों धिकार कीए,
दोष दुःख लोक वेद सुनत छकत[3] है।
अधम असाधु संग छाडत न अंगीकार,
गुरुसिख साधु संग छाड क्यों सकत है। ३२३ ॥

दम्मक[4] दै दोख दुख अपजस लै असाधु,
लोक परलोक मुख स्यामता लगावही।
चोर जार औ जूआर मदपानी दुकृत सें,
[5]कलह कलेस मेस दुबिधा कउ धावही।
मति पति मान हानि कानि[6] में कनोडी[7] सभा
नाक कान खण्ड डण्ड होत न लजावही,
सर्ब निधान दान दायक सङ्गति साधु,
गुरु सिख साधू जन क्यों न चल आवही ॥ ३२४ ॥

जैसे तो [8]अकस्मात बादर उदोत होत,
गगन घटा घमण्ड[9] करत विथार जी।
ताही ते सबद् धुनि घन गर्जित अति,
चञ्चल चरित्र दामिनी चमत्कार जी।
बरखा अमृत जल [10]मुकता कपूर तांते,
औपधि उपार्जना[11] अनिक प्रकार जी।
दिव्य देह साधु जन्म मरण रहत जग,
प्रगटित करिबे को परउपकार जी ॥ ३२५ ॥

१–डाकू। २–यात्रु। ३–खाता है। ४–धन। ५–कलह कलेश रूप द्वैत भाव को ही भागता है। ६–पूर्व काण के कारण सभा में। ७–आधीन। ८–अचानक ही बादल प्रगट हो जाता है। ९–उमड। १०–सीप में मोती तथा केले में कपूर। ११–उत्पन्न होती।

सफल वृत्त फल देत ज्यों पापाण मारे,
सिर करवत्त सहि [1]गहि पारि पारि है।
सागर में काढ मुख फोरियत सीप को ज्यों,
देत मुकताहल अवज्ञा न बीचार है॥
जैसे खनवारा खानि खनित हनित घन[2],
माणक हीरा अमोल पर उपकार है।
ऊख में प्यूख ज्यों प्रगास होत कोल्हू पचै,
अवगुण किए गुण साधुन के द्वार है॥ ३२६॥

साधु सङ्ग दरसन को है नित्तनेम जांको,
[3]सोई दरसनी समदरस ध्यानी है।
सबद बिबेक एक टेक जांकै मन बसै,
माने गुरु ज्ञान सोई ब्रह्म ज्ञानी है॥
[4]दसटि दरस अरु सबद सुरति मिल,
प्रेमी प्रिय प्रेम उनमन उनमानी है।
सहज समाधि साधु सङ्ग एक रंग जोई,
सोई गुरुमुख निर्मल निर्बाणी है॥ ३२७॥

[5]दरस ध्यान ध्यानी सबद ज्ञान ज्ञानी,
चरन सरनि दृढ़ माया में उदासी है।
हउमैं त्याग त्यागी बिस्माद कै बैरागी[6] भये,
त्रिगुण अतीत चीत अनभै[7] अभ्यासी है॥
दुबिधा अपरस औ साध[8] इन्द्री निग्रह[9] कै,
आतम पूजा बिबेकी[10] सुन्न में सन्यासी है।

१-(मनुष्य को) ले कर नदी से पार कर देता है। २-हथौड़ा। ३-वही मनुष्य दर्शनीय (वाहिगुरु) का समदर्शी ध्यान-धारी है। ४-नेत्र गुरु-दर्शन से तथा कान गुरु शब्द से मिले, प्रेमी प्रिय के प्रेम में तुरिया पद का विचार करने वाले हो गये। ५-(सत्गुरुओं के) दर्शन पर ध्यान जमाने वाले (गुरु) शब्द के ज्ञान के ज्ञानी। ६-प्रेमी। ७-अनुभव। ८-साधना द्वारा। ९-वश में। १०-अफुरावस्था में रहने वाले सन्यासी हैं।

सहज सुभाइ कर जीवन मुक्त भये,
सेवा सर्बात्म कै ब्रह्म बिस्वासी है ॥ ३२८ ॥

जैसे जल अन्तर जुगन्तर[१] बसै पाषाण,
भिदै न हृदय कठोर बूडै बज्र भार कै।
अठसठि तीर्थ मज्जन करै तोंबरी तऊ,
मिटत न करुवाई [२]भोए वार पार कै।
अहिनिसि अहि लपटानो रहै चन्दनहि,
तजित न बिषु तऊ [३]हौमैं अहंकार कै।
कपट सनेह देह निःफल भये जगत में,
सन्तन को है दोखी दुबिधा बिकार कै ॥ ३२९ ॥

जैसे निर्मल दर्पण में न चित्र कछु
सकल चरित्र चित्र देखत दिखावई।
जैसे निर्मल जल वरण अतीत रीति,
सकल वरण मिलि वरण बनावई ॥
जैसे तौ बसुन्धरा स्वाद बासना रहित,
औषधि अनेक रस गन्ध उपजावई।
तैसे गुरुदेव सेव अलख अभेवगति,
जैसो जैसो भा तैसीउ कामणा पुजावई ॥ ३३० ॥

सुख दुख हानि मृत पूर्व लिखत लेख,
जंत्र[४] कै न बस कछु जंत्री[५] जगदीस है।
भोगत बिवश्यमेव कर्म कृत्य गति,
[६]जसि कर्त्तो सिलेप कारण को ईस है ॥
[७]कर्त्ता प्रधान किधौ कर्म किधौ है जीउ,

१-युगों पर्यन्त। २-(वार) पानी में रगड़ कर (भोइ) मिलने पर भी। ३-(दीर्घ आयु की) अहता के अहङ्कार के कारण। ४-बाजा। ५-बजाने वाला। ६-(मनुष्य) जैसे कम करता है उन में लिप्त करने वाला कारण स्वरूप ईश्वर है। ७-किसी मत में माया को कर्त्ता माना गया है कहीं जीव और कहीं कर्म को। कहीं (तत्वों की) न्यूनाधिक हालत को (कर्त्ता) माना गया है परन्तु इन में कौन सा मत (बिस्वाबीस) विश्वास योग्य है।

घाट बाढ कौन कौन मति बिस्वाबीस है।
अस्तुति निन्दा कहां व्याप्त हर्ष शोक,
होनहार कहो कह गारि औ असीस है ३३१ ॥

मानसर पर जौ बैठाईऐ ले जाय बग,
मुक्ता अमोल तजि मीन बीन खात है।
अस्थन पान करिवे को जौ लगाईऐ जोंक,
पियत न पय[1] लै लोहू अचये[2] अघात है।
परम सुगन्धि पर माखी न रहत राखी,
महा दुर्गन्धि पर वेग चल जात है॥
जैसे गज मज्जन कै डारत है छारु सिर,
सन्त कै दोखी सन्त संग न सुहाति है॥ ३३२ ॥

गुरुमति सत्य[3] एक टेक दुतिया[4] नास्ति,
[5]सिव न सकति गति अनभय अभ्यासी है।
त्रिगुण अतीत जीत हार न हर्ष शोक,
संयोग वियोग मेटि [6]सहज निवासी है॥
चतुर वर्ण एक वर्ण ह्वै साधु सङ्ग,
पञ्च प्रपञ्च[7] त्याग बिसम[8] बिस्वासी है।
[9]खट दरसन परै पार ह्वै सप्त सर,
नवद्वार उलंघ दशमई उदासी है॥ ३३३ ॥

नदी नाव को संयोग सुजन कुटुम्ब लोग,
होयगो जो दियो सोई मिलै आगै जाय कै।
असन बसन धन सङ्ग न चलत चले,
अर्पे दीजै धर्मशाला पहुँचाय कै।

१-दूध। २-पी कर। ३-निश्चय। ४-द्वैत। ५-निर्भय का अभ्यास करने से शिवपार्वती (के दर्शन की) प्राप्ति नहीं चाहते। ६-सहज (शान्ति) अवस्था में निवास करते हैं। ७-कामादिक। ८-आश्चर्यस्वरूप। ९-छय (न्याय मीमांसा आदि) दर्शनों से परे (पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन तथा बुद्धि) सात सरोवरों के विषयों से पार हो कर कर्ण, नेत्र आदि नव द्वारों के अभ्यास को भी पीछे छोड़ कर दशम द्वार में रहने वाले उदासी हैं।

आठों जाम[1] साठों घड़ी नि:फल माया मोह,
सफल पलक साधु सङ्गति समाय कै ।
मल मूत्र धारी औ बिकारी निरङ्कारी होत,
सबद सुरति[2] साधु संग लिव[3] लाय कै ॥ ३३४ ॥

हौमै अभिमान अस्थान तज बांझ बन[4]
चरण कमल गुरु सम्पट[5] समाए हैं।
अति ही अनूप रूप [6]हेरत हिराने दग,
[7]अनहद् गुञ्जित श्रवण हू सियराए हैं ॥
रसना बिसम अति [8]मधु मकरन्द रस,
नासिका चकित ही सुबास महकाए हैं।
कोमलता शीतलता [9]पंग सर्वंग भये,
मन मधुकर पुन अनत ना धाए हैं ॥ ३३५ ॥

[10]बासना को बासु दूत संगति बिनास काल,
चरण कमल गुरु एक टेक पाई है।
भयजल भयानक लहर न व्याप सकै,
निज घर सम्पट कै दुबिधा मिटाई है।
श्रान ज्ञान ध्यान सिमरण बिसिमरण कै,
प्रेम रस बस [11]आसा मनसा न पाई है।
दुतिया नासति एक टेक निःचल मति,
सहज समाधि उनमनि लिवलाई है ॥ ३३६ ॥

चरण कमल रज मस्तकि लेपण कै,
[12]भरम करम लेख स्यामता मिटाई है।
चरण कमल चरणामृत मलीन मन,

१-पहर। २-ज्ञात। ३-प्रीति। ४-बांस का जङ्गल। ५-सिमटा हुआ कमल। ६-देख कर आंखें चकित हुईं। ७-अनहद् शब्द की गुञ्जार सुन कर कान शीतल हो गए। ८-(गुरु चरण कमलों की) धूलि के मधुर रस को पा कर। ९-समस्त अङ्ग (पङ्ग) शुद्ध हो गए। १०-वासनाओं की गन्ध। ११-सांसारिक आशाएं तथा मन के सङ्कल्प-विकल्प। १२-संसार में भ्रमाणे वाले कर्म।

कर निर्मल दूत[1] दुविधा[2] मिटाई है।
चरण कमल सुख सम्पट सहज घर,
निःचल मति एक टेक ठहराई है।
चरण कमल गुरु महिमा अगाध बोध,
सर्व निधान औ सकल फलदाई है॥ ३३७॥

चरण कमल रज मज्जन कै दिव्य देहि,
महा मल मूत्र धारी निरङ्कारी कीने है।
चरण कमल चरणामृत निधान पान,
[3]त्रिगुण अतीत चीत आपा आप चीने है।
चरण कमल निज आसन सिंहासन कै,
त्रिभुवण औ त्रिकाल गम्यता प्रबीने है।
चरण कमल रस गन्ध रूप शीतलता,
[4]दुतिया नासति एक टेक[5] लिवलीने है॥ ३३८॥

चरण कमल रज मज्जन प्रताप अति,
पूर्व तीर्थ कोटि चरण शरण है।
चरण कमल रज मज्जन प्रताप अति,
देवी देव सेवक ह्वै पूजत चरण है।
चरण कमल रज मज्जन प्रताप अति,
[6]कारण अधीन कीन कारण करण है।
चरण कमल रज मज्जन प्रताप अति,
पतित पुनीत भये तारण तरण है॥ ३३९॥

मानसर हंस साधु सङ्गति परम हंस,
धर्म धुजा[7] धर्मशाला चल आवही।

१–कामादिक। २–द्वैत। ३–तीन गुणों से रहत हो कर सर्व ओर अपना स्वरूप ही देखते हैं। ४–द्वैत का नाश करके एक। ५–आधार। ६–पहिले तो हम कारणों के आधीन थे किन्तु अब स्वयं कारणों के कर्ता हुए हैं। ७–(ध्वजा) झण्डा।

[1]उत मुक्ताहल अहार दुतिया नासति,
इत गुरु सबद सुरति लिव लावही।
उत छीर नीर निर्वारो के बखानियत,
इत गुरुमति दुर्मति समुझावही।
[2]उत बग हंस वंस दुबिधा न मेटि सकै,
इत काग पाग सम रूप के मिलावही॥ ३४०॥

गुरुसिख संगति मिलाप को प्रताप छिन,
सिव सनकादि ब्रह्मादिक न पावही।
सिमृति पुराण बेद शास्त्र औ नाद बाद,
राग रागिनी हू नेति नेति कर गावही।
देवी देव सर्व निधान औ सकल फल,
स्वर्ग समूह सुख ध्यान धर ध्यावही।
[3]पूर्ण ब्रह्म सत्गुरु सावधान जान,
गुरु सिख सबद सुरति लिव लावही॥ ३४१॥

रचना चरित्र चित्र बिसम विचित्रपन,
[4]काहू सों न कोऊ कीना एक ही अनेक है।
[5]निपट कपट घटि घटि नट वट नट,
गुप्त प्रगट अट पट जावदेक है।
[6]दसटि सी दसटि न दर्सन सों दरसु,
बचन सों बचन न सुरति समेक है।

१–उधर (हंस) मोतियों का आहार करते हैं (दुतिया) दूसरी कोई वस्तु नहीं खाते और इधर साधु पुरुष गुरु शब्द की ज्ञात में वृति लगाते हैं। २–उधर हंसों की वंश वाले, बगुलों की दुबिधा नहीं मिटा सकते इधर साधु, काग के समान विषयी पुरुषों को (अपने रङ्ग में) रङ्ग कर समान रूप से (साध सङ्गत में) मिला लेते हैं। ३–सिख सत्गुरु को पूर्ण ब्रह्म में सावधान समझ कर शबद में प्रीति लगाते हैं। ४–किसी एक जैसा कोई भी दूसरा नहीं बनाया। ५–अतिशय करके (वाहिगुरु) यद्यपि एक है घट घट में नट के नट-वट (जादूगर के गोले की तरह) कपट रूप कभी गुप्त और कभी प्रगट होता है। ६–एक की दृष्टि, दर्शन अथवा वचन किसी दूसरे जैसे नहीं हैं (परन्तु वह) एक सब में समाया हुआ है।

[1]रूप रेख लेख भेख नाद बाद नाना बिधि
अगम अगाध बोध ब्रह्म बिबेक है॥ ३४२॥

[2]सत्यरूप सत्यगुरु पूर्ण ब्रह्म ध्यान,
सत्यनामु सत्यगुरु ते पार ब्रह्म है।
[3]सत्यगुरु सबद अनाहद् ब्रह्म ज्ञान,
गुरमुख पन्थ सत्य गम्यता अगम्य है।
[4]गुरु सिख साधु संग ब्रह्मस्थान सत्य,
कीर्त्तन समय हुइ सावधान सम है।
[5]गुरमुख भावनी भगति भाउ चाउ सत्य,
सहज सुभाउ गुरमुखि नमो नम है॥ ३४३॥

निरङ्कार निराधार[6] निराहार निर्बिकार,
अजोनी अकाल अपरम्पर[7] अभेव है।
निर्मोह निर्वैर निर्लेप निर्दोष,
निर्भय निरञ्जन [8]अत: पर अतेव है,
अबिगति[9] अगम अगोचर [10]अगाध बोध,
अच्युत अलख अति अछल अछेव[11] है।
बिसमै बिसम असचर्जै असचर्जमय,
अदभुत परमदभुत गुरुदेव है॥ ३४४॥

कात्तिक मास रुति शरद् पूर्णमासी,
आठ जाम[12] साठ घरी आज तेरी बारी है।

१–जिस के रूप रेखा आदि नाना प्रकार के हैं उस ब्रह्म का बिवेक तथा बोध अगाध और अगम्य है। २–सत्य स्वरूप व्यापक ब्रह्म सत्गुरु में ध्यान लगाया तथा सत्गुरु द्वारा सत्य नाम का स्मरण किया जिस से निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति हुई। ३–सत्गुरु के शब्द को ही अनहद् शब्द तथा ब्रह्म ज्ञान देने वाला मानते हैं। ४–ब्रह्म का स्थान जो साधु सङ्गति है (उस में) गुरु सिख साम्यावस्था में सावधान हो जाते हैं। ५–गुरमुखों में श्रद्धा भक्ति-भाव तथा उत्साह सत्य है। ६–जिस का और कोई आधार नहीं। ७–संसार से परे। ८–इस लिए (ससार से) अत्यन्त परे है। ९–अव्यक्त-अप्रगट। १०–गूढ़ ज्ञान वाला। ११–निश्चय पूर्वक अच्छा है। १२–पहर।

ओत-पोत[1] जोत होत कारज वांछित सिद्धि,
आनन्द बिनोद सुख सहज बिहात है।
लालच लुभाय रस लुभित नाना पतङ्ग,
बुझित ही अन्धकार भये अकुलात है॥
तैसे विद्यमान[2] जानिए न महमा महत्व,
अन्तरिच्छ भये पाछे लोक पछुतात है॥ ३५० ॥

जैसे दीप दिपत महात्मै न जानै कोऊ,
बूझत ही अन्धकार भटकत रात है।
जैसे द्रुम आंगन अच्छित महमा न जानै,
कटत ही छांहि बैठिबे को बिललात है।
जैसे राजनीति विषय चैन होय चतुर कुण्ट,
[3]छत्र ढाला चाल भये जत्र कत्र जात है।
तैसे गुरुसिख साधु सङ्गम जुगति जग,
अन्तरिच्छ[4] भये पाछे लोग पछुतात है॥ ३५१ ॥

[5]जानै जौ अनूप रूप द्रगन कै देखियत,
लोचन अच्छित अन्धकारे नाहि पेखई।
जानै जौ सबद रस रसना बखानियत,
जिह्वा अच्छित कत गुंग न सरेखई[6]।
जौपै जानै राग नाद सुनियत श्रवण कैं,
[7]श्रवण सहित क्यों बहरो बिसेखई।
नयन जिह्वा श्रवण को न कछुऐ बसाय[8]
सबद सुरति सो [9]अलेख लेख लेखई॥ ३५२ ॥

१-सर्व ओर। २—संसार में प्रत्यक्ष। ३—राज्य मर्य्यादा के हट ाने के उपरान्त। ४—आँखों से ओझल। ५-यदि कोई यह जानता है कि ेवल आंखों से ही सुन्दर रूप दिखाई देता है तो नेत्रों के होते हुए वह अन्धेरे में क्यों नहीं देख पाता। ६-वचन कहता। ७-कानों के रहते भी बहरा क्यों विशेष रूप से नहीं सुन पाता। ८-वश। ९-अलेख (परमात्मा) के लिखे लेख के अनुसार ही होता है।

जननी [1]जतन कर जुगवै जठर[2] राखै,
तांते पिण्ड पूर्ण ह्वै सुत जनमत है।
बहुरो [3]अखाद्य खाद्य सञ्जम सहित रहै,
ताही ते पय पियत [4]आरोगपन पत है।
मल मूत्र धारके बिचार न बिचारै चित,
करै प्रतिपाल [5]बाल तऊ तन गत है।
तैसे अर्भक[6] रूप सिख है संसार मध्य,
श्री गुरु दयाल की दया कै सनगत[7] है॥ ३५३॥

जैसे तो जननी खान पान कौ सञ्जम करै,
तांते सुत रहै निर्विघ्न आरोग जी।
जैसे राजनीति रीति [8]चक्रवै चैतन्य रूप,
तांतै निःचिन्त निर्भय बसत लोग जी।
जैसे करिया[9] समुद्र बोहिथ से सावधान,
तांते पार पहुँचत पथिक असोग[10] जी।
[11]तैसे गुरु पूर्ण ब्रह्म ज्ञान ध्यान लिव,
तांते निर्दोख सिख निज पद जोग जी॥ ३५४॥

जननी सुतहि जौ धिक्कार मार प्यार करै,
प्यार झिरकार देख सकत न आन[12] को।
जननी को प्यार औ धिक्कार उपकार हेत,
आन को धिक्कार प्यार है विकार प्रान को।
जैसे जल अगनि में परै डूब मरै, जरै

१-(यत्नों में) जुड़ कर। २-गर्भ। ३-अखाद्य (अपथ्य वस्तुओं) के खाने से संयम में रहती है। ४-आरोग्य (स्वस्थ) रह कर विकसित होता है। ५-तब बालक पूर्ण शरीर को पहुंचता है। ६-बालक। ७-संयुक्त। ८-सम्राट सजग रहे तो प्रजा निश्चिन्त और निर्भय रहती है। ९-मल्लाह। १०-निश्चिन्त। ११-उसी प्रकार में पूर्ण सत्गुरु दृढ़ता पूर्वक पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान और ध्यान में सिख को लिव लगाए दे तो सिख निर्दोष स्व स्वरूप को प्राप्त होने के योग्य हो जाता है। १२-अन्य (दूसरे)।

[1]तैसे कृपा कोप आन वनिता अज्ञान को।
[2]तैसे गुरु सिखन को जुगवत जतन है,
दुबिधा न व्यापै प्रेम परम निधान को॥ ३५५॥

जैसे कर गहत सर्प सुत पेखि माता,
कहै न पुकार [3]फुसलाय उर मण्ड है।
[4]जैसे वैद्य रोगी प्रति कहै न बिथार वृथा,
संयम कै औषधि खवाय रोग डण्ड है।
जैसे भूल चूक चटिया[5] की न विचारै पांधा,
कह कह शिक्षा [6]मूर्खत्व मति खण्ड है।
तैसे पेख औगुण कहै न सत्गुरु काहूँ,
पूर्ण विबेक समझावत प्रचण्ड है॥ ३५६॥

जैसे मिष्टान्न पान पोष तोष बालकहि,
अस्थन पान बान जननि मिटावई।
मिसरी मिलाए जैसे औषधि खवावै वैद्य,
मीठे कर खात रोगी रोगहि घटावई॥
जैसे जल सींच सींच धानहि कृसान पाले,
भये परिपक्क काट घर में ले आवई।
तैसे गुरु कामना पुजाय निःकाम कर,
[7]निज पद नाम धाम विषय *पहुचावई॥ ३५७॥

ज्ञान ध्यान प्रान सुत राखत जननि प्रति,
अवगुण गुण पेखि माता चित् में न चेत है।
[8]जैसे भर्तार मार' नारि उरहार माने,

१-दूसरी स्त्री का क्रोध और उस की कृपा वैसे ही अज्ञान रूप है। २-इसी प्रकार गुरू, शिष्यों को परम निधान के प्रेम में यत्न से जुटा देता है अत उन के हृदय में द्वैत भाव नहीं रहता। ३-पलोस कर हृदय से लगा लेती है। ४-जिस प्रकार वैद्य रोगी को विस्थार पूर्वक उस की व्यथा नहीं बताता। ५-शिक्षार्थी। ६-मूर्खता की बुद्धि को नाश करता है। ७-नाम जप द्वारा स्व स्वरूप के घर में पहुँचा देते हैं। ८-जैसे स्त्री पती को गले का भारी हार (आभूषण) मान लेती है तो उस का लाल (पति) भी लालना की प्रत्येक बात और मान को मान लेता है। *पा: सिखै।

तांते लाल ललना को मान मन लेत है।
जैसे चटिया सभीति संकुचित पांधा पेखि,
तांते भूल चूक पांधा छाडत न हेत है।
मन वच कर्म गुरु चरण सरणि सिख,
तांते सतगुरु जमदूतहि न देत है॥ ३५८॥

कोटिन कोटानि [1]काम-कटक ह्वै कामार्थी,
कोटिन कोटान क्रोध क्रोधि वन्त आहि जी।
कोटिन कोटान लोभ लोभी ह्वै लालच करे,
कोटिन कोटान मोह मोहि अवगाहि[2] जी।
कोटिन कोटान अहंकार अहंकारी होय,
रूप-रिपु[3] संपै सुख [4]वल-छल चाहि जी।
सतगुरु सिक्खन के रोमहि न चांप[5] सके,
[6]जामे गुरु ज्ञान ध्यान शस्त्र सनाहि जी॥ ३५९॥

जैसे तौ सुमेरु ऊच अचल अगम्य अति,
पावक पवन जल व्याप न सकत है।
पावक प्रगास तास वानी[7] चौगुणी चढ़त,
पउण गउण धूरि दूरि ह्वै चमकत है।
सङ्गम सलिल मल धोइ निर्मल करै,
[8]हरै दुख, देख सुनि सुजस बकत है।
तैसे गुरु सिख जोगी त्रिगुण अतीत चीत,
श्री गुरु सबद रस अमृत छकत है॥ ३६०॥

जैसे शुकदेव के जन्म समय जांको जांको,
जनम भयो, ते सकल सिद्ध जानिऐ।

१-काम और उस की सेना कामी हो कर सामने आए। २-मोहने की बातों पर विचार करते हैं। ३-रूप के कारण शत्रु (स्त्रि)। ४-ठगने की इच्छा। ५-दवा। ६-जिस के पास ज्ञान का शस्त्र और ध्यान की सञ्जोअ है। ७-रङ्ग। ८-जो देखने से दुखों का नाश करता है सुनने पर भी हर एक उस का यश कहता है।

स्वांति बूंद जोई जोई परत समुद्र विपय,
सीप कै संजोग मुकताहल बखानिऐ,
बावन सुगन्ध सनबन्ध पउरण गउरण करै,
लागै जाही जाही द्रुम चन्दन समानिऐ।
गुरु सिख सङ्ग जो जो जागत अमृत जोग,
सबद प्रसादि मोख पद परवानिऐ[१] ॥ ३६१ ॥

तीर्थ यात्रा समय न एक से आवत सबै,
काहू साधू पाछै पाप सबन के जात है।
जैसे नृप सेना समसर न सकल होत,
एक एक पाछे कई कोटि परे खात है।
जैसे तौ समुद्र जल बिमल बोहिथ बसै,
एक एक पै अनेक पार पहुंचात है।
तैसे गुरु सिख साखा अनिक संसार द्वार,
सन्मुख ओट गहे कोटि व्यासात[२] है॥ ३६२ ॥

भांजन कै जैसे कोऊ दीपकैं दुराय राखै,
मन्दिर में अच्छित[३] ही दूसरो न जानई।
जउपै रखवईया पुनः प्रगट प्रगास करै,
हरै तम तिमिर उदोत[४] जोति ठानई।
सकल समग्री गृह पेखिऐ प्रतक्ख रूप,
दीपक दीपैया[५] तत्त्वण पहचानई।
[६]तैसे अवघट घट गुप्त जोति सरूप,
गुरु उपदेस उनमानी उनमानई॥ ३६३ ॥

१-प्रमाणीक। २—वरोसाया जाता अर्थात् सफल होता है। ३-मौजूद होते हुए भी। ४-प्रगट। ५-जलाने वाला। ६-विषम रास्तों वाले शरीर में ज्योतिस्वरूप गुप्त रहता है किन्तु जो विचारवान विचार करते हैं गुरु उपदेश द्वारा (ज्योति स्वरूप) प्रगट हो जाते हैं।

जैसे बृथावन्त जन्तु औखधि हिताय रिदय,
[1]बृथा बल बिमुख होय सहज निवास है।
जैसे आन धातु में तनिक ही कलङ्क[2] डारे,
अनिक बरण मेटि कनिक प्रगास है।
जैसे कोटि भार कर कासट एकत्रता में,
रञ्चक ही आंच देत भस्म उदास है।
(तैसे) गुरु उपदेश उर अन्तर प्रवेस भये,
जनम मरण दुख दोखन बिनास है॥ ३६४॥

जैसे अनी बाण की रहत टूट देहि विषय,
चुम्बक दिखाय तत्काल निकसत है।
जैसे जोंक तोबरी[3] लगाईयत रोगी तन,
ऐंच लेत रुधिर [4]बृथा स्रम खसत है।
जैसे युवतिन प्रति मर्दन करे दायी,
[5]गर्भ स्तम्बन ह्वै पीड़ा ग्रसत है।
तैसो पांचों दूत भूत बिभ्रम[6] ह्वै भाग जात,
[7]सतगुरु मन्त जन्तु रसना रसत है॥ ३६५॥

जैसे तो सफल बन विषय बिरखा बिविध,
जाको फल मीठो खग तांपै चलि जात है।
जैसे पर्वत विषय देखिऐ पाषाण बहु,
जामै तो हीरा खोजी खोज खनवारा ललचात है।
जैसे तो जलधि मध्य बसत अनन्त जन्तु,
मुक्ता अमोल जामैं हंस खोज खात है।
तैसे गुरुचरण शरण हैं असंख्य सिख,
जामें गुरु ज्ञान ताहि लोक लपटात है॥ ३६६॥

१-पीड़ा के बल से विमुख (आरोग्य) हो कर शान्ति में निवास करता है। २-औषधि, रसायनी बूटी। ३-सिङ्गी व तूँबी। ४-पीड़ा व श्रम दूर कर देती है। ५-गर्भ अपनी जगह पर ठहर जाता है। ६-अति भ्रमण करते हुए। ७-सतगुरु के मंत्र का कोई मनुष्य रसना द्वारा जाप करे।

जैसे ससि[1] जोति होत पूर्ण प्रगास तास,
चितवत चक्रित चकोर ध्यान धारही।
जैसे अन्धकार विषय दीप ही दिपत देख,
अनिक पतङ्ग ओत पोत ह्वै गुजारही।
जैसे मिस्टान[2] पान[3] जान काज भांजन[4] में,
राखत ही चीटी कोटि लोभ लुभित अपारही।
तैसे परम निधान गुरु ज्ञान प्रमाण जामै,
सकल संसार तास चरण जुहार[5] ही॥ ३६७॥

जेते फूल फूले तेते फल नाहि लागै द्रुम,
लागत जितेक परिपक्व न सकल है।
जेते सुत जनमत जीयत रहै न तेते,
जीयत है जेते तेते [6]कुल न कमल है।
दल[7] मिल जात जेते सुभट[8] न होय तेते,
जेतक सुभट जूझ मरत न थल है।
आरसी[9] जुगत गुरु सिख सब ही कहावैं,
पावक प्रगास भये बिरले अचल[10] है॥ ३६८॥

जैसे अहि[11] अगनि को बालक बिलोक[12] धावै,
गहि गहि[13] राखै माता सुत बिललात[14] है।
बृथावन्त[15] जन्तु जैसे चाहत [16]अखाद्य खाद्य,
[17]जतन के बैद्य जुगवत न सुहात है,
जैसे पन्थ अपन्थ बिबेकहि[18] न बुझै अन्ध,
कर[19] गहे[20] अटपटी चाल चल्यो जात है।

१—चन्द्रमा। २—मीठा। ३—पाने के लिये। ४—बर्तन। ५—नमस्कार। ६—कुल के कवल नहीं होते अर्थात् कुल को शोभित करने वाले नहीं होते। ७—सेना। ८—बहादुर। ९—शीशा। १०—स्थिर। ११—सर्प। १२—देख कर। १३—पकड़ कर। १४—रोता है। १५—बीमार। १६—ना खाने योग वस्तु। १७—वैद्य उसे रोकने के यत्न में जुटा रहता है परन्तु रोगी को यह भाता नहीं। १८—ज्ञान को। १९—हाथ। २०—पकड़े।

[1]तैसे कामना करत कनिक अउ कामिणी की,
राखे निर्लेप गुरु सिख अकुलात है ॥ ३६६ ॥

जैसे माता पिता अनेक उपजात सुत,
पून्जी दै-दै बणज ब्योहारहि लावही।
किरत बिरति[2] करि कोऊ मूल[3] खोवै रोवै,
कोऊ लाभ लभत कै चौगुणो बढावही ॥
जैसो जैसो जोई कुला धर्म[4] है कर्म करै,
तैसो तैसो जस अपजसु प्रगटावही।
[5]तैसे सत्गुरु समदरसी पुहप गति,
सिख साखा बिबिध बिरख फल पावही ॥ ३७० ॥

जैसे नरपति[6] बहु बनिता[7] विवाह करै,
जाके जनमत[8] सुत[9] वाही गृह राज है।
जैसे उदधि[10] मध्य चहूं ओर ते बोहिथ[11] चलै,
जोई पार पहूंचे पूरन सरब काज है।
जैसे खानि[12] खनित[13] अनन्त खनवारा खोजी,
हीरा हाथ चढ़ै जाके ताके बाज[14] बाज[15] है।
तैसे गुरु सिख नवतन[16] औ पूरातन हैं,
जिन पर [17]कटाक्ष कृपा कै छवि[18] छाज[19] है ॥ ३७१ ॥

बूंद बूंद प्रणारे बहि चलै जलु,
बहुर उमग बहै बीथी[20] बीथी जाय कै।

१–इसी प्रकार सिख, सवर्ण और स्त्री की कामना करते हैं और उन की प्राप्ति [में] अकुलाते हैं परन्तु गुरु देव उन को निर्लेप रखते हैं। २–उपजीवका। [३]–पूञ्जी। ४–कुल का धर्म, कुलमर्यादा। ५–समदर्शी सद्‌गुरु वृक्ष की भान्ति हैं [जिस]में फूल (धर्म) शाखायें (निश्काम कर्म) फल (ज्ञान) आदि अनेक प्रकार के पदार्थ हैं [६]–राजा। ७–स्त्रियें। ८–पैदा होता है। ९–पुत्र। १०–समुद्र। [११]–जल-यान, जहाज। १२–कानां। १३–खोदता है। १४–बाजे। [१५]–बजते हैं। १६–नवीन। १७–कृपा दृष्टि। १८–शोभा। १९–फबती है। [२०]–गली।

तांते नोरा[1] नोरा भरि चलत चतुर कुंट,
सरिता[2] सरिता प्रति मिलत है जाय कै।
सरिता सकल जल प्रबल प्रवाह चल,
संगम समुद्र होत समत समाय कै।
जैसी ऐ समाई जांमै महिमा बडाई तैसी,
ओछो औ गम्भीर धार बूझिऐ बुलाय कै॥ ३७२ ॥

जैसे हीरा हाथ में सो तनिक[3] दिखाई देत,
मोल किये ते [4]दमकन* भरत भण्डार जी।
जैसे बर[5] बांधे हुण्डी लागत न भार कछू,
आगे जाय पाईयत लछमी अपार जी।
जैसे बट[6] बीज अति सूखम सरूप होत,
बोए सै बिविध करै बिरख बिथार जी।
तैसे गुरु बचन सचन[7] गुरु सिक्खन मै,
[8]जानिए महातम गए ही हरिद्वार जी॥ ३७३ ॥

जैसे मद[9] पीयत न जानिऐ मर्म[10] तांको,
पाछै मतवारो होय [11]छकै छक जात है।
जैसे नारि भेटत भतार को न जानै भेद,
उदत[12] अधान[13] आन चिह्न दिखात है।
कर पर माणिक न लागत है भारी तोल,
मोल संख्या दामन को [14]हेरत हेरात है।
तैसे गुरु अमृत बचन सुन मानहि सिख,
जानै महिमा जो, सुख सागर समात है॥ ३७४ ॥

१–नाले। २–नदी। ३–छोटा सा। ४–रुपय, दमड़े। ५–छोर, पल्ले। ६—बहुड़ का वृच्छ। ७–सोचने से अथवा सत्य जाने से। ८–हरि के दर पर जाने से ही महात्म जाना जाता है। ९–शराव। १०–भेद। ११–प्रसन्न अथवा तृप्त होना। १२–प्रक्ट। १३–गर्भ। १४–देखते ही आश्चर्य हो जाते हैं। *पा–दामन

जैसे मच्छ कच्छ बग हंस मुक्ता पाषाण,[1]
अमृत बिषै प्रगास उदधि से जानिऐ।
जैसे तारे तारी औ आरसी[2] सनाह[3] शस्त्र,
एक से अनेक लोह रचना बखानिऐ॥
भांजन बिबिध जैसे होत एक मृतका से,
खीर[4] नीर व्यञ्जनादि[5] औषधि समानिऐ।
तैसे दर्शन बहु वर्णाश्रम धर्म,
सकल गृहस्थ की शाखा उनमानिए॥३७५॥

जैसे सर सरिता सकल में समुन्द्र बडो,
मेरु[6] सुमेरु बडो जगत बखान है।
तरुवर[7] विषय जैसे चन्दन बिरख बडो,
धात में कनिक[8] अति उत्तम कै मान है॥
पञ्छन में हंस मृगराजन[9] में शार्दूल[10],
रागिन मे श्री राग पारस पाषान[11] है।
ज्ञानन में ज्ञान[12] अरु ध्यानन में ध्यान गुरु,
सकल धर्म में गृहस्थ प्रधान है॥३७६॥

तीर्थ मज्जन करिबै को है गुणाउ एहु,
निर्मल तन त्रिपा तप्त निवारिऐ।
[13]दर्पण दीप कर गहे का गुणाउ एहु,
पेखत चिन्ह मग सुरत संभारिऐ॥
भेटत भतार नारि को गुणाउ एहु,
स्वांति बूंद सीप गति लै गर्भ प्रतिपारिऐ।
तैसे गुरु चरण सरण को गुणाउ एहु,
गुरु उपदेश कर हार उर धारिऐ॥३७७॥

१–पत्थर। २–तलवार। ३–सञ्जो। ४–दूध। ५–सलूने आदि। ६–पर्वत, पहाड़। ७–वृक्ष। ८–सवर्ण। ६–जानवर, बड़े मृगों में। १०–शेर। ११–पत्थर। १२–गुरू-ज्ञान। १३–शीशा और दीपक को हाथ में लेने का यह गुण होता है कि अपने चिन्ह (मुखाकृति) और रास्ते को संभाला जाता है।

जैसे माता पिता न विचारत विकार[1] सुत,
पोषत[2] सु प्रेम [3]बिहसत बिहसाय कै।
जैसे बृथावन्त जन्त बैदहि बृत्तान्त कहे,
परख परीखा उपचारित[4] सहाय* कै॥
चटिया[5] अनेक जैसे एक चटसार[6] बिषय,
विद्यावन्त करे पांधा प्रीति से पढाय कै।
तैसे गुरु सिक्खन के औगुण अज्ञान मेटै,
ब्रह्म विवेक से सहज समझाय कैं॥३७८॥

जैसे तो करत सुत अनिक अज्ञानपन,
औगुण जननि[7] नाहि तऊ उरि[8] धारयो है।
जैसे तौ सरण [9]सूर पूर्ण प्रतिज्ञा राखे,
अनिक अवज्ञा कीए मार न विडारयो[10] है॥
जैसे तौ सरिता[11] जल काष्टहि न बोरत है,
करे चित लाज अपनो ही प्रतिपारयो[12] है।
तैसे ही परम गुरु [13]पारस परस गति,
सिक्खन के कृत्य कर्म[14] कछु न बिचारयो है॥ ३७९॥

जोई [15]कुलाधरम करम कै सुचार[16] चारु[17],
सोई परिवार विषय श्रेष्ट बखानिये।
बणाज ब्योहार साचो शाह सन्मुख सदा,
सोई तौ बनौटा[18] निःकपट कै मानिये॥
स्वामि काम सावधान मानत नरेश आन,
सोई स्वामि कारजी[19] प्रसिद्ध पहचानिये।

१-दोष। २-पालते हैं। ३-हसाते हैं और स्वयम् हसते हैं। ४-चकित्सा, ईलाज। ५-विद्यार्थी। ६-पाठशाला। ७-माता। ८-हृदय में। ९-शूर=बहादुर। शूरवीर शर्णागति की पूर्ण प्रतिज्ञा से रक्षा करता है। १०-डालता, फैंकता। ११-नदी। १२-अपना पाला हुआ है। १३-पारस के स्पर्श की भान्ति। १४-कीये हुए कर्म, शुभा शुभ कर्म। १५-कुल के धर्म और कर्म। १६-कर्त्तव्य (अच्छी चाल)। १७-सुन्दर। १८-व्योपारी-पुत्र, गुमाश्ता। १९-कार्य कर्त्ता, मुखी-कामा। *पा —रसाय।

गुरु उपदेस प्रवेस रिद अन्तर है,
[1]सबद सुरत[2] सोई सिख जग जानिये ॥ ३८० ॥

जल के धरनि[3] अरु धरनि कै जैसे जल,
प्रीति कै परस्पर सङ्गम[4] सम्हार है।
जैसे जल सींच कै तमाल[5] प्रतिपालियत,
बोरत न कासटहि ज्वाला में न जार है।
लोष्ट[6] कै जड़ गढ़[7] बोहिथ[8] बनाईयत,
[9]लोष्ट को सागर अपार पार पार है।
[10]प्रभु कै जानीजै जन जन कै जानीजै प्रभु,
तांते जन के न गुण औगुण बिचार है ॥ ३८१ ॥

ब्याह समय जैसे दोहूं और गाईयत गीत,
एकै ह्वै लभत[11] एकै हानि[12] कानि[13] जानिऐ।
दोहूं दल बिषय जैसे बाजत नीसान[14] तान[15],
काहूं को जय काहूँ को पराजय[16] पाहचानिऐ।
जैसे दोहूँ कूल[17] सरिता[18] में भरि नाव चलै,
कोऊ मंझधार कोऊ पार परमानिऐ।
धर्म अधर्म करम कै असाधु साधु,
ऊच नीच पदवी प्रसिद्ध उनमानिऐ[19] ॥ ३८२ ॥

[20]पाहन की रेख आदि अन्त निर्बाह करै,
[21]टरै न सनेह साधु बिग्रह[22] असाधु को।

१-शब्द (ब्रह्म) की ज्ञात वाला सिख ही जगत् में जाना जाता है। २-ज्ञात। ३-पृथ्वी। ४-संगति, मिलाप। ५-तमाल का वृक्ष, जिस को जल डोबता नहीं और अग्नि जलाती नहीं। ६-लोहा। ७-पक्का। ८-जहाज। ९-(काष्ट) लोहे को अपार सागर से पार कर देता है। १०-प्रभु से जन जाना जाता है और जन (दास) द्वारा प्रभु। ११-लाभ, (पुत्र वालों को)। १२-पुत्री वालों को हानि। १३-अधीनगी। १४-नगाड़े। १५-ज़ोर से। १६-हार हो जानी। १७-कनारे। १८-नदी। १९-मानी जाती है। २०-पत्थर। २१-पत्थर रेखा की भान्ति साधु का प्रेम और असाधु का विरोध आयु प्रयन्त टलता नहीं। २२-विरोध।

जैसे जल में लकीर धीर न धरत तत्त[1],
[2]अधम की प्रीति औ विरुद्ध जुद्ध साधु को।
थोहर [3]उखारी उपकारी औ विकारी जन,
सहज सुभाव साधु अधम उपाधु को।
गुञ्ज-फल[4] माणक[5] संसार तुलाधार[6] बिषय,
तोल के समान मोल अल्प[7] अगाध[8] को ॥ ३८३ ॥

जैसे कुलावधु अङ्ग षोड़श सिङ्गार रचे,
गणिका[9] रचित तेई सकल सिङ्गार जी।
कुलावधु सेज समय रमत भतार एक,
वेश्या तौ अनेकन से करै व्यभिचार जी।
कुलावधु सङ्गम सुजस निर्दोख[10] मोख,
वेश्या परसत अपजस ह्वै विकार जी।
[11]तैसे गुरु सिक्खन को परम पवित्र माया,
सोई दु.ख दायक ह्वै दाहत संसार जी ॥ ३८४ ॥

[12]सोई लोहा विश्व विषय विविध बन्धन रूप,
सोई तौ कञ्चन जोति पारस प्रसंग है।
सोई तौ सिङ्गार अति सोभति पतिब्रता कौ,
सोई आभरण[13] गणिका रचित अंग है।
सोई स्वांति बूंद मिल सागर मुक्ताफल[14],
सोई स्वांति बूंद विष भेटत[15] भुयंग[16] है।
तैसे माया किरत बिरत है विकार जग।
परउपकार गुरु सिक्खन सर्वंग[17] है ॥ ३८५ ॥

१-वही जल-रेखा। २-जल रेखा की तरह नीच की प्रीति और साधु का झगड़ा-विरोध होता है। ३-गन्ना। ४-रतियां। ५-अमूल्य पत्थर। ६-तकड़ी, कण्डी। ७-कम, न्यून। ८-अत्यधिक। ९-वेश्या। १०-दोष रहित। ११-तैसे गुरु सिखन को माया परम सुखदायक है और संसार को दु खदायनी हो कर जलाती रहती है। १२-वही लोहा बन्धन का कारण बनता है और वही पारस से छूह कर स्वर्ण हो जाता है। १३-अभूषण, गहने। १४-मोती। १५-सर्प के मुख में जाने से। १६-सर्प। १७-सर्व-अङ्गों से, सब प्रकार से।

काग जौं मराल[1] सभा जाय बैठे मानसर,
दुचित उदास बास[2] आस दुर्गन्ध की।
स्वान[3] ज्यों बैठाईऐ सुभग पर्यङ्क पर,
त्याग जाय चाकी चाटै हीन मति अन्ध की।
गर्दभ[4] अंग अर्गजा[5] जौ पै लेप कीजै,
लोटत भसम संग है कुटेव[6] कन्ध[7] की।
[8]तैसे ही असाधु साधु सङ्गति न प्रीति चीत,
मनसा अपाधि अपराध सनबन्ध की॥ ३८६॥

निराधार को आधार आसरो निरासन को,
नाथ है अनाथन को, दीन को दयालु है।
अशरण शरण औ निर्धन को है धन,
टेक[9] अन्धन की औ कृपण[10] कृपालु है।
कृतघ्न के दातार, पतित पावन प्रभु,
नर्क निवारण, प्रतिज्ञा प्रतिपालु है।
अवगुण हरन करण कर्तज्ञ स्वामि,
सङ्गी सर्वज्ञ रस रसिक रसालु है॥ ३८७।

[11]कोयला सीतल कर[12] करत है स्याम[13] गहे[14],
परस तप्त पर दग्ध करत है।
कूकर[15] के चाटत कलेवर[16] को लागै छोत[17],
पाटत[18] शरीर पीर धीर न धरत है॥
फूटत ज्यों गागर परत ही पाषाण[19] पर,
[19]पाहन हरत[20] पुनः गागर हरत[21] है।

१-हंस। २-वासना, गन्ध। ३-कुत्ता। ४-खोता। ५-सुगन्धि युक्त पदार्थ, इतर आदि। ६-खोटा स्वभाव। ७—शरीर। ८-तिसी तरह असाधु के चित में साधु संगति की प्रीति नहीं होती क्योंकि उस के मन का सम्बन्ध उपाधि और अपराध से है। ९-आश्रय। १०-रंक, गरीब। ११-ठण्डा कोयला हाथ में पकड़ने से काला करता है। १२-हाथ। १३-काला। १४-पकड़ने से। १५-कुत्ता। १६-शरीर। १७-छूत की बीमारी। १८-शरीर पाट जाता है। १९-पत्थर। २०-मारना, फैंकना। २१-नष्ट, गागर पत्थर पर फैंको अथवा पत्थर गागर पर गेरो, गागर ही फूटेगी।

तैसे ही असाधु संग प्रीति हूँ बिरोध बुरो,
लोक परलोक दुःख दोख न टरत है॥ ३८८ ॥

छत्र के बदले जैसे छतना[1] की छांहि बैठे,
हीरा अमोल बदले फटक[2] क्यों पाईऐ।
जैसे मणि कञ्चन के बदले काच गुञ्जाफल[3],
कामरी[4] पटम्बर[5] के बदले ओढाईऐ॥
सुधा[6] मिष्टान पान के बदले करीफल[7],
केसर कपूर ज्यौं कचूर लै लगाईऐ।
[8]भेटत असाधु सुख सुकृत सूछम होत,
सागर अथाह जैसे बेली[9] में समाईऐ॥ ३८९ ॥

कञ्चन[10] कलस[11] जैसे वांको भये सूधो होय,
माटी को कलस फूटे जुरै न जतन से।
बसन मलीन धोय निर्मल होत जैसे,
ऊजरी न होत कारी कांवरी पतन[12] से।
लकुटी अगनि जैसे सेकत ही सूधी होय,
स्वान पूंछ पटन्तरो[13] प्रगट [14]मनत न से[15]।
तैसे गुरु सिक्खन सुभाउ जल मैन[16] गति,
साकत सुभाउ लाख पाहुन[17] गतन से॥ ३९० ॥

कोऊ बेचै गढ-गढ़[18] शस्त्र धनुष बाण,
कोऊ बेचै गढ़-गढ़ विविध सनाहि जी।
कोऊ बेचै गोरस[19] दुग्ध दधि घृत नित्य,
कोऊ बेचै बारुनी[20] बिखम सम चाहि जी।

१–छाता। २–बिल्लौर। ३–रतिका। ४–कमली। ५–रेशम के कपड़े। ६–अमृत। ७–डेले, करीर का फल, वा कड़वे फल। ८–असाधुओं की सगति से सुख और पुन्य पतले पढ़ जाते हैं। ९–कटोरी। १०–स्वर्ण। ११–घड़ा। १२–धोने से, अथवा फट जाने पर भी। १३–तरह। १४–मानती नहीं। १५–वह। १६–मोम। १७–पत्थर। १८–घड़ घड़, बना कर। १९–मक्खन। २०—शराब।

तैसे ही विकारी उपकारी है असाधु साधु,
बिख्या अमृत बन देखे अवगाहि जी।
आतमा* अचेत पंछी धावत चतुर कुण्ट,
जैसोई बृच्छ बैठे तैसो चाखे फल ताहि जी ॥ ३६१ ॥

जैसे एक जननी के होत हैं अनेक सुत,
सब ही में अधिक प्यारो सुत गोद को।
स्याने सुत बणज ब्योहार के विचार विषय,
गोद मे अचेत हेत[1] सम्पै न सहोद[2] को ॥
पलना सुलाय माइ गृह काज लागे जाय,
सुण सुत रुदन पय प्यावै मन मोद[3] को।
आपा खोय जोई गुरु चरण शरण गहे,
रहे निर्दोख मोख आनन्द विनोद को ॥ ३६२ ॥

करत न इच्छा कछु मित्र शत्रुता न जानै,
बाल बुद्धि सुधि नाहि बालक अचेत को।
असन बसन लिए माता पीछे लागी डोलै,
बोलै मुख अमृत बचन सुत हेत को ॥
बालकै आशीष देनहारी अति प्यारी लागै,
[4]गारि दैनहारी बलहारी* डारी सेत[5] को।
तैसे गुरु सिख समदर्शी आनन्दमयी,
जैसो जग मानै तैसो लागै फल खेत को ॥ ३६३ ॥

जैसो [6]दर्पण दिव्य सूर[7] सन्मुख राखै,
पावक[8] प्रगास होत [9]किरण चरित्र कै।
जैसे मेघ बरसत ही वसुन्धरा[10] बिराजै,

१-प्यार। २-भाईयों का। ३-प्रसन्नता। ४—गाली देनहारी पर
[?]ान वाली) माता, शान्ति त्याग देती है अर्थात् क्रोधित हो जाती है।
५-शैत्य। ६-आतशी शीशा। ७-सूर्य। ८-अग्नि। ९-किरणों
के चरित्र से। १०-पृथवी। *बोलहारी=कलह-हारी, कलहनी। दे: महा.=कोश।

विविध बनास्पती सफल सुमित्र कै।
भेटत भतार नारि सोभित सिङ्गार चारु,
पूर्ण आनन्द सुत उदित विचित्र कै।
सत्गुरु दरस परस बिगसत[1] सिक्ख,
[2]प्राप्त निधान ज्ञान पावन पवित्र कै॥ ३६४

जैसे कुलाबधु बुधिवन्त ससुरार विषय,
सावधान चेतन रहे आचार चार कै।
ससुर देवर जेठ सकल की सेवा करै,
खान पान ज्ञान जान पति परिवार कै॥
मधुर बचन गुरु जन से [3]लवन लज्जा,
सेजा समय रस प्रेम पूर्ण भतार कै।
तैसे गुरु सिख सर्वात्म पूजा प्रबीन,
ब्रह्म ध्यान गुरु मूर्त्ति अपार कै॥ ३६५॥

तीर्थ, पुर्व, देव जात्रा जात है जगत,
पुर्व तीर्थ सुर[4] कोटिन कोटान के।
[5]मुक्ति वैकुण्ठ जोग जुगति विविध फल,
वांछित है साधु रज कोटि ज्ञान ध्यान कै।
[6]अगम अगाध साधु संगति असंख्य सिख,
श्री गुरु बचन मिलै राम रस आन कै।
सहज समाधि अपरम्पर पुरख लिव,
पूर्ण ब्रह्म सत्गुर सावधान कै॥ ३६६॥

१—प्रसन्न। २—पावन पवित्र ज्ञान का खज़ाना प्राप्त होता है। ३—लज्जा लेती है अर्थात् अज्जा करती है। ४—देवते। ५—मुक्ति वैकुण्ठ, योग ध्यान के अनेक फल और कोटियों ही ज्ञान ध्यान आदि साधु धूलि चाहते हैं। ६—अगम अगाध साधु संगति में अनेक सिख रहते हैं परन्तु जिन को गुरु बचनों द्वारा राम रस आन प्राप्त हुआ है, उन्हीं की सहज समाधि द्वारा अपरम्पर पुरुष और पारब्रह्म स्वरूप सुचेत सद्गुरु में वृति जुड़ जाती है।

[1]दृगण कौ जिह्वा-श्रवण जौ मिलहि,
जैसो देखै तैसो कहि सुनि गुण गावही।
श्रवण जिह्वा औ लोचन मिलै दयाल,
जैसो सुणैं तैसो देखि कहि समुझावही।
जिह्वा कौ लोचण श्रवण जौ मिलहिं देव,
जैसो कहै तैसो सुनि देखि औ दिखावही।
नयन जीह श्रवण औ श्रवण लोचन जीह,
जिह्वा न श्रवण लोचन ललचावही॥ ३६७॥

आपनो सुअन्न[2] जैसे लागत प्यारो जीय,
जानिऐ वैसोई प्यारो सकल संसार को।
अपनो द्रव्य[3] जैसे राखिऐ जतन करि,
वैसो ही समझि सब काहू के व्योहार को।
स्तुति निन्दा सुनि व्यापत हर्ष शोक,
वैसो ही लगत जग अनिक प्रकार को।
तैसो कुल धर्म कर्म जैसो जैसो काको,[4]
[5]उत्तम कै मान जान ब्रह्म बिथार को॥ ३६८॥

जैसो नयन बयन[6] पंख सुन्द्र सर्वङ्ग मोर,
तांको पग[7] ओर देख दोष न बिचारिऐ।
सन्दल[8] सुगन्धि अति कोमल कमल जैसे,
कण्टक बिलोक न औगुण उर धारिए॥
जैसे अमृत-फल[9] मिष्ट[10] गुणादि स्वाद,
बीज करुवाई कैं बुराई न समारिऐ।
तैसे गुरु ज्ञान दान सब हूँ से मांग लीजै,
बन्दना सकल भूत निन्दा न तुकारिऐ[11]। ३६९॥

१—यदि आंखों को जिह्वा और कान मिल जाएं। २-पुत्र। ३—धन। ४-किसी का। ५-गुरु सिख यह जान कर कि सब में ब्रह्म का विस्थार है, सब के कुल धर्म-कर्म को उत्तम कर माने। अर्थात् किसी से द्वैष ना करे। ६-बोल। ७-पैर। ८-चन्दन। ९-आम। १०-मीठा। ११-तू तू कहना, अपशब्द कहना, भावार्थ=घृणा करना।

सवैया छन्द

*[1]पारस परस दरस कत सजनी,
[2]कत वै नयन बयन मोहन ।
कत वै दसन[3] हसन सोभा निधि,
कत वै [4]गवन भवन मन साहन।
कत वै राग रङ्ग सुख सागर,
कत वै दया मया दुख जोहन[5] ।
कत वै जोग भोग रस लीला,
कत वै सन्त सभा [6]छवि गोहन ॥ ४०० ॥

कब लागै मस्तक चरनन रज[7],
दरस दयाल दृगन कब देखौं ।
अमृत बचन सुनौं कब श्रवणन,
कब रसना बेनती बिसेखौं ॥
जब कर[8] करौं दण्डौत वन्दना,
पगन[9] परिक्रमादि पुन रेखौं ।
प्रेम भक्ति प्रतच्छ प्राणपति,
ज्ञान ध्यान जीवन पद लेखौं ॥ ४०१ ॥

कबित्त

बिरखै बयार[10] लागै जैसे हहराति[11] पाति,
पञ्छी न धीरज कर ठौर ठहरात है ।
मरुवर घाम लागै बारज[12] बिलख[13] मुख,
प्राण अन्त हन्त जल जन्तु अकुलात है ।
शार्दूल देखै मृगमाल-दल, चित चन

*ये छन्द, भाई गुरुदास जी ने काशी में गुरू देव जी के बिरह में उच्चारण किये प्रतीत होते है ।

१-हे सखी ! पारस के स्पर्श सम गुरुदेव-दर्शन कहां है ? २-कहां हैं नेत्र और वचन मोहन वाले । ३-दांत । ४-बाहिर-घर मन को सुन्दर लगन वाले । ५-देखना, भावार्थ=नाश करना । ६-घनी छवि । ७-धूलि । ८-हाथ । ९-चरण । १०-वायु । ११-हिलते हैं, कांपते हैं । १२-कवल । १३-मुर्झाना ।

वास में न, श्रास कर आसम सुहात है।
[1]तैसे गुरु आंग स्वांग भए भय चकित सिख,
दुखित उदास वास अति बिललात है ॥ ४०२ ॥

[2]ओला बरखण, करखण दामनी[3], *बयार[4],
[5]सागर लहर [6]बन जरत अगनि है।
[7]राजी बिराजी, भूकंपका, [8]अन्तर व्यथा बल,
बन्दसाल[9] सासना, सङ्कट मैं मगन है।
आपदा अधीन दीन दूखना दारिद्र छिद्र[10],
अमति उदास, ऋण[11] दासन नगन है।
[12]तैसे ही सृष्टि को अदृष्ट जौ आय लागै,
जग में भगतन के रोम न भगण है ॥ ४०३ ॥

जैसे चीटी क्रम-क्रम कै बृख चढ़ै,
पञ्छी उड जाय वैसै निकट ही फल कै।
जैसे गाडी चली जात लीकन में धीरज से,
घोरो दौर जाय बांय दाहिने सकल कै।
जैसे कोस[13] भरि चल सकिऐ न पायन कै,
आतमा[14] चतुर कुणट धाय आवै पल कै।
[15]तैसे लोक वेद भेद ज्ञान [16]उनमान पच्छ,
गम्य गुरु चरण सरणि अस्थल कै ॥ ४०४ ॥

१–तैसे ही गुरु के अँग स्वांग को देख कर सिख भय युक्त हो जाते हैं और सहवास से उपराम हो कर दुःखी होते हैं और विलाप करते हैं। २–गड़ों का वर्षना, बिजली का कड़कना। ३–बिजली। ४–वायु, तूफान आना। ५–समुद्र की लहरों में फँसना। ६–जल रहे बन में फँस जाना। ७–अराजकता होनी या समाज से निकाला जाना। राजी=श्रेणी। ८–अन्दर (चिन्ता आदि) पीड़ा का जोर होना। ९–कैद खाने का दण्ड। १०–कलङ्क, ऊज। ११–ऋणि होना। १२–इसी प्रकार यदि समस्त संसार के अदृष्ट=कर्म (दुर्भाग्य) आ कर व्याप्त हो जायें, तब भी भक्त के रोम को वांका नहीं कर सकते। १३–कोह। १४–मन। १५–तैसे ही लौकिक और वैदिक ज्ञान का भेद तर्कवाद (दलील पर ही निर्धारित) है, इस लिये यह चऊँटी और पैदल चाल की भान्ति है। परन्तु अस्थल 'प्राप्य स्थान' (प्रभु प्राप्ति) गुरु चरणं शरण से शीघ्र प्राप्त होता है। १६–वीचार। *पा–बिजागि।

जैसे बनराइ प्रफुल्लित निमित्त फल,
लागत ही फल पत्र पुहप[१] बिलात है।
जैसे त्रिया रचित सिङ्गार भर्त्तार हेतु,
भेटत भर्त्तार उर[२] हार न सोहात है।
बालक अचेत जैसे करत लीला अनेक,
[३]सुचित चितन भये सबै बिसरात है।
तैसे षट कर्म धर्म श्रम ज्ञान काज,
ज्ञान भानु उदय उड कर्म उडात है॥ ४०५॥

जैसे हंस[४] बोलत ही डाकनि[५] हरै करेजो,
बालक ताही लौ धावै[६] जाने गोदि लेति है।
रोवत सुतहि जैसे औषधि प्यावै माता,
बालक जानत मोहि कालकूट[७] देति है।
हरण भरण [८]गति सत्गुरु जानिऐ न,
बालक जुगत मति जगत अचेति है।
अकल कला अलख अति ही अगाध बाध,
आप ही जानत आप नेति नेति नेति है॥ ४०६॥

दैत्य[९] सुत[१०] भक्त प्रगट प्रहलाद भए,
[११]देव सुत जग में सनीचर बखानिऐ।
[१२]मधु पुर बासी कंस अधम असुर भये,
लङ्का बासी सेवक बिभीखन पहिचानिऐ।
[१३]सागर गम्भीर बिषय बिख्या प्रगास भयी,
[१४]अहि मस्तक मणि उदय उनमानिऐ।

१–फूल। २–गले में। ३–सुचेत चित होने पर। ४–हंसने पर। ५–चुड़ेल। ६–दौडता है। डाकनी और दौड़ता है। ७–विष। ८–अचेत जगत् सत्गुरू गति को नहीं जानता। ९–राक्षस। १०–पुत्र। ११–देवता (सूर्य) का पुत्र शनिश्चर (अशुभ) कहलाता है। १२–मथुरा। १३–समुद्र में से विष पैदा हुई। १४–सर्प।

[1]बरण स्थान लघु दीर्घ जतन करै,
[2]अकथ कथा बिनोद बिसम न जानिऐ॥ ४०७॥

चिन्तामणि चितवत चिन्ता चित ते चुराई,
अजोनी आराधे जोनि सङ्कट कटाए है।
जपत अकाल काल कण्टक कलेस नासे,
निर्भय भजन भ्रम भय दल भजाए है।
सिमरत नाथ निर्वैर वैर भाव त्यागयो,
भागयो भेदु खेदु निरभेद गुण गाए है।
अकुल अंचल गहि कुल न विचारे कोऊ,
अटल शरण आवागवन मिटाए है॥ ४०८

वाछै न स्वर्ग वास मानै न नरक त्रास,
आशा न करत चित होनहार होइ है।
सम्पत न हर्ष विपत में न शोक ताहि,
सुख दुख समसर विहँस न रोइ है।
जनम जीवन मृत मुक्त न भेद खेद,
गम्यता त्रिकाल बाल बुद्धि अवलोइ है।
ज्ञान गुरु अञ्जन[3] कै चीन्हत निरञ्जनहिं,
विरलो संसार प्रेम भक्ति महि कोइ है॥ ६

जैसे तौ मिठाई राखिऐ छुपाय जतन कै,
चीटी चलि जाय चीन्ह ताहि लपटात है।
दीपक जगाय जैसे राखिऐ दुराय[4] गृह,
प्रगट पतङ्ग ता में सहज समात है॥
जैसे तौ विमल जल कमल एकान्त बसै,
मधुकर[5] मधु[6] अचवन[7] तहिं जात है।

१–वर्णाश्रम भेद से छोटे बड़े की विचार, भूल है। २–लीलाधर (विनोदी) भगवान् की अकथ कथा आश्चर्य है, जानी नहीं जाती। ३–सुरमा। ४–छिपा कर। ५–भौंरा। ६–शहद, मिठास। ७–पीने के लिये।

तैसे गुरुमुख जिह घट प्रगटित प्रेम,
सकल संसार तिह द्वार बिललात है ॥ ४१० ॥

बाजत नीसान[१] सुनियत चहूँ ओर[२] जैसे,
उदित[३] प्रधान भानु[४] [५]दुरै न दुराए से।
दीपक से दावा[६] भये सकल संसार जानै,
घटिका मै सिन्धु जैसे छिपे न छिपाए से।
जैसे चक्रवै[७] न छानो[८] रहत सिंहासन पै,
देस में दोहाई फेरे मिटे न मिटाए से।
तैसे गुरुमुख प्रिय प्रेम को प्रगास जास,
गुप्त न रहै मौनव्रत[९] उपजाए से ॥ ४११ ॥

जौपै देख दीपक पतङ्ग पच्छम[१०] ताकै,
जीवन जनम कुल लॉछन लगावई।
जौपै नाद बाद सुनि मृग आन ज्ञान राचै,
प्रान सुख ह्वै सबद बेधी न कहवाई ॥
जौपै जल से निकस रहै सरजीत मीन,
सहे दुख दूषण बिरहु बिलखावई।
सेवा गुरु ज्ञान ध्यान तजै भजै दुबिधा कौ,
संगत में गुरुमुख पदवी न पावई ॥ ४१२ ॥

जैसे एक चीटी पाछै कोटि चीटी चली जात,
एक टक पग[११] डगमग सावधान है।
जैसे कूंज पांति[१२] भली भांति [१३]शांति सहज में,
उडत आकाश चारी आगै अगवान है ॥

१–नगाड़ा। २–तरफ। ३–प्रकट। ४–सूर्य। ५–छिपाने से छिपता नहीं। ६–जल जाने से। ७–चक्रवर्ति राजा। ८–छिपा रहना। ९–मौन रहने से। १०–पीछे। पतङ्ग दीपक को देख कर पीछे देखता है वह अपने जन्म, जीवन और कुल को दाग लगाता है। इसो प्रकार मृग, मच्छली और गुरुसिख की गति समझनी चाहिये। ११–पैर। १२–कतार, पंक्ति। १३–कूंजें, पक्ति (डार) में शान्ति सहज में उड़ती जाती हैं परन्तु उन की अग्रगामी एक ही कूंज होती है।

जैसे मृगमाल[1] चाल चलत टलत नाहिं,
जत्र तत्र अग्रभागी[2] रमत[3] तत्त ध्यान है।
चीटी खग[4] मृग सन्मुख पाछे लागै जाहि,
[5]प्राणी गुरु पन्थ छाड चलत अज्ञान है॥ ४१३॥

जैसे प्रिय सङ्गम[6] सुजस नायका[7] बखानै,
सुनि सुनि सजनी सकल बिगसात है।
सिमर सिमर प्रिय प्रेम रस बिसम ह्वै,
शोभा देत मौन गहे [8]मन मुस्कात है।
पूर्ण आधान[9] प्रसूत समय [10]रुदन से,
[11]गुरु जन मुदित होय ताहि लपटात है।
तैसे गुरुमुख प्रेम भक्ति प्रगासु जासु,
[12]बोलत वैराग मौन सबहुं सुहात है॥ ४१४॥

जैसे काछी[13] फल हेतु [14] बिबिध बिरख रोपै[15],
[16]निःफल रहै बिरखै न काहू काज है।
संतति[17] निमित्त नृप अनिक विवाह करै,
संतति बिहून वनिता[18] न गृह छाज[19] है।
विद्या दान जान जैसे पांधा [20]चटसार जोरै,
विद्या हीन दीन [21]खल नाम उपराज है।
सत्गुरु सिख साखा संग्रहै सु ज्ञान निमित्त,
बिनु गुरु ज्ञान धृग जनम कौ लाज है॥ ४१५॥

१–हिरणों की डार। २–मुखी। ३–चलता है। ४–पक्षी। ५–उपरोक्त कीड़ी, पक्षी और मृग अपने मुखी के पीछे चलते हैं परन्तु परमाश्चर्य है कि प्राणी गुरू पथ को छोड़ कर अज्ञान के रास्ते पर चलता हैं। ६–मिलाप। ७–और स्त्रियां। ८–मन ही मन हंसती हैं। ९–गर्भ। १०–वह रोती है। ११–वड वडेरे। १२–गुरु मुख वैराग मई बचन बोले अथवा मौन रहे परन्तु सब को अच्छा लगता है। १३–माली। १४–लिये। १५–लगाता है। १६–फल रहित वृक्ष किसी काम का नहीं होता और वह माली को नहीं भाता। १७–सन्तान। १८–स्त्री। १९–शोभती नहीं। २०–पाठशाला में विद्यार्थी इकत्रित करता है। २१–मूर्ख नाम से पुकारा जाता है।

सुरसरी[१], सुरसती, जमना, गोदावरी,
गया, प्राग, सेतु[२], कुरुखेत मानसर है।
कांशी कांती द्वारावती माया मथुरा अयुध्या,
गोमती आवन्तका केदार हिमधर है॥
नर्बदा बिविध बन देवस्थल कवलास,
नील मन्द्राचल समेरु गिरिवर है।
[३]तीर्थ अर्थ सत्य धर्म दया सन्तोष,
श्री गुरु चरण रज तुल्य न सगर है॥ ४१६॥

जैसे कुँआर कन्या मिलि खेलत अनेक सखि,
सगल को एकै दिन होत न विवाहि जी।
जैसे बीर खेत विषय जात है सुभट[४] जेते,
सबहि न मरत तेते शस्त्र सनाहि जी॥
बावन समीप जैसे बिबिध बनास्पति,
एकै बेर चन्दन करत है न ताहि जी।
तैसे गुरु चरण शरण जात है जगत,
जीवन मुक्त पद [५]चाहत है जाहि जी॥ ४१७॥

जैसे ग्वार[६] गाईयन चरावत जतन बन,
खेत न परत सबै चरत अघाय[७] कै।
जैसे राजा धर्म स्वरूप राजनीति बिषय,
तांके देस प्रजा बसत सुख पाय कै॥
जैसे होत खेवट[८] चैतन्य सावधान जामें,
लांगे निर्विघ्न बोहिथ पार जाय कै।
[९]तैसे गुरु उनमन मगन ब्रह्म जोति,
जीवन मुक्त करै सिख समुझाय कै॥ ४१८॥

१–गंगा। २–रामेश्वर। ३–उपरोक्त सारे तीर्थ, धन, सत्य, धर्म आदि ये सारे गुरु-चर्ण-रज तुल नहीं हैं। ४–बहादुर। ५–जिस को गुरूदेव चाहते हैं उस को ही जीवन मुक्त पद प्राप्त होता। ६–गवाला, वागी। ७–तृप्त हो कर। ८–मल्लाह। ९–तैसे ही गुरूदेव शिष्य को ज्ञान द्वारा समझा बुझा कर ब्रह्म ज्योति में निमग्न कराते हैं और तुरयावस्था में पहुँचा कर जीवन मुक्त कर देते हैं।

जैसे घाउ घायल को जतन कै नीको[1] होत,
पीर मिटि जाय लीक मिटत न पेखीऐ।
जैसे फाटो अम्बरो[2] सीयाइ पुनः ओढियत,
नागो तौ न होय तऊ थेगरी[3] परेखीऐ[4] ॥
जैसे टूटो बासन[5] संवार देत है ठठेरो,
गिरत न पानी पै गठीलो भेख भेखीऐ।
[6]तैसे गुरु चरण बिमुख दुख देख पुनः
सरण गहे पुनीत पैं कलङ्क लेखीऐ ॥ ४१६ ॥

[7]देख देख दृगन दरस महिमा न जानी,
सुन सुन सबदु महातम न जान्यो है।
गाय गाय गम्यता गुण गण गुणि निधान,
हस हस प्रेम को प्रताप न पछान्यो है॥
रोय रोय बिरह वियोग का न सोग जान्यो,
मन गहि गहि मन मुग्ध न मानयो है।
[8]लोक-बेद ज्ञान उनमानि कै न जान सक्यो,
जनमु जीवन धृग बिमुख बिहान्यो है॥ ४२० ॥

[9]कोटिन कोटान मणि को चमत्कार वारौं,
ससियर[10] सूर[11] कोटि कोटिन प्रगास जी।
कोटिन कोटान [12]भाग्य पूर्ण प्रताप छबि,
जग-मग जोति है सुजसु निवास जी ॥

१-अच्छा। २-कपड़ा। ३-टाकी। ४-देखी जाती है। ५-वर्तन। ६-ऐसे ही विमुख दुःखी हो कर पुन गुरु शर्ण को प्राप्त होने पर पवित्र तो हो जाता है परन्तु विमुखता का कलङ्क नहीं चूकता। ७-समुचा भाव=देख २ कर दर्शन की महिमा को न जाना, सुन कर शब्द के महात्म को न पहिचाना, गाय कर, गुणी-निधान की गम्यता न प्राप्त हुई, हंस कर, रोय कर, प्रेम का प्रताप, विरह-वियोग को ना जाना और मन को पकड़ा नहीं, तो कुछ भो नहीं किया। ८-लोग-और वेद के विचार में फँस कर गुरु ज्ञान को न जान पाया। ९-करोड़ों कोटिओं-मणियों का चमत्कार वार दूं। १०-चन्द्रमा। ११-सूर्य। १२-पूर्ण भाग्य के प्रताप की शोभा।

शिव सनकादि ब्रह्मादिक मनोरथ कै,
तीरथ कोटानि कोटि बाछत है तास जी।
(मस्तक) दर्शन सोभा को महातम अगाध बोध,
श्री गुरु चरण रज[१] मात्र लागै जास जी ॥ ४:

सवैया

खग[२] मृग मीन पतङ्ग चराचर[३],
जोनि अनेक विषय भ्रम आयो।
[४]सुनि सुनि पाय रसातल[५] भूतल[६],
देव पुरी प्रति लौ बहु धायो।
जोग हू भोग दुखादि सुखादिक,
धर्म अधर्म सु कर्म कमायो।
हार परयो सरणागति आय,
गुरूमुख देख गरू सुख पायो ॥ ४२२ ॥

कवित्त

चाहि चाहि चन्द्रमुख चायकै[७] चकोर चखि[८],
अमृत किरण अचवत[९] [१०]न अघाने है।
सुनि सुनि अनहद शब्द श्रवण मृग,
आनन्द उदोत करि शान्ति न समाने है ॥
[११]रसिक रसाल जसु जंपत बासर निसि,
चात्रिक जुगति जिह्वा न तृप्ताने है।
देखत सुनत अरु गावत पावत सुख,
प्रेम रस बस मन मगन हिराने है ॥ ४२३ ॥

सलिल[१२] निवास जैसे मीन की न घटै रुचि,
दीपक प्रगास घटै प्रीति न पतङ्ग की।

१-धूल। २-पक्षी। ३-चैतन्य और जड़। ४-ओत पा पा कर। ५-पाताल। ६-पृथिवी। ७-उठा कर। ८-नेत्र। ९-पी कर। १०-तृप्त नहीं होता। ११-चात्रिक की भान्ति रसिक दिन रात गुरु यश का जाप करते हैं फिर भी उन की जिह्वा तृप्त नहीं होती। १२-पानी।

कुसुम[1] सुवास जैसो तृप्ति न मधुप[2] कौ,
उडत आकास आस घटै न बिहङ्ग[3] की।
घटा घनघोर मोर चात्रिक रिद्य उल्लास[4],
नाद बाद सुनि रति[5] घटै न कुरङ्ग[6] की।
तैसे प्रिय प्रेम रस रसिक रसाल सन्त,
घटत न तृसना प्रबल अङ्ग अङ्ग की॥ ४२४॥

सलिल[7] स्वभाव देखो बोरत न कासटहि,
लाज गहे कहै अपनो ही प्रतिपारयो है।
[8]जुगवत कासट रिदन्तर बैसन्तरहि,
बैसन्तर अन्तर लै कासट प्रजारयो है।
[9]अगरहि जल बोर काढै बाढै मोल तांको,
पावक प्रदग्ध कै अधिक औटारयो[10] है।
तऊ तांको रुधिर चोइ चोआ[11] होय सलिल मिल,
[12]औगुणहि गुण मानै विरद बिचारयो है॥ ४२५॥

सलिल स्वभाव जैसे निवन[13] गवन[14] गुण,
सींचियत उपवन[15] बिरवा लगाइ कै।
जल मिलि बिरखहि करत [16]उर्ध तप,
साखा नये सफल ह्वै झुक रहे आइ कै॥
[17]पाहन हनत फलदायी, काटे होइ नौका,
लोसट कै छेदै भेदै बन्धन वन्धाइ कै।

१-फूल। २-भँवरा। ३-पत्ती। ४-प्रसन्नता। ५-प्रीति। ६-मृग। ७-जल। ८-लकड़ी के हृदय में अग्नि जुड़ी (छिपी) रहती है, परन्तु अग्नि लकड़ी को अपने में मिला कर जला देती है। ६-चन्दन को जल डोब कर बाहर निकाल देता है इस लिये कि इस का मोल अधिक हो। १०-उबाला। ११-इतर। १२-सतिगुरु देव अपने विरद (कर्त्तव्य, फर्ज़) को पहिचान कर सिख के औगुण को गुण ही मानते हैं। १३-नीवान। १४-जाना। १५-बाग़, बग़ीचा। १६-उलटा हो कर तप करता है। १७-पत्थर मारने से वृक्ष फल देता है और काटने से नौका बनती है।

प्रबल प्रवाह सुत सत्रु गहि पार परै,
सत्गुरु सिख दोखी तारै समझाइ कै ॥ ४२६ ॥

*गुरु उपदेस प्रवेस करि [1]भय भवन,
भावनी भगति भाइ चाइ कै चईले हैं।
[2]संगम संजोग भोग, सहज समाधि साधि,
प्रेम रस अमृत कै रसिक रसीले हैं।
[3]ब्रह्म बिबेक टेक एक औ अनेक लिव,
बिमल बैराग फबि छबि कै छबीले हैं।
परमद्भुत गति अति अश्चर्जमय,
बिसम[4] बिदेह[5] उन्मन[6] उन्मीले हैं ॥ ४२७ ॥

जौ लौ करि कामणा कामार्थी[7] कर्म कीने,
पूर्ण मनोरथ भयो न काहू काम को।
जौ लौ करि आसा आसवन्त ह्वै [8]आसरो गह्यो,
बह्यो फिर्यो ठौर-ठौर पायो न बिस्राम को।
जौ लौ कर ममता ममत मूड बोझ लीनो,
[10]दीनो दण्ड खण्ड खण्ड खेद ठाम ठाम को।
गुरु उपदेस निःकाम औ निरास भए,
नम्रता सहज सुख निज पद नाम को ॥ ४२८ ॥

सत्गुरु चरन कमल मकरन्द[11] रज,
लुभित ह्वै मन मधुकर[12] लपटाने हैं।

---

*पूर्णता को प्राप्त हुए गुरु-सिख की अवस्था का वर्णन है।

१–घर (गृहस्थ) में रहते हुए भी प्रभु के भय में वर्तते हैं, श्रद्धा और प्रेमा-भक्ति के अनन्द के अनन्दी भी हैं। २–सयोग वश प्राप्त हुए भोगों (पदार्थों) को भी भोगते हैं और अफुर समाधि को भी साधते हैं अर्थात् योग-भोग में समान वर्तते हैं। ३–ब्रह्म वीचार का आश्रय, अनेकता में एकता-की धारना और उज्वल वैराग की फबन की छबि में सशोभित हो रहे हैं। ४–आश्चर्य। ५–देहि रहित। ६–तुरियावस्था। ७-सकाम। ८–आश्रय पकड़ा। ९–शिर पर। १०–खण्ड खण्ड और जगह जगह के दु ख का दण्ड दिया अर्थात् जन्म मरण के चक्कर मे ही रहा। ११–पुष्प रस की धूलि। १२–भौंरा।

अमृत निधान[1] पान अहिनिसि रसिक ह्वै,
अति उन्मत्त[2] [3]आन ज्ञान बिसराने है।
[4]सहज सनेह गेह बिसम बिदेह रूप,
स्वांति बूंद गति सीप सम्पट समाने है।
चरण सरण सुख सागर कटाच्छ करि,
मुकता महांत ह्वै अनूप रूप ठानें है॥ ४२९॥
[5]रोम रोम कोटि मुख मुख रसना अनन्त,
अनिक मनन्तर लौं कहत न आवई।
कोटि ब्रह्मण्ड भार डार तुलाधार[6] बिषय,
तोलिए जौ बार बार तोल न समावई।
चतुर पदार्थ औ सागर समूह सुख,
बिबिध बैकुण्ठ मोल महिमा ना पावई।
समझ न परै करै [7]गौन कौन भौन
मन, [8]पूर्ण ब्रह्म गुरु सबद सुनावई॥ ४३०॥

लोचन पतंग दीप दरस देखन गए,
जोती जोति मिल पुनः ऊतर न आने है।
नाद बाद सुनिबे कौ श्रवण हरण गए,
सुनि धुनि थकित भये न बहुराने है।
चरण कमल मकरन्द रस रसिक ह्वै,
मन-मधुकर[9] सुख सम्पट समाने हैं।
[10]रूप गुण प्रेम रस पूर्ण परम पद,
आन ज्ञान ध्यान रस भरम भुलाने हैं॥ ४३१॥

१-खज़ाना। २-मस्त। ३-और ज्ञान भूला देता है। ४-देहाध्यास रहित हो कर परमाश्चर्य रूप अच्युत प्रेम को, हृदय के डिबे में बन्द कर लेता है जैसे सीप स्वाति बूंद को ग्रहन कर लेता है। ५-एक एक रोम में अनेक मुख, एक एक मुख में अनन्त जिह्वा और उन जिह्वा द्वारा अनेक चौकड़ी प्रयन्त प्रभु यश कहा जाए परन्तु अन्त फिर भी नहीं आता। ६-तकड़ी। ७-मन कौन कौन भवनों में गवन करता है। ८-गुरु, उपदेश द्वारा सुनाता (समझाता) है कि ब्रह्म सर्व व्यापक है। ९-मन-भँवरा। १०-शिष्य ने गुरू देव के रूप दर्शन और प्रेम रस की परम पदवी को प्राप्त कर अन्य भ्रामिक ज्ञान ध्यान के रस को भूला दिया।

[1]प्रथम ही आन ध्यान हानि कै पतंग बिधि,
पाछै कै अनूप रूप दीपक दिखाए हैं।
प्रथम ही आन ज्ञान सुरति बिसरज कै,
अनहद नाद मृग जुगति सुनाए हैं।
प्रथम ही बचन रचन हरि गुंग साज,
पाछै कै अमृत रस अपिओ पिआए है ।
[2]पेख सुन अचवत ही भए बिसम अति,
परमदभुत अश्चर्य समाए हैं॥ ४३२॥

जात सेजासन[3] जौ कामनी जामनी[4] समय,
गुरु जन सुजन की बात न सुहात है।
[5]हिमकर उदित[6] मुदित[7] है चकोर चिति,
एक टक ध्यान कै सम्हारत न गात[8] है।
जैसे मधुकर[9] मकरन्द रस लुभित ह्वै,
बिसम कमल दल सम्पट समात है।
तैसे गुरु चरण शरण चलि जात सिख,
दरस परस प्रेम रस मुस्कात है ॥ ४३३॥

आवत है जांकै भीख मांगन भिखारी दीन,
देखत आधीनहि निरासो न बिडारि है।
बैठत है जांके द्वार आसा को विडार स्वान[10],
अन्त करुणा कै तोरि टूक ताहिं डारि है।
पाइन की पनही[11] रहत [12]परिहिरी परी,
ताहू काहू काज उठ चलत सम्हारि है।

१-गुरु सिख, भ्रमर, मृग और मूक की भान्ति प्रथम ही अन्य ध्यान, अन्य ज्ञान और अन्य बचन रचना का परित्याग कर गुरु दरबार में प्रवेश करता है। २-नेत्र कान और रसना क्रम वार दर्शन देख कर, शब्द सुन कर और अमृत रस पी कर अति आश्चर्य हुए और परम अद्भुत आश्चर्य में समा जाते हैं। ३-शय्या, सेजा। ४-रात्रि ५-चन्द्रमा। ६-प्रकट। ७-प्रसन्न। ८-शरीर। ९-भौंरा। १०-कुत्ता ११-जूता, जुत्ती। १२-त्यागी (छोडी) हुई पड़ी रहिती है।

छाडि अहंकार छार होइ गुरु मार्ग में,
कबहूँ दया कै आन दयाल पग धारि है ॥ ४३४ ॥

*द्रौपदी कौपीन मात्र दई जो मुनीश्वरहि,
तांते सभा मध्य [1]बह्यो बसन प्रवाह जी।
तनिक[2] तन्दुल[3] जगदीश दये सुदामा,
तांते पाए चतुर पदार्थ अथाह जी।
दुखित गजिन्द[4] अर्बिन्द[5] गहि भेट राखै,
तांके काजैं चक्रपाणि[6] आन ग्रसे ग्राह जी।
कहा कोऊ करै कछु होत न काहूँ के किये,
जांकी प्रभु मान लेह सबहि सुख ताह जी ॥ ४३५ ॥

[7]सर्वण सेवा मात पिता की बिसेख कीनी,
तांते गाईयत जसु जगत में ताहू को।
जन प्रह्लाद आदि अन्त लौं अवज्ञा कीनी,
तात घात कर प्रभु राख्यो प्रण वाहू को।
द्वादस बरस शुक जननी दुखित करी,
सिद्ध भए तत् चण जनम है जाहू को।
अकत्थ कथा बिसम जानिऐ न जाय कछू,
पहुँचे न ज्ञान उनमान आन काहूँ को ॥ ४३६ ॥

†खांड खांड कहै जिह्वा न स्वाद मीठो आवै,
अगनि अगनि कहै सीत न बिनास है।
वैद वैद कहै रोग मिटत न काहूं को,
[8]द्रव्य द्रव्य कहै कोऊ द्रवहि न बिलास है।

---

*दुर्वासा ऋषि, नदी में स्नान कर रहा था, उस की कुपीन (लंगोटी) पानी मे वह गई, द्रोपदी ने अपनी साड़ी फाड़ कर कुपीन प्रदान की थी।

†वार्तों से प्रभु प्राप्ति नहीं।

१–वस्त्रों का प्रवाह बह गया, अर्थात् सभा में नग्न ना होने पाई। २–थोड़े से। ३–चावल। ४–एक हाथी जिस को ग्राह ने पकड़ लिया था। ५–कवल। ६–चक्कर है हाथ में जिस के, विष्णु। ७–श्रवण कुमार। ८–धन, माया।

चन्दन चन्दन कहत प्रगटै न सुबास बास,
चन्द चन्द कहै उज्यारो न प्रगास है।
तैसे ज्ञान गोष्ट कहत न रहत पावै,
करनी प्रधान भानु[1] उदति आकास है॥ ४३७॥

[2]हसत हसत पूछै हसि हसि के हसाय,
रोवत रोवत पूछे रोय औ रुवाइ कैं।
बैठे बैठे पूछै बैठि बैठि कैं निकट जाय,
चलत चलत पूछै दहदिसि धाइ कै।
लोग पूछै लोगाचार बेद पूछे बेद बिधि,
जोगी भोगी जोग भोग जुगति जगाइ कै।
जनम मरण भ्रम काहू न मिटाय साकयो,
निःचल भए गुरु चरण समाइ कै॥ ४३८॥

पूछत पथिक तिंह मारग न धारै पग,
प्रीतम कै देस कैसे बातन से जाईऐ।
पूछत है बैद खात औषधि न संजम सै,
कैसे मिटै रोग सुख सहज समाईऐ।
पूछत है सोहागनि कर्म है दोहागनि के,
हृदय बिभचार कत सेजा बुलाईऐ।
गाए सुणे आंखें मीचै पाईऐ न परम पद,
गुरु उपदेस गहि जौ लौ न कमाईऐ॥ ४३९॥

खोजी खोज[3] देखि चल्या जाय पहुँचे ठिकाने,
आलस बिलम्ब[4] कीए खोज मिट जात है।
सेजा समय रमै भर्त्तार वर नारि सोई,
करै जो अवज्ञा न मानै [5]प्रगटत प्रात है।

१–सूर्य। २–हस मुख, हँस हँस कर हँसाने की बातें पूछता है और दूसरों को हँसाता है। ३–खुरा, पाऊं का चिन्ह। ४–देरी। ५–प्रभात हो जाती है।

वर्षत मेघ जल चात्रिक तृप्त पीए,
मोन गहे वर्षा वतीते बिललात है।
[1]सिख सोई सुन गुरु शब्द रहत रहै,
कपट सनेह कीए पाछै पछुतात है ॥ ४४० ॥

जैसे बछुरा बिछुर; परै आन गाय थन,
दुग्ध न पान करै मारत है लात की।
जैसे मानसर त्याग हंस आन सर जात,
खात न मुकता फल [2]भुक्त जो गात की।
जैसे राजद्वार तजि आन द्वार जात जन,
होत मान भङ्ग महिमा न काहू बात की।
तैसे गुरु सिख आन देव की शरण जात,
[3]रह्यो न परत राख सकत न पातकी[4] ॥ ४४१ ॥

*जैसे घनघोर मोर चात्रिक सनेह गति,
वर्षत मेंह असनेह[5] कै दिखावई।
जैसे तौ कमल जल अन्तर बिसन्तर ह्वै,
मधुकर दिनकर हेतु उपजावई।
दादर निरादर ह्वै जीवत पवन सखि,
जल तज मरत; न प्रेमहि लजावई।
कपट सनेही तैसे आन देव सेवक हैं,
गुरु सिक्ख मीन जल हेत ठहरावई ॥ ४४२ ॥

पुरख निपुंसक[6] न जानै बनिता[7] बिलास,
बांझ कहां जाने सुख संतति[8] सनेह को।

---

*कपट स्नेही का वर्णन है।

१–इसी प्रकार सिख वही है जो गुरु शब्द सुन कर, शब्द का धारनीय हो, जो कपट का प्रेम करता है वह अन्त को पछताता है। २–शरीर की जो खुराक है। ३–अन्य देव की शरण में रहा नहीं जाता और ना ही गुरु पातकी को अन्य देव अपने पास रख ही सकता है। ४–पापी। ५–मेह वर्ष जाने पर अप्रीति दिखाता है। ६–हीजड़ा, खुसरा। ७–स्त्री। ८–औलाद, संतान।

गणिका सन्तान को बखान कहा गोत्राचार,
नाहि उपचार[1] कछु कुष्टी की देह को।
आंधरे न जानें रूप रंग न [2]दसन छबि,
जानत न बहरे प्रसन्न असनेह[3] को।
आन देव सेवक न जानै गुरु देव सेव,
[4]जैसे तौ जवासो नहीं चाहत है मेंह को॥ ४४३॥

जैसे भूल बछरा परत आन[5] गाय थन,
[6]बहुरयो मिलत मात बात न सम्हार है।
जैसे आन सर भ्रम आवै मानसर[7] हंस,
देत मुकता[8] अमोल दोख न बिचार है।
जैसे नृप सेवक जो आन द्वार हार आवै,
चौगुणो बढावै न अवज्ञा उर धार है।
सतगुरु [9]असरनि सरनि दयाल देव,
सिक्खन को भूलनो* न रिदै में निहार[10] है॥ ४४४॥

बांझ बधु पुरख निपुंसक न सन्तति होय,
सलिल बिलोए कत माखन प्रगास है।
फनि[11] गहि दुग्ध पियाए न मिटत बिखु,
मूरी खाय मुख से न प्रगटे सुबास है।
मानसर पर बैठे वायस[12] उदास बास,
अर्गजा[13] लेप खर[14] भस्म निवास है।
[15]आन देव सेवक न जानै गुरुदेव सेव,
कठिन कुटेव न मिटत देव दास है॥ ४४५॥

१-इलाज। २—दान्तों की छबि। ३-अप्रसन्नता, । ४-जैसे जवाह (पौदा) वर्षा को नहीं चाहता। ५-अन्य, और। ६—फिर अपनी माता को मिल जाए तो माता, बछरे की उस भूल को (जो दूसरी गौ के नीचे जाने की थी) चितवन नहीं करती। ७-मान सरोवर। ८-मोती। ९—निराश्रयों का आश्रय है। १०-देखता। ११—सर्प। १२—कौआ। १३-सुगन्धि युक्त पदार्थ, इतरआदि। १४-खोता। १५-और देवताओं के सेवक गुरुदेव की सेवा को नहीं जानते क्योंकि देव दासों को (मन मति का) विषम और बुरा स्वभाव मिट नहीं सकता। *पा—भक्ति में प्यार।

जैसे तौ गगण[1] घटा घुमण्ड[2] बिलोकियत[3],
गरजि गरजि बिन बर्खा बिलात है।
जैसे तौ हिमाचल कठोर औ सीतल अति है,
सर्कीऐ न खाय खाए तृखा न मिटात है।
जैसे ओस परत करत है सजल[4] देहि,
राखै चिरङ्काल नाहि ठौर ठहिरात है।
[5]तैसे आन देव सेव त्रिविध चपल फल,
सत्गुरु अमृत प्रवाह निसि प्रात है॥ ४४६॥

[6]बैसनो अनन्य ब्रहन सालग्राम सेवा,
गीता भागवत श्रोता एकाकी कहावई।
[7]तीर्थ धर्म देव यात्रा को पण्डित पूछ,
करत गवन सो मूहूर्त्त सोधावई।
बाहर निकस गर्दभ[8] स्वान[9] [10]सगन कै,
शङ्का उपराजत[11] बहुर घरि आवई।
[12]पतिब्रत गहि रहि सकत न एका टेक,
दुबिधा अच्छित न परम पद पावई॥ ४४७॥

गुरु सिख सङ्गति मिलाप को प्रताप ऐसा,
पतिब्रत एक टेक दुबिधा निवारी है।
पूछत न जोतिक औ वेद तिथि वार कछु,
ग्रह औ नत्त्र की न शंका उरधारी है।
जानत न लगन सगन आन देव सेव,

१—आकाश। २—उमडना। ३—देखी जाती है। ४—स+जल, सहित जल दे। ५—तिसी प्रकार अन्य देवताओं की सेवा त्रिगुणी है और उस का फल भी 'रजो, तमो और सतो' मयी है और नश्वर है परन्तु सत्गुरू और उस की सेवा अमृत का प्रवाह हैं, जो दिन रात चलता है। ६—एक ब्रहान वैष्णव मत का शालिग्राम का अनन्य भाव से सेवा करने वाला। ७—पण्डित को पूछ कर और महूर्त्त सुधवा कर देव यात्रा, धर्म और तीर्थ को जाता है। ८—खोता। ९—कुत्ता। १०—अपशकुन की शङ्का। ११—पैदा हुई। १२—पतिव्रता की भान्ति, जो एक आश्रय का ग्रहन नहीं करता वह द्विचित्ता परम पद को प्राप्त नहीं हो सकता।

सबद सुरति लिव नेहु निरंकारी है।
सिख सन्त वालक श्री गुरु प्रतिपालक ह्वै,
जीवन मुकति गति ब्रह्म विचारी है॥ ४४८॥

नारि भर्त्तार के सनेह पतिव्रता होइ,
गुरु सिख एक टेक पतिव्रत लीन है।
राग नाद बाद सम्बाद पतिव्रता होइ,
बिनु गुरु सबद न कान सिख दीन है।
रूप रङ्ग अङ्ग सर्वङ्ग हेरै पतिव्रता,
आन देव सेवक न दर्सन कीन है।
सुज्जन कुटुम्ब गृह गौण करै पतिव्रता,
आन देव थान जैसे जल बिनु मीन है। ४४९॥

*ऐसी नायका[1] [2]कुंआर पात्र ही सुपात्र भलो,
आस प्यासी माता पिता एकै †नाह[3] देत है।
ऐसी नायका से दीनता कै दोहागनि भली,
पतित पावन प्रिय पांइ लाय लेत है।
ऐसी नायका भलो विरहा वियोग सोग,
लगन सगन सोधे सरधा सहेत है।
ऐसी नायका मात गर्भ में गली भली,
कपट सनेह दुविधा ज्यों [4]राहु केतु है॥ ४५०॥

जैसे जल कूप निकसत है जतन कीए,
सींचियत खेत [5]एकै पहुचत न आन कौ।
पथिक पपीहा प्यासे आस लग ढिग[6] बैठे,
बिन गुण[7] भाजन[8] तृप्त कत प्रान कौ।

---

*कपट स्नेही से अस्नेही (अश्रद्धक) अच्छा है। †पा=काह।
१–कपट भरी स्त्री। २–कवार अधिकार वाली, अर्थात् कवारी। ३–पति। ४–राहु और केतु सम कपट भरा प्रेम करना। ५–एक खेत को ही पहुंचता है दूसरे को नहीं। ६–पास। ७–डोरी। ८–बर्तन।

तैसे ही सकल देव *टेव[१] से रहत नाहि
सेवा कीए देत फल कामना समान[२] कौ।
[३]पूर्ण ब्रह्म गुरु वर्षा अमृत हित,
वर्ष हर्ष देत सर्व निधान कौ॥ ४५१ ॥

जैसे उल्लू दिन समय काहूऐ[४] न देख्यो भावै,
[५]तैसे साध सङ्गति में आन देव सेव कै।
जैसे काग विद्यमान बोलत न काहू भावै,
आन देव सेवक जो बोले [६]अहम्मेव कै।
कटत चटत स्वान प्रीति विप्रीति जैसे,
आन देव सेवक सुहाइ न कुटेव कै।
जैसे कै मराल माल सोभित न बग ठग,
काढीऐ पकर करि आन देव सेव कै॥ ४५२ ॥

जैसे उल्लू अदित्य[७] उदोत[८] जोति को न
आन देव सेवकै न सूझै साधु संग में।
[९]मर्कट मणि माणिक महिमा न जानै,
आन देव सेवक न सवद प्रसंग में।
जैसे तो फणिन्द्र[१०] पय[११] पान महात्मै न जानै,
आन देव सेवक महा प्रसाद अंग में।
बिन हंस वंस बग ठग न सकत टिक,
अगम अगाध सुख सागर तरंग में॥ ४५३ ॥

जैसे तौ नगर एक होत है अनेक हाट[१२],
गाहक असंख्य आवै बेचनु अरु लैन को।

१-स्वभाव। २-(सेवा के) बराबर का फल। ३-पूर्ण ब्रह्म स्वरूप गुरु देव, हेत से अमृत की वर्षा वर्षाते हैं और (शिष्य को प्रसन्नता की वृष्टि द्वारा) सर्व निधियों को दे देते हैं। ४-किसी को भी। ५-तेसे साधु संगति में अन्य देव की सेव वा सेवक नहीं भाता। ६-अहंकार से। ७-सूर्य। ८-प्रकट। ९-वानरा १०-सर्प। ११-दूध। १२-हट्टियाँ।

*पा=सेव।

[1]आपै कछु बेचे अरु बणजु न मागै पावै,
आन पै बिसाहे जाय देखै सुख नैन को।
जां की हाट सकल सामग्री पावै औ बिकावै,
बेचत बिसाहत चहत चित चैन को।
[2]आन देव सेव जाय सत्गुरु पूरे साहु,
सर्व निधान जां कै लेन अरु देन को॥ ४५४॥

बणज ब्योहार बिखय रतन पारख होइ,
रनत जनम की परीक्षा नहीं पाई है।
लेखै चित्र गुप्त सै लेखक लिखारी भये,
जनम मरण की आशङ्का न मिटाई है।
बीर बिद्या महा बली भए हैं धनुष धारी,
हौमै मार न सहज लिव लाई है।
पूरण ब्रह्म गुरु देव सेव कलि काल,
माया में उदासी गुरु सिक्खन जताई है॥ ४५५॥

जैसे आन बिरख सफल[3] होत समय पाइ,
सर्वदा-फलंते सदा फल सु स्वादि है।
जैसे कूप जल निकसत है जतन किये,
गंगा जल मुक्त[4] प्रवाह प्रसादि है।
मृतिका अग्नि तूल[5] तेल मिलि दीप दिपै,
जग मग जोति ससिअर[6] बिसमाद है।
तैसे आन देव सेव किये फल देत जेत,
[7]सत्गुरु दरस न सासना जमादि है॥ ४५६॥

१-जिस दुकान पर बेचना और वणजना मॉगना नहीं पाता वह अन्य दुकान पर चला जाता है। २-सत्गुरू पूरे शाह (धनिक) हैं, सत्सगति हट्टी है और सर्व-सुख समग्री से भरी हुई देख कर! अन्य देव के सेवक भी गुरू शरण को प्राप्त होते हैं। ३-फल सहित। ४-खुल्हा, आम। ५-रूई। ६-चन्द्रमा। ७-सत्गुरु देव के दर्शन से ही यमादिको की ताड़ना नहीं रहिती।

[1]पंच प्रपञ्च कै भए है महा भारत से,
पंच मारि काहूऐ न दुविधा निवारी है।
गृह तजि नव नाथ सिद्धि योगीश्वर हुइ, न
त्रिगुण अतीत[2] निज-आसन[3] में तारी है।
वेद पाठ पढ़ पढ़ पण्डित प्रबोधै जगु,
सकै न ससोध[5] मन तृपना न *मारी है।
पूर्ण ब्रह्म गुरु देव सेव साध संग,
[6]शब्द सुति लिव ब्रह्म बीचारी है ॥ २५७ ॥

पूर्ण ब्रह्म सम[7] देख समदरसी[8] ह्वै,
अकथ कथा बीचार हारि[9] मोनि धारी है।
होन हार होइ तांते आसा ते निरास भए,
कारण करण प्रभु जानि हौमै मारी है।
[10]सुक्ष्म स्थूल ओङ्कार कै अकार होइ,
[11]ब्रह्म बिबेक बुद्धि भए ब्रह्मचारी है।
[12]बट बीज को बिथार ब्रह्म कै माया छाया,
गुरू मुखि एक टेक दुबिधा निवारी है ॥ ४५८ ॥

जैसे तौ सकल द्रुम[13] आपनी आपनी भान्ति,
चन्दनु चन्दन करै सर्व तमाल[14] कौ।

१-महाभारत ग्रन्थ मे पांच पाण्डवों का वर्णन आता है जो महा वलि हुए हैं, परन्तु किसी ने पंच कामादिको को मार कर द्वैत को निवृत नहीं किया। २-रहित। ३-वाहिगुरु। ४-ज्ञान देता है। ५-सम्+ओध,=अच्छी तरह प्रवृत हुआ, वा स=ओद, भीगा हुआ अर्थात अपने मन को नहीं लगाता, औरों को समझाता है। ६-शब्द की ज्ञात में वृति लगा कर ब्रह्म के विचार वान हुए हैं। ७-समान, सर्व व्यापक। ८-समान दृष्टि वाले। ९-(जगत की ओर से) हार कर। १०-११-ब्रह्म वीचार की बुद्धि द्वारा ये जान कर कि समस्त सूक्ष्म और स्थूल अकार (आकृतियां) ॐकार से हुए हैं, ब्रह्म में चलने वाले हुए हैं। १२-'बटक बीज' की भान्ति माया में ब्रह्म की छाया (प्रतिबिंब) से जगत् का विस्थार जान कर गुरुमुख ने द्वैत को दूर कर एक का आश्रय लिया है। १३-वृक्ष। १४-तमाल का वृक्ष।

*=हारी।

तांबा ही सै होत जैसे कञ्चन कलङ्क डारैं,
पारस परस क्षार सकल उजाल कौ।
सरिता अनेक जैसे विविध प्रवाह गति,
सुरसरि[1] संगम सम जल सुढाल को।
तैंसे ही सकल देव टेव[2] में टरत नाहि,
[3]सतगुरु अशरणि शरण अकाल कौ॥ ४५९॥

[4]गिरगट के रङ्ग कमल समेह बहु,
बन बन डोलै कौआ कहावौ सवान[5] है।
घर घर फिरत मजार[6] अहार पावै,
वेष्या बिसनी[7] अनेक सती न समान है।
सर सर भ्रमत न मिलत मराल माल,
जीव घात करत न मोनी बग ध्यान है।
[8]बिनु गुरु देव सेव आन देव सेवक हुइ,
माखी त्याग चन्दन दुर्गन्धि असथान है॥ ४६०॥

आन हाट के हटुआ[9] लेत है घटाय मोल,
देत है चढ़ाय डहकत जोई आवे जी।
तिन से वणज किये बिढ़ता[10] न पावै कोऊ,
टोटा को वणज पेखि पेखि पछुतावै जी।
काठ की हांडी जैसे चढै एकै वारि,
(कोऊ) कपट व्योहार किए आपहि लखावै जी।

१-गंगा। २-स्वभाव। ३-सद्गुरू अशरणों को शरण में ले कर अकाल पुरुष से मिला देते हैं। ४-कृकलास, कृला। जैसे कृकलास कँवल-समान रंग धारन करता है, परन्तु वह कँवल नहीं हो सकता। कौआ जंगलों में घूमता फिरता है, परन्तु राज हंस तो नहीं बन सकता? ५-राज हंस स्वयन=सु+अयन= सुन्द्र चाल वाला, (Swan)। दे: महा कोष अथवा बाज, सं० श्येन, दे अमर कोष। ६-बिल्ला, सतोपी (सती) नहीं हो सकता। ७-विषय-भोग युक्त, वेष्या। ८-गुरू देव की सेवा विना अन्य देवतायों की सेवा, मखिका को भान्ति चन्दन को त्याग कर दुर्गन्धि स्थान पर जाने के तुल्य है। ९-हटवानिया। १०-लाभ।

सतगुरु साह गुण बेच अवगुण लेत,
सुनि सुनि सुजस जगत उठि धावै जी ॥ ४६१ ॥

पूर्ण ब्रह्म समसर दुतिया[1] नास्ति[2],
प्रतिमा[3] अनेक होइ कैसे बन्याई[4]।
घटि घटि पूर्ण ब्रह्म देखै सुनै बोलै,
[5]प्रतिमा में काहे न प्रगट ह्वै दिखावई।
[6]घरि घरि घरनि अनेक एक रूप हूते,
प्रतिमा सकल देव स्थल हुइ न सुहावई।
[7]सत्‌गुरु पूर्ण ब्रह्म सावधान सोई,
एक जोति मूर्ति युगल हुइ पुजावई ॥ ४६२ ॥

*मानसर त्याग आन सर जाय बैठे हंस,
खाय जल जंतु हंस वंसहि लजावई।
सलिल बिछोह भए जीवत जौ रहै मीन,
कपट स्नेह कै स्नेही न कहावई।
बिनु घन[8] बूंद जौ अनत[9] जल पान कर,
चात्रिक संतान विषय [10]लांछन लगावई।
[11]चरण कमल अलि गुरुसिख मोख होइ,
आन देव सेवक हुइ मुक्ति न पावई ॥ ४६३ ॥

जौ कोऊ मवास[12] साधि[13] भूमिया[14] मिलावै आनि,
तां पर प्रसन्न होत निरख नरिन्द[15] जी।

---

*गुरु शरण को त्याग कर अन्य देवताओं की शरण जाना गुरु सिखी को कलङ्क लगाना है।

१-दूजा। २-नहीं है। ३-मूर्ति। ४-(बराबरी) बन सकती है? ५-मूर्ति में प्रकट हो कर क्यों नहीं देखाता? ६-घड़ घड़ कर (घरनि) घाड़ू (मूर्ति कार) एक मिट्टी वा पथर के अनेक रूप दिखावता है। ७-सचेत सत्गुरू और पूर्ण ब्रह्म की एक ही ज्योति है परन्तु मूर्ति द्वि हो कर पूजा करा रहे हैं। ८-बादल। ९-और। १०-कलङ्क। ११-गुरू शिष्य भौंरा गुरू शरण कवल में ही मोक्ष पा सकता है, अन्य देवताओं का सेवक हो कर मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। १२-बाकी, विद्रोही। १३-सोध कर। १४-रजवाड़ा, जागीरदार। १५-राजा।

जौ कोऊ नृपति[1] भृत[2] भाग भूमिया पै जाइ,
धाय मारे भूमिया सहित ही रजिंद[1] जी।
आन को सेवक राजद्वार जाइ सोभा पावै।
सेवक नरेश[1] आन[3] द्वार जात [4]निन्द जी।
तैसे गुरुसिख [5]आन अनत सरण गुरु,
[6]आन न समर्थ गुरु सिख प्रति विंद जी॥ ४६४॥

*जैसे उपवन[7] आम्ब, सेबल[8] है [9]ऊच नीच,
नि:फल सफल प्रगट पहिचानिऐ।
चन्दन समीप जैसे बांस औ बनास्पति,
[10]गन्ध निर्गन्धि शिव शक्ति कै जानिऐ।
सीप सङ्ख दोऊ जैसे रहित समुद्र बिषय,
स्वांति बूंद संतति न समत विधानिऐ॥
तैसे गुरुदेव आन देव सेवकन भेद,
[11]अहंबुद्धि निम्रता अमान जगि मानिऐ॥ ४६५॥

†जैसे पतिव्रता पर पुरुषै न देखियो चाहै,
पूर्ण पतिव्रता कै पति ही में ध्यान है।
सर, सरिता, समुद्र चात्रिक न चाहै काहू,
आस घन बूंद प्रिय प्रिय गुन ज्ञान है।
दिनकर[12] ओर[13] भोर[14] चाहत नहीं चकोर,
मन बच[15] कर्म[16] हिमकर[17] प्रिय प्राण है।

---

*गुरू देव सेवक और आनदेव सेवक का भेद।
†गुरू सिख आन देव सेव रहित है।
१-राजा। २-नौकर। ३-दूसरे के। ४-निन्दा योग है। ५-लाता है। और को गुरु शरण में। ६-सिख को गुरु बिना अन्य कोई रक्षक नहीं जाना जाता। ७-बगीचा। ८-सिम्बल वृक्ष। ९-आम नीचा और सिम्बल ऊचा। १०-सुगन्धि भेद से बनास्पति शिव (कल्याण, उत्तम) रूप है और निर्गन्धि भेद से बास शक्ति (छलरूप, घटिया) रूप है। ११-देव सेवक अहंकारी है और गुरू सेवक नम्र और मान रहित माना जाता है। १२-सूर्य। १३-तरफ। १४-सुबह, प्रात काल। १५-वाणि। १६-शरीर। १७-चांद।

तैसे गुरु सिख आन देव सेव रहित (पै),
[1]सहज स्वभाव न अवज्ञा अभिमान है ॥ ४६६ ॥

*दोइ दर्पन[2] देखै एक से अनेक रूप,
दोइ नाव पाव धरै पहुंचै न पारि है।
[3]दोइ दिशा गहे गहाए से हाथ पाव टूटे,
[4]दुराहे दुचित होइ भूलि पगु धारि है।
दोइ भूप[5] ताके गांव प्रजा न सुखी होत,
[6]दोइ पुरुषन की न कुलवधू[7] नारि है।
गुरसिख ह्वै आन देव सेव टेव गहै,
सहै जम दण्ड धृग जीवन संसार है ॥ ४६७ ॥

जैसे तौ बिरख मूल संचिऐ सलिल ताते,
साखा साखा पत्र पत्र करि हरिओ होइ है।
[8]जैसे पतिव्रता पतिव्रत सति सावधान,
सकल कुटुम्ब सु-प्रसन्न धन्य सोइ है।
[9]जैसे मुख द्वार मिष्टान पान भोजन के,
अङ्ग अङ्ग तुष्टि तुष्टि अवलोइ है।
तैसे गुरू देव सेव एक टेक जांहि, ताहिं
[10]सुर नर बरंब्रुह कोटि मध्ये कोइ है ॥ ४६८ ॥

---

*अन्यदेव का सेवक बनने पर गुरु सिख को यम-दण्ड सहन करना ड़ता है।

१-शान्ति स्वभाव वाला अभिमान रहित और अवज्ञा (पाप) रहित हैं। -शीशा। ३-दोनों ओर पकड़वा कर खींचाने से हाथ पैर टूट जाते हैं। -द्वि रास्ते पर खड़ा हो कर द्विचिता हो जाने के कारण गलत कदम रख लेता है। -राजा। ६-दो पुरुष की पत्नि सती नहीं कहाती। ७-पतिव्रता स्त्री। ८-जैसे तिव्रता पतिव्रत के सत्य में सुचेत रहितो है। ९-जैसे मुख से मीठा आदि भोजन ाने से और दूध आदि पीने से शरीर का अङ्ग अङ्ग प्रसन्न और बलवान होता देखा ाता है। १०-देव मनुष्य वर कहने (वर देने) को त्यार होते हैं अर्थात् आज्ञा ानने को तत्पर रहते हैं, परन्तु ऐसा करोड़ों में कोई एक होता है।

[1]सोई पारो खात गात बिबिध बिकार होत,
[2]सोई पारो खात गात होत उपचार है।
सोई पारो परसत[3] कंचनहि[4] सोख लेत,
सोई पारो परस तांमो कनिक[4] धार है।
सोई पारो अगह[5] न हाथ से गहयो जाइ
सोई पारो [6]गुटका ह्वै सिध नमस्कार है।
मानुख जनम पाइ जैसिऐ संगति मिलै,
तैसी पावै पदवी प्राप्त अधिकार है॥ ४६९॥

कूआ को मेंडक[7] निधि जानै कहा सागर की,
स्वांति बूंद महिमा न संख जीय जानई।
दिनकर[8] जोति को उदोत कहा जानै उल्लू,
सेबल[9] से कहा खाय सूआ[10] हित ठानई।
बायस[11] न जानत मराल[12] माल संगति को,
मरकट[13] माणक हीरा न पहचानई।
आन देव सेवक न जानै गुरु देव सेव,
[14]गुंगे बहरे न कह सुन मन मानई॥ ४७०॥

जैसे घाम[15] तीछण तपति अति विषम,
बैसन्तर बिहून सिध करत न ग्रास[16] कौ।
जैसे निसि[17] ओस के सजल होत मेर[18] तिन[19],
बिनु जल पान न निवारत प्यास कौ।

१-वही (कच्चा) पारा खाने से शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं। २-वही (मारा हुआ) पारा खाने से शरीर का इलाज होता है। ३-स्पर्श से। ४-स्वर्ण को। ५—ना पकड़ा जाने वाला। ६-गोली हो कर नमस्कार करने योग हो जाता है। ७—समुद्र की निधियों को मेंडक कहां जान सकता है। ८-सूर्य। ९-सिम्बल वृक्ष। १०-तोता। ११—कौआ। १२-हंस। १३—वानर, बन्दर। १४—मूक का कह कर और बहरा का सुन कर मन मानता नहीं। १५-धूप, गर्मी। १६-भोजन, विना अग्नि से भोजन (त्यार) नहीं हो सकता। १७-रात्रि। १८-पहाड़। १९-तृन, घास।

जैसे है ग्रीषम[1] रुत प्रगटे प्रस्वेद[2] अंग,
[3]मिटत न फूकै बिनु पवन प्रगास कौ।
तैसे आवागवन न मिटैं आन देव सेव,
गुरुमुखि पावैं निज पद के निवास कौ॥ ४७१॥

*आंम की सधर[4] कत मिटत आंमली[5] खाय,
पिता को प्यार न परोसी पहि पाइऐ।
सागर की निधि कत पायत पोपर सै,
दिनकर सर दीप जोति न पुजायऐ।
इन्द्र बरखा समान पुजसि न कूप जल,
चन्दन सुबास न पलास[6] महिकाइऐ।
श्री गुरु दयाल सी दया न आन देव में,
जो खण्ड ब्रह्मण्ड उदय[7] अस्त[8] लौ धाइऐ॥ ४७२॥

गिरत अकास ते परत पृथ्वी पर,
जो गहै आसरा पवन, कवनहि काजि है।
जरत बैसन्तर जौ धाय धाय धूम्र[9] गहै,
[10]निकस्यो न जाय खल बुद्धि उपराज है।
सागर अपार धार बूडत जो फेन[11] गहै,
अन्यथा बीचार पार जैबो को न साज है।
तैसे आवागवन दुखत आन देव सेव,
बिनु गुर शरण न मोक्ष पद राज है॥ ४७३॥

जैसे रूप रंग बिधि पूछै अन्ध; अन्ध प्रति,
आप ही न देखै ताहि कैसे कै दिखावई।

१—गरमी, ज्येष्ट अषाढ़ के दिन। २—मुड़का, पसीना। ३—फूकें मारने से पसीना नहीं मिटता किन्तु पवन के चलने से मिटता है। ४—इच्छा। ५—इमली। ६—छिछरा का वृक्ष। ७—पूर्व, चढ़दा। ८—पश्चम, लहिन्दा। ९—धूआं। १०—जल रही अग्नि में से तो निकला नहीं जाता परन्तु अपनी (मूर्ख) बुद्धि का प्रकटावा ही करता है। ११—झाग।

*पा=आंवन की साध कत।

जैसे राग नाद पूछै बहरो, जो महरा पै,
समझै न आप ताहि कैसे समझावई।
जैसे गुंग; गुंग पै बचन बिबेक पूछै,
बोल न सकत कैसे सबद सुनावई।
बिनु सतगुर खोजै ब्रह्म ज्ञान ध्यान (जो पै),
अन्यथा अज्ञान मति आन पै न पावई ॥ ४७४ ॥

[1]अम्बर बेचन जाय देश दिगम्बर के,
प्राप्त न होइ लाभ सहसो है मूल को।
रतन परीक्षा सीखा चाहे जो आन्धन पै,
रङ्कन पै राज्य मांगै मिथ्या भ्रम भूल को।
गुंगा पै पढ़न जाय जोतक वैद्यक विद्या,
बहरा पै राग नाद अन्यथा[2] अभूल[3] को।
तैसे आन देव सेव दोष मेटि मोक्ष चाहै,
बिनु सत्गुरु, दुख सहै जम सूल को ॥ ४७५ ॥

बीज बोय कालर में निपजै न धान पान,
मूल खोय रोवै पुनः [4]राज डण्ड लागई ॥
[5]सलिल बलोय जैसे निकसत नाहिं घृत,
मटुकी मथनिया[6] हूँ फोरि तोरि भागई।
भूतन पै पूत मांगै होत न सपूती कोऊ,
जीय को परत संसो [7]त्यागै हूँ न त्यागई ॥
बिनु गुर देव आन सेव दुखदायक है,
लोक प्रलोक सोक जाहिं अनुरागई ॥ ४७६ ॥

१-वस्त्र, वा एक अत्युत्तम सुगन्धि युक्त वस्तु, इत्र। २-व्यर्थ है। ३-(यह बात) भूल नहीं है, भाव यथार्थ है। ४—कर, मामला आदि वैसे, ही लग जाता है। ५—पानी मथने से। ६—मथानी, मधानी। ७—भूत चिपट जाय तो त्यागने से भी नहीं त्यागता

जैसे मृगराज[1] तनु[2] जंबुक[3] अधीन होत,
खगपति[4] सुत जाय जुहारत[5] काग है।
[6]जैसे राहु केतु बस ग्रहन में,
सुरतरु[7] शोभ न अर्क[8] बन रवि ससि लाग है।
जैसे काम-धेनु सुत सूकरी स्थन पान,
ऐरापति[9] सुत गर्दभ अग्र भाग है।
तैसे गुरु सिख सुत आन देव सेवक ह्वै,
निहफल जन्म ज्यों [10]वंश में बजाग है॥ ४७७॥

जो पै तूँबरी न डूबे सरिता प्रवाह बिपय,
*बिषम विष तौ न तजत है मन ते।
जौ पै लपटै पाषाण पावक न जरै सूत्र,
जल में लै बोरत रिदै काठोरपन ते।
जो पै गुड़ी उड़ी देखियत है अकास चारी,
बर्षत मेंह वाचियत न बालकन ते।
[11]तैसे ऋद्धि सिद्धि भाउ दुतिया त्रिगुण खेल,
गुरमुख सुख फल नाहि कृतघन ते॥ ४७८॥

†कौडा पैसा रुपया सुनैया[12] को वणज करै,
रतन पारखु हुइ जौहरी कहावई।

१—शेर। २—पुत्र। ३—गीदड़। ४—पक्ष्यों का राजा, गरुड़। ...कार। ६—सूर्य और चन्द्र राहु और केतु के घर में वा ग्रहन में और कल्प वृक्ष ...वन में नहीं शोभता। ७—कल्प वृक्ष। ८—आक। ९—हाथयों का स्वामी, ...इन। १०—उत्तम वश में दोगला (दो बापों का बेटा) पुत्र होता है। ...नमुख पुरुष ऋद्धि सिद्धि, द्वैत-भाव और त्रिगुणी खेल खेलते हैं परन्तु ...पुरुष (गुरु द्वारा) सुखफल प्राप्त करते हैं और कृतघनता के भागी नहीं बनते। ...ण मुद्रा, अशरफीआं।

*पा—बिखमै तौ न।

†गुरू देव का सेवक हो कर अन्य देव का सेवक होना सुपुत्र से कुपुत्र बनने ...ते है।

जोहरी कहाय पुनः कौडा को वणज करै,
पञ्च परवान में पतिष्ठा घटावई।
आन देव सेव गुरु देव का सेवक हुइ,
लोक प्रलोक विषय ऊच पद पावई।
छाडि गुरुदेव सेव आन देव सेवक ह्वै,
निः फल जनम कुपूत ह्वै हसावई ॥ ४७९ ॥

मन बच कर्म कै पतिव्रत करै जौ नारि,
ताहि मन बच कर्म चाहत भतार है।
अभरण[1] शींगार चारु[2] सिहजा संयोग भोग,
सकल कुटुम्ब ही में ताको जय जयकार है।
सहज अनन्द सुख मंगल सुहाग भाग,
सुन्दर मन्दिर छबि शोभत सुचारु है।
सत्गुरु सिखन कौ राखत गृहस्थ में सावधान,
आन देव सेव भाउ दुबिधा निवार है ॥ ४८० ॥

जैसे तौ पतिव्रता, पतिव्रत में सावधान[3],
तां ही ते गृहसुरि[4] ह्वै नायका[5] कहावई।
असन बसन धनधाम कामना पुजावै,
सोभत भृङ्गार चारु सिहजा समावई।
सत्गुर सिखन को राखत गृहस्थ में,
सम्पदा समूह सुख [6]लुडे ते लडावई।
असन[7] बसन[8] धन धाम कामना पवित्र,
आन देव सेव भाउ दुतिया मिटावई ॥ ४८१ ॥

लोग वेद ज्ञान उपदेस है पतिव्रता कौ,
मन बच कर्म स्वामी सेवा अधिकार है।

१—भूषण, गहने। २—सुन्दर। ३—सुचेत्। ४—गृह देवी।
५—प्रधान। ६—लाड लडाता है। ७—अन्न। ८—वस्त्र।

नाम स्नान दान संयम ना जाप ताप,
तीर्थ ब्रत पूजा नेम न तकार[१] है।
होम यग भोग नईवेद[२] नही देवी देव सेव,
राग नाद बाद[३] न सम्बाद आन द्वार है।
तैसे गुरु सिखन में एक टेक ही प्रधान,
आन ज्ञान ध्यान सिमरण बिबचार है ॥ ४८२ ॥

जैसे पतिब्रता को पवित्र घर *बास नात[४],
असन बसन धन धाम लोकाचार है।
तात[५] मात भ्रात सुत सुज्जन कुटुम्ब सखा,
सेवा गुरजन[६] सुख अभरण[७] शिंगार है।
[८]कृत बृति प्रसूत मल मूत्र धारी,
सकल पवित्र जोई बिबिधि अचार है।
तैसे गुर सिखन को लेप न गृहस्थ में,
आन देव सेव धृग जनम संसार है ॥ ४८३ ॥

अदित्य[९] औ सोम भौम[१०] बुध हूं ब्रहस्पति[११],
शुक्र शनीश्चर सतवार बांट लीने है।
तिथि पक्ष मास रुति लोगन में लोगाचार,
एक एकङ्कार को न कोऊ दिन दीने है।
जनम अष्टमी[१२] रामनौमी[१३] एकादशी[१४] भई,
द्वादशी[१५] चतुर्दशी[१६] जनम ए कीने है।

१–देखना अथवा 'नत+कार' नहीं करने योग। २–अर्पण करना, भोग लगाना। ३–झगड़ा। ४–सम्बन्धि वा स्नान। ५–पिता। ६–बड़े लोग। ७–भूषण। ८–घरोगी कार्य करना अथवा प्रसूता हो कर बच्चों का मल मूत्र धारना, इस के विना और विविध प्रकार का अचार धारन करना आदि जो भी कुछ है पतिव्रता के कारण से वे सब पवित्र है। ९–सूर्य, ऐतवार। १०–मंगल। ११–वीरवार। १२–कृष्ण जी का अवतार। १३–राम जी का। १४–विष्णु जी की। १५–वामन जी। १६–नरसिंह जी।

*पा=वात।

परजा[1] उपारजन[2] को न कोऊ पावै दिन,
[3]अजोनी जनम दिन कहो कैसे चीने है ॥ ४८४ ॥

जाको नाम है अजोनी कैसे कै जनम लेत,
*कहा जान व्रत जनमाष्टमी को कीनो है ।
जाको जगजीवन अकाल अविनाशी नाम,
कैसे कै बधिक मारयो अपयश लीनो है ।
निर्मल निर्दोष मोख पद जाकै नाम,
गोपी नाथ कसे ह्वै विरह दुःख दीना है।
[4]पाहन की प्रतिमा को अन्ध कन्ध है पूजारी,
अन्तर अज्ञानमति ज्ञान गुरु हीनो है ॥ ४८५ ॥

सूरज प्रकाश, नास उडगन[5] अगणित ज्यों,
आन देव सेव गुरु देव के ध्यान कै।
[6]हाट बाट घाट ठाट घटै घटै निशि दिन,
तैसे लोक बेद भेद सत्गुर ज्ञान कै।
[7]चोर जार औ जुआर मोह द्रोह अन्धकार,
प्रातः समय शोभा नाम दान इसनान कै ।
[8]आन सर मेडक शिवाल घोघा, मानसर
पूर्ण ब्रह्म गुरु सर्व निधान कै॥ ४८६ ॥

निसि दिन अन्तर ज्यों अन्तर बखानियत,
तैसे आन देव गुरुदेव सेव जानियै।

१–सृष्टि। २–उत्पति। ३–अजन्मा की तिथि कैसे कोई जान सकता है। –पाषाण आदि की मूर्ति को अन्धे शरीर के पूजारी ही पूजते है, जिन के अन्तर अज्ञान मति है और गुरु ज्ञान से हीन हैं। ५–तारे। ६–रात्रि के कारण जैसे दुकानों, रास्तों, दरिया के घाटों (पतण) पर से गमनागमन न्यून हो जाता है। ७–जैसे अन्धकार में चोर लूट लेते हैं, यार मोह लेते हैं और द्यूतकार ठग लेते हैं। परन्तु प्रात समय (वह भाग जाते हैं और) नाम दान स्नान की ही शोभा होती है। ८–अन्य सरोवरों पर डड्डू शिवाल (जाला) और घोघा आदि हो सकते हैं परन्तु मानसर पर नहीं, तिसी प्रकार देवता आदि के पास तो केवल तुच्छ पदार्थ ही हो सकते हैं परन्तु गुरूदेव तो सर्व निधियों के स्वामी हैं ? *पा=तह।

निशि अन्धकार बंहु तारिका चमत्कार,
दिन दिनकर[1] एकंकार पहिचानिये,
निसि अन्धयारी में [2]विकारी है विकार हेत,
प्रात: समय नेह निरंकारी उनमानिये।
[3]रैन सैन समय ठग चोर जार ह्वै अनीति,
राज नीति रीति प्रीति वासुर[4] वखानिये ॥ ४८७ ॥

*निस दुर्मति ह्वै अधर्म कर्म हेतु,
गुरूमति वासर सुधर्म कर्म है।
दिनकर[5] जोति को उदोत[6] सब किछु सूझ,
निस[7] अन्धयारी भूले अमित भ्रम है।
[8]गुरुमुख सुख फल दिब देह दृष्टि ह्वै,
आन देव सेवक ह्वै दृष्टि चरम है।
[9]संसारी संसारी संग अन्ध कन्धलागै,
गुरुमुख संधि परमार्थ मरम है ॥ ४८८ ॥

जैसे जल मिल बहु वर्ण[10] वनास्पति,
चन्दन सुगन्धि वन चन्दन करत है।
[11]जैसे अग्नि अग्नि धातु जोइ सोइ देखियत,
पारस परस जोति कञ्चन धरत है।

१-सूर्य। २-विकारी, विकार के हितु होते हैं। ३-रात्रि समय चोरी यारी और ठगी आदि की अनीति होती है परन्तु दिन को राज नीति से प्रीति होती है, भाव राज भय होता है। ४—दिन को। ५-सूर्य। ६-प्रकट, प्रकाश से। ७-रात्रि। ८-गुरुमुख की सुख फल (गुरुमति) से देह में दिव्य दृष्टि हो जाती है, परन्तु अन्य देव के सेवक होने से चर्म दृष्टि (मन्द दृष्टि) ही रहती है। ९-संसारी अन्धी दीवारों से ही लगे हुए हैं अर्थात् संसार के (संसारी संग) अन्य देव की पूजा के हाव भाव में ही फंसे हुए हैं, परन्तु गुरुमुख प्रभु की मिलावनी के भेद में लगे हुए हैं। १०-किस्म की। ११-अग्नि से धातु पिगल जाने वा अग्नि रूप होने पर भी कुछ समय बाद अपने यथार्थ रूप में ही दीखने लगती है, परन्तु पारस के स्पर्श से स्वर्ण हो जाती है। *उपरोक्त दो कवितों का स्पष्टिकरण।

तैसे आन देव सेव सिटित कुटेव[1] नहीं,
सत्गुरु देव सेव भयजल तरत है।
गुरुमुख सुख फल महात्म अगाध बोध,
नेति नेति नेति नमो नमो उचरत है ॥ ४८६ ॥

प्रगट संसारि बिभचार करै गनिका, पै[2]
ताहि लोग बेद अरु ज्ञान की न कान[3] है।
कुलाबधु[4] छाडि भ्रतार आन द्वार जाय,
लांछन[5] लगावै कुल-अंकुश[6] न मानि है।
[7]कपट स्नेही बग ध्यान आन सर फिरै,
मानसर छाडै हंस वंस में अज्ञानि है।
[8]गुरुमुख मनमुख दुर्मति गुरुमति,
पर तन धन लेप निर्लेप ध्यान है ॥ ४६० ॥

पान कपूर लौंग चर[9] कागै आगै राखै,
विष्टा बिगन्ध खात अधिक सयान कै।
बार बार स्वान[10] जौ गंगा स्नान करै,
टरै न कुटेव[11] [12]देव होत न अज्ञान कै।
सांपहि पय[13] पान मिष्टान्न महा अमृत कै,
उगलत कालकूट[14] हौमै अभिमान कै।
तैसे मानसर[15] साधु संगत मराल[16] सभा,
आन देव सेवक तकत बग ध्यान कै ॥ ४६१ ॥

१–भैड़ा स्वभाव। २–पर, परन्तु। ३–कनोड़, डर। ४–उत्तम कुल की स्त्री। ५–कलंक। ६–कुल का कुण्डा, डर। ७–कपटी प्रेमी, वक-ध्यानी अन्य सरोवरों (देवतायों) पर फिर सकता है, यदि हस मानसरोवर को त्याग दे तो हस वश में अज्ञानी कहलाता है। ८–गुरुमुख गुरुमति का धारनीय है और मनमुख दुर्मति का, जिस के कारण मनमुख पर तन, धन में सलिप्त है और गुरूमुख निर्लेप के ध्यान में मग्न है। ९–चोगा। १०–कुत्ता। ११–मन्दस्वभाव। १२–अज्ञानता करके देवता नहीं वन सकता। १३–दूध। १४–जहर, विप। १५–सत्संगत। १६–हस।

*चकई चकोर अहिनिसि ससि भानु ध्यान,
जाहीं जाहीं रंग रचियो ताहीं ताहीं चाहै जी।
मीन औ पतङ्ग जल पावक प्रसंग हेत,
टारी न टरत टेव ओर निरबाहै जी।
मानसर आनसर हंस बग प्रीति रीति,
उत्तम औ नीच न समान समता है जी।
तैसे गुरुदेव आन देव सेवकन भेद,
समसर न होत समुन्द्र सरिता है जी॥ ४६२॥

[1]प्रीतिभाय पेखै प्रतिबिम्ब चकई ज्यों निसि,
गुरुमति आपा आप चीनि पहिचानिऐ।
[2]बैर भाय पेख परछाहीं कूपन्तर[3] परै,
सिंह दुर्मति लग दुबिधा कै जानिऐ।
गौ सुत अनेक एक संग हिलमिल रहे,
स्वान[4] आन देखत विरुद्ध युद्ध ठानिऐ।
गुरुमुख मनमुख चन्दन औ बांस विधि,
[5]बरन के दोषी बिकारी उपकारी उनमानिऐ॥ ४६३॥

[6]कोऊ जो बुलावै कहि स्वान मृग सर्प कै,
सुनत रिसाय धाय गारि मारि दीजिऐ।

१–जैसे चकई, रात्रि को अपनी परछाईं को पति की परछाईं जान कर प्रीतिभाव से देखती है, तैसे ही गुरुमुख, गुरमति द्वारा आपने आप को पहिचान कर वाहिगुरू को पहिचानते हैं। २–शेर कूप में अपनी परछाईं को वैरभाव से देखता (दूसरा शेर समझ कर) है, और कूंए में छलांग लगा देता है, वैसे ही मनमुख द्वैत भाव से अपने आप को नष्ट कर लेता है। ३–कूप+अन्तर, कूप में। ४–कुत्ता। ५–गुरुमुख चन्दन की भान्ति उपकारी और मनमुख बांस की तरह 'बरन' कुल-दोषी और विकारी है। ६–यदि मनुष्य को कुत्ता, मृग और सर्प कहि कर पुकारा जाय तो वह गाली देता है अथवा मारने को उद्यत हो जाता है परन्तु वह है इन से भी नषिद्ध, आगे की पंक्तियों में दरसाते हैं।

*गुरुमुख और मनमुख के स्वभाव का भेद।

स्वान स्वासि काम लाग जामनी[1] जागत रहै,
नादहि[2] सुनाय मृग प्राण हानि कीजिऐ।
[3]धुनि मन्त्र पढ़ै सर्प अर्पदेत तन मन,
दन्त हंत होत गोत लाज गहि लीजिऐ।
[4]मोहन भक्तिभाव शब्द श्रुति हीन,
गुरु उपदेश बिनु धृग जग जीजिऐ॥ ४६४॥

जैसे घरि लागै आग जागि कूआ खोदयो चाहै,
कारज न सिद्ध होय रोय पछुताइऐ।
जैसे तौ संग्राम[5] समय सीखियो चाहै बीर विद्या,[6]
अन्यथा उद्यम जैत[7] पदवी न पाइऐ।
जैसे निसि सोवत संगाती[8] चल जात,
पाछै भोर[9] भए भार बांध चले कत जाइऐ।
[10]तैसे माया धन्ध अन्ध अवधि बिहाय जाइ,
अन्तकाल कैसे हरिनाम लिव लाइऐ॥ ४६५॥

जैसे तौ चपल जल अन्तर न देखियत,
पूर्ण प्रकाश प्रतिबिम्ब[11] रवि[12] ससि[13] को,
जैसे तौ मलीन दर्पन में न देखियत,
निर्मल बदन स्वरूप उरवसि[14] को।
जैसे बिनु दीप न समीप को बिलोकियत[15],
[16]भवन भयान अन्धकार त्रास[17] तस[18] को।

१-रात्रि। २-घण्डाहेड़ा शब्द। ३-बीन की ध्वनी और गारुड़ी मन्त्र द्वारा। ४-प्रभु की भक्तिभाव (स्वान की भान्ति) शब्द की ज्ञात (मृग की तरह) और गुरोपदेश (सर्प मन्त्र) के बिना मनुष्य वा सिख का जगत् मे जीवना धृग है। ५-युद्ध। ६-बहादुरों की विद्या। ७-जित। ८-साथी। ९-प्रात १०-माया के अन्धे धन्धों में आयुः व्यर्थ व्यतीत जाय तो अन्त समय हरिनाम में कैसे वृति लग सकती है। ११-परछाईं। १२-सूर्य। १३-चन्द्रमा। १४-उर्वशी, एक अप्सरा का नाम। १५-दीखता। १६-घर में अन्धकार का भय और चोर का डर (नहीं जाता)। १७-डर। १८-तसकर, चोर।

तैसे माया भ्रम कै अधम अच्छाद्यो मन,
सत्गुर [1]ध्यान सुखदा *न प्रेम रस को ॥ ४६६ ॥

जैसे एक समय द्रुम सफल सपत्र पुनः,
एक समय फूल फल पत्र गिरजात है।
सरिता[2] सलल[3] जैसे कबहूं समान वहै,
कबहूं अथाह अति प्रबल दिखात है।
एक समय जैसे हीरा होत जीरनांबर[4] में,
एक समय कञ्चन जढ़े जगमगात है।
[5]तैसे गुरु सिख राज कुमार जोगेश्वर है,
माया धारी भारी जोग जुगति जुगात है ॥ ४६७ ॥

[6]अशन बसन संग लीने औ वचन कीने,
जनम लै साधु संग श्री गुरु अराध है।
ईहां आय, बिसराय, दासी[7] लपटाय,
पंच दूत भूत भ्रम अमित असाध है।
साच मरणो विसार, जीवन मिथ्या संसार,
समझै न जीत हार सुपन समाध है।
औसर होय है वतीत, लीजिऐ जनम जीत,
कीजिऐ साध संग प्रीति अगम अगाध है ॥ ४६८ ॥

सफल जनम गुर चरण शरण लिव,
सफल दृष्टि गुर दरस अलोइऐ[8]।
सफल सुरति गुर शब्द सुनत नित,
जिहवा सफल गुननिधि गुन गोइऐ[9]।

१-प्रेम रस का ध्यान सुखदायी नहीं होता। २-नदी। ३-पानी। ४-पुराना वस्त्र। ५-तैसे ही गुरसिख कभी राज पुत्र हो कर भारी मायाधारी होता है, कभी योगेश्वर हो कर योग युगति में जुड़ता है। ६-जीव ने, वाहिगुरू से अन्न वस्त्र ले कर वचन दिया था कि मैं जन्म ले कर साधु संगति और गुरु परमेश्वर की अराधना करूंगा, परन्तु। ७-माया। ८-देखा जाय। ९-गाया जाय। *पा=नान।

सफल हसत गुर चरण पूजा प्रणाम,
सफल चरन प्रदच्छना कै पोइऐ[१]।
संगम सफल साधु संगति सहज घर,
हृदय सफल गुरमति कै समोइऐ[२] ॥ ४६६ ॥

*कत पुनः मानुस जनम कत साधु संग,
निसि दिन कीर्तन समय चल जाइऐ।
कत पुनः दृष्टि दरस ह्वै परस पर,
भावनी भक्तिभाय सेवा लिव लाइऐ।
कत पुनः राग नाद बाद संगीत रीत,
श्री गुरु शब्द धुनि सुन पुन गाइऐ।
कत पुनः कर कृतास[३] लेख मसवानी[४],
श्री गुरु शब्द लिख निजपद[५] पाइऐ ॥ ५०० ॥

जैसे तौ पलाश पत्र[६] [७]नागबेल मेल भए,
पहुँचत कर[८] नरपति[९] जग जानिऐ।
जैसे तौ [१०]कुचील नील वर्ण वर्ण विषय,
हीर चीर संग निर्दोष उनमानिऐ।
सालग्राम सेवा समय महा अपवित्र संख,
परम पवित्र जग भोग विषय आनिऐ।
[११]तैसे मम काग साधु संगति मराल माल,
मारि न उठावत-गावत गुरु वाणिऐ ॥ ५०१ ॥

१–चलिए। २–समाने से। ३–कागज़। ४–स्याही। ५ स्वरूप, आत्मपद। ६–ढाक, छिछरे के पत्ते। ७–पान पत्र से ८–हाथ। ९–राजा। १०–मैला, अपवित्र। जैसे नीला रंग, रगों में अपवित्र गणा जाता है परन्तु नीले वस्त्र में हीरा बांधने से वह (नीला रंग) विदोंष माना जाता है। ११–इसी प्रकार मैं काक को 'साधु संगति, जो हसों की माला है, गुरुवाणी गावते हुए को मार कर नहीं उठावती।

*मनुष्य जन्म वार वार कहां ?

जैसे जल मध्य मीन महिमा न जानै पुनः,
जल बिन तलफ तलफ मरि जात है।
जैसे बन बस्त महात्मै न जानै पुनः,
पर बस भए खग[1] मृग अकुलात है।
जैसे प्रिय[2] संगम[3] को सुखहि न जानै त्रिय,
बिछुरत बिरह बृथा[4] कै बिललात है।
तैसे गुरु चरण शरण [5]आत्मा अचेत,
[6]अन्तर परत स्मृत पछुतात है॥ ५०२॥

भक्त [7]वत्सल सुनि होत हूँ निराश रिदै,
पतित पावन सुनि आशा उरिधार हूँ।
अतर्यामी सुनि कंपत हूं अन्तर गत,
दीन कै दयाल सुनि भय भ्रम टार हूँ।
जलधर[8] संगम कै अफल सेंबल द्रुम[9],
चन्दन सुगन्धि सम्बन्ध[10] मलगार[11] हूँ।
अपनी करनी कर नरक हूँ न पावों ठौर,
तुमरे बिरद[12] कर आश्रो सम्भार हूं॥ ५०३॥

जौ हम अधम कर्म कै पतित भए,
पतित पावन प्रभु नाम प्रगटायो है।
जो भए दुखित अरु दीन [13]परचीन लगि,
दीन दुख भंजन बिरद[12] बिरदायो है।
जो ग्रसे अर्क-सुत[14] नरक निवासी भए,
नरक निवारण जगत् यश गायो है।

१—पक्षी। २—पति। ३—मिलाप। ४—पीड़ा। ५—मन (अवेसला) अज्ञानता में रहता है। ६—विछोड़ा पड़ जाने पर गुरुदेव को स्मरण करता है और पछुताता है। ७—भक्त वत्सल=भक्तों का प्यारा। ८—बादल। ९—वृक्ष। १०—मेल से। ११—अगर चन्दन। १२—ख्याति, यश, स्वभाव, धर्म, संः='विरुद'। १३—पूर्वले कर्मों से। १४—अर्क+सुत, सूर्य पुत्र=यम।

गुण किये गुण सब कोऊ करै कृपा निधान,
अवगुण किये गुण तोही बनयायो है ॥ ५०४ ॥

जैसे तो अरोग भोग सोगै नाना प्रकार,
वृथावंत[1] खान पान रिदय न हितावई[2] ।
जैसे महषि[3] सहन शील कै धीरज धुजा,
अजया[4] में तनक कलेजो[5] न समावई ।
जैसे जोहरी बिसाहै[6] बेचै हीरा माणकादि,
रङ्क पै न राख्यो परे जोग[7] न जुगावई[8] ।
[9]तैसे गुरु परचे पवित्र है पूजा प्रसाद,
अपच[10] अपरचे दुसह दुख पावई ॥ ५०५ ॥

जैसे विष तनुक[11] ही खात मरि जात तात,
[12]गात मुरझात प्रतिपालि वर्षन की ।
महषि[13] दुहाय दूध राखिए भाँजन[14] भरि,
परत कांजी की बूंद बात न रखन की ।
जैसे कोटि भार तूल[15] रञ्चक चिनग परे,
होत भस्मात छिन में अकर्षण[16] की ।
[17]तैसे परतन परधन दूषना बिकार किये,
हरै निधि सुकृत सहज हर्षन की ॥ ५०६ ॥

चन्दन समीप बसि महिमा न जानी बांस,
आन द्रुम[18] दूरहुँ भए [19]बासना कै बोहे है ।

१—रोगी । २—अच्छा लगता । ३—भैंस । ४—बकरी । ५—धैर्य । ६—वणजता है, खरीदता है । ७—योग्य नहीं । ८—जोड़, हिसाब का जोड़ । ९—गुरु देव से परिचय पढ़ जाने से पूजा का प्रसाद पवित्र है (खाने के योग्य है) और अपरिचय से वह प्रसाद अपच और दुसह दुखदाई है । १०—ना पचने योग्य । ११—थोड़ा सा । १२—वर्षों का पाला हुआ शरीर मुरझा जाता है । १३—भैंस । १४—बर्तन । १५—रूई । १६—खींची हुई, इकट्ठी की हुई । १७—पर स्त्री गमन और पर धन चोराना आदि दोष और विकार, पुन्य, शांति और प्रसन्नता को 'हरै' नष्ट कर देते हैं । १८—दूसरे वृक्ष । १९—सुगन्धि से सुगन्धित ।

दादिर सरोवर में जानी न कमल गति,
मधुकर[1] मन मकरन्द कै बिमोहे है।
तीर्थ बसत बग मरम न जान्यो कछु,
श्रद्धा कै यात्रा हेत यात्री जन सोहे हैं।
निकट वसत मम गुरु उपदेश हीन,
[2]दूरन्तर सिख उर अन्तर लै पोहे है॥ ५०७॥

जैसे परदारा[3] को दर्श दृग[4] देख्यो चाहै,
तैसे गुर दर्शन देख है न चाह कै।
जसे पर निन्दा सुनै [5]सावधान सुरति कै,
तैसे गुर शब्द न सुनै उत्साह कै।
जैसे पर द्रव्य हरण को चरण धावै,
तैसे कीर्तन साध संग न उमाह कै।
[6]उल्लू काग नाग ध्यान खान पान को न जानै,
ऊच पद पावै नहीं, नीच पद गाह कै॥ ५०८॥

जैसे रैन[7] समय सब लोग में संयोग भोग,
चकई वियोग सोग, भाग हीन जानिऐ।
जैसे दिनकर[8] कै उदोत जोति जग मग,
उल्लू अन्ध कन्ध परचीन[9] उनमानिऐ[10]।
सरवर सरिता समुद्र जल पूर्ण है,
तृषावन्त चात्रिक रहित बकबानिऐ[11]।
तसे मिलि साध संग सकल संसार तरयो,
मोहि अपराधी [12]अपराधन बिहानिऐ॥ ५०९॥

१-भौंरा। २—दूर के सिखों ने गुरु उपदेश को हृदय में प्रो (सी) लिया है। ३-पर स्त्री। ४-नेत्र। ५-सुचेत वृति से। ६-उल्लू, सूर्य के गुण को, काक कपूर आदि उत्तम खाने को, नाग (सर्प) दूध पीने के महात्म को नहीं जानता, ये सब ऊच पद को त्याग, नीच पद के ग्राही होते हैं। तैसे ही नीच मनुष्य ऊत्तम रुचिओं को त्याग अधः रुचिओं के ग्राहक होते हैं। ७-रात्रि। ८-सूर्य। ९-विशेष जाना जाता है। १०-विचार से। ११-(प्रिय प्रिय) बोलता है।

जैसे फल फूलहि लैजाय बनराय प्रति,
करै अभिमान कहो कैसे बनिआवै जी।
जैसे मुकताहल[१] समुद्रहि दिखावै जाय,
बार बार ही सराहै शोभा तो ना पावै जी।
जैसे कणी[२] कञ्चन सुमेर सम्मुख राख,
मन में गर्व करै बावरो कहावै जी।
[३]तैसे ज्ञान ध्यान ठान प्राण दै रिझाय चाहै,
प्राणपति सत्गुरु कैसे कै रिझावै जी॥ ५१०॥
जैसे चोआ[४] चन्दन औ घान पान[५] वेचन को,
पूर्व दिशा लै जाय कैसे बनिआवै जी।
पच्छम दिशा दाख[६] दारम[७] लै जाय जैसे,
मृगमद[८] केसर लै उत्तर को धावै जी।
दच्छण दिशा लै जाय लायची लवंगलादि,[९]
बाद आशा उद्यम है बिड़तो[१०] न पावै जी।
तसे गुण निधि गुरु सागर कै विद्यमान,
ज्ञान गुण प्रगट कै बावरो कहावै जी॥ ५११॥
चलनी[११] में जैसे देखियत है अनेक छिद्र,
करै करवा[१२] की निन्दा कैसे बनिआवैं जी।
वृच्छ बबूर[१३] भरपूर वहु सूरन[१४] सैं,
कमलै बटीलो कहै काहूँ न सुखावै जी।
जैसे उपहास करे वायस[१५] मराल[१६] प्रति,
छाडि मुकताहल दुर्गन्धि लिवलावै जी।
तैसे हम महा अपराधी अपराध भरयो,
सकल संसार को विकार मोहि भावै जी॥ ५१२॥

१–मोती। २–स्वर्ण का छोटा कण। ३–यदि कोई मनुष्य ज्ञान, ध्यान करके और प्राण की भेंट दे कर प्रभु को प्रसन्न करना चाहे, वह प्राणों का स्वामी कैसे प्रसन्न हो सकता हैं क्योंकि ये सब स्वतुएँ तो पहले ही प्रभु की ही हैं। ४–इत्र। ५–पान पत्र। ६–अँगूर। ७–अनार। ८–कस्तूरी। ९–लौंग आदि। १०–लाभ। ११–छाननी। १२–कसोरा। १३–कीकर का वृक्ष। १४–शूल, काटे। १५–कौवा। १६–हँस।

अपदा अधीन जैसे दुखित दुहागिनि को,
[1]सहज सुहाग न सुहागिनि को भावई।
विरहिणी विरह वियोग में संयोगनि को,
सुन्दर शिंगार अधिकार न सुहावई।
जैसे तन मांझ बांझ रोग सोग संसो भ्रम,
सौत[2] को सुतह[3] पेख महा दुःख पावई।
तैसे पर तन धन दूषण त्रिदोष भ्रम,
साधन को सुकृत न हृदय हितावई॥ ५१३॥

जल से निकास मीन राखिये पटम्बर[4] में,
बिनु जल तलफ तजत प्रिय प्राण है।
वन सें पकरि पंछी पिंजरी में राखिऐ,
(तौ) बिनु वन मन उनमनो[5] उनमान[6] है।
भामनी[7] भतार बिछुरत अति छीन दीन,
बिलख बदन[8] ताहि [9]भवन भयान है।
तैसे गुरसिख बिछुरत साध संगत सैं,
[10]जीवन जतन, बिनु संगति न आन है॥ ५१४॥

जैसे टूटे नागबेल[11] से विदेश चल जाति,
सलिल[12] संयोग चिरंकाल जुगवत[13] है।
जैसे कूंज बच्चरा त्याग देसन्तर जात,
स्मृत चित निर्विघन रहत है।
गंगोदक[14] जैसे भरि भाजन[15] लै जात यात्री,
सुजस अधार निर्मल निबहत है।

१-दुहागिनि को सुहागिनी का सहज सुहाग नहीं भाता। २-सौंकन। —पुत्र। ४—रेशम का वस्त्र। ५—उदास। ६-वीचारा जाता है। ७-स्त्री। -मुख। ६-घर भयावना लगता है। १०-जीवन का यत्न साध सगति विना और कोई नहीं है। ११-पान पत्र। १२-पानी। १३-रक्खा जा सकता है। ४-गंगा+उदक, गंगा का पानी। १५-बर्तन।

तैसे गुरु चरण शरण अन्तर सिख,
[1]शब्द संगति गुर ध्यान कै जीयत है ॥ ५१५ ॥

[2]जैसे बिन पवन, कवन गुण चन्दन कै,
बिनु मलयागर[3] पवन कत बास[4] है।
जैसे बिनु वैद्य औषधि गुण गोप[5] होत,
औषधि बिनु वैद्य रोगहि न ग्रास[6] है।
जैसे बिनु बोहिथ न पारि परै खेवट[7] से,
खेवट बिहून कत बोहिथ बिश्वास है।
[8]तैसे गुरु नाम बिनु गम्य न परम पद,
बिनु गुरु नाम निहकाम न प्रगास है ॥ ५१६ ॥

जैसे काचो पारो खात उपजे विकार गाति[9],
रोम रोम कै पिरात[10] महा दुख पाइऐ।
जैसे तो लसन खाय मोन कै सभा में बैठे,
प्रगटै दुर्गन्धि नाहि [11]दुरत दुराइऐ।
[12]जैसे मिष्टान्न पान संगम कै माखी लीले,
होत उकलेद खेद संकट सहाइऐ।
[13]तैसे ही अपरचे पिण्ड सिखन की भीचा खाय,
अन्त काल भारी ह्वै यमलोक जाइऐ ॥ ५१७ ॥

जैसे मेघ वर्षत हर्षत है कृषान,
बिलख बदन लोदा[14] लोन गर जात है।
जैसे प्रफुलित ह्वै सकल वनास्पति,

१-शब्द की सगति और गुरु ध्यान से जीवत रहते हैं। २-वायु विना चन्दन का क्या गुण हो सकता है, भाव चन्दन की सुगन्धि विस्तृत नहीं हो सकती। ३-चन्दन। ४-सुगन्धि। ५-छिपा रहता है। ६—नाश। ७-केवट, मल्लाह। ८-तिसी प्रकार गुरू, नाम विना परम-पद को नहीं प्राप्त हो सकता और गुरु विना, नाम और निश्कामता का प्रकाश नहीं हो सकता। ९—शरीर। १०—पीड़ा। ११-छिपाने से छिपता नहीं। १२-मीठे अन्न के साथ मक्खिका निगली जाय तो उल्लटी हो कर दुख और कष्ट सहना पड़ता है। १३-तैसे ही प्रभु के परिचय विना सिखों से भिक्षा खा कर शरीर को पालता है, वह अन्त को दुख उठायगा और यम पुरी को जायगा। १४-जोलाह, वा कृषानों की एक जाती।

सुकृत जवासो[१] आक-मूल मुरझात है।
जैसे खेत सरवर पूर्ण किरष[२] जल,
[३]ऊच थल कालर न जल ठहरात है।
गुरु उपदेश प्रवेश गुरसिख रिदय,
[४]साकत सकृति मन [६]सुनि सचुचात है॥ ५१८॥

जैसे राजा रमत अनेक रमनी सहेत[५],
सकल सपूती एक बांझ न संतान है।
सींचत सलिल जैसे सफल सकल द्रुम,
नि:फल सेंबल सलिल निर्बाण[६] है।
दादिर कमल जैसे एक सरवर विषय,
[७]उत्तम औ नीच कीच दिनकर ध्यान है।
तैसे गुर चरण शरण है सकल जग,
[८]चन्दन बनास्पति बांस उनमान है॥ ५१९॥

जैसे बछुरा बिललात मात मिलवे को,
बन्धन कै बस कछु बस न बसात है।
जैसे तौ बिगारी चाहै भवन गवन कियो,
पर बस परे चितवत ही बिहात है।
जैसे विरहिणी प्रिय संगम सनेह चाहै,
लाज कुल अङ्कुश कै दुर्बल गात है।
तैसे गुर चरण शरण सुख चाहै सिख,
[९]आज्ञा बध रहित बिदेश अकुलात है॥ ५२०॥

१—जवांह, तारामीरा का पौधा। २—खेती वा 'कर्ष' खेती और तलाब संपूर्ण जल को खींच लेते हैं। ३—ऊच स्थल में और ऊषर (कलर) में। ४—साकत= (शक्ति के उपासक) का मन शक्ति (माया) में आसक्त है जिस से गुरु उपदेश सुनने में संकोच करता है। ५—सहित प्रेम के। ६—निर्दोष। ७—कंवल "दिनकर" सूर्य के ध्यान से उत्तम है और डड्ड कीचड़ के प्यार से नीच है। ८—गुरु-चन्दन के समीप गुरुमुख और मनमुख को वनास्पति और बांस की भान्ति विचारना चाहिये अर्थात् गुरुमुख गुरु उपदेश से सुगन्धित होता है और मनमुख वैसे का वैसा रह जाता है। ९—आज्ञा की रस्सी से बांधा हुआ विदेश में दुःखी होता है।

परतन[१] परधन पर अपवाद[२] वाद,
छल छल बंच[३] परपञ्च[४] ही कमात है।
मित्र, गुरु, स्वामि द्रोह, काम क्रोध लोभ मोह,
गोबध[५], बधु बिश्वास, [६]बंश बिप्र घात है।
रोग सोग ह्वै बियोग अपदा दरिद्र छिद्र,
जनम मरण जम लोक बिललात है।
कृतघन बिसख[७] बिषादी कोटि दोषी दीन,
अधम असंख [८]मम रोम न पुजात है॥ ५२१ ॥

[९]बेष्या के शिंगार व्यभिचार को न पारि पाइऐ,
बिनु भर्तार काकी नार कै बुलाईऐ।
बग सेत[१०] जीव घात करि खात केते को,
मोन गहि ध्यान धरे जुगति न पाईऐ।
[११]भाण्ड की भण्डाई बुराई न कहत आवै,
अति ही ढिठाई सकुचत न लजाईऐ।
तैसे पर तन धन दूषण त्रिदोष मम,
अधम अनेक एक रोम न पुजाइऐ॥ ५२२ ॥

जैसे चोर चाहिऐ चढ़ायो सूरी[१२] चौबटा[१३] में,
चहूँटी[१४] लगाय छाडिऐ तो [१५]कहां मार है।
खोट[१६] शरह्यों[१७] निकारयो चाहिऐ नगर हू से,

१–पर स्त्री। २–निन्दा। ३–ठगी। ४–धोखा। ५–गौ का मारना। ६–अपनी वंश और ब्रह्मण का नाश। ७–वि+सख, किसी का मित्र न होना। ८–उपरोक्त प्रकार के मनुष्य मेरे रोम को नहीं पहुच सकते, अर्थात् मैं इन से बहुत पापी हू। ९–बेष्या के शृ गार और व्यभिचार का पार नहीं पड़ता, पत्ति के विना है, किस की स्त्री कह कर पुकारा जाय। १०–चिट्टा, स्फेद। ११—भाण्ड के भाण्डपन की बुराई कहने में नहीं आती, जो अत्यन्त ढीठपने से संकोच नहीं करता और ना ही लज्जायमान होता है। १२–शूली। १३–चौरास्ते, चौंक। १४–चुट्टी लगाना, नाखुनों से काटना। १५–क्या उस के लिये मौत है? १६–खोटा मनुष्य। १७—कानून, न्याय से।

[1]ताकी ओर मोर मुख बैठे कहा †आर है।
महा वज्र[2] भार डारयो चाहिऐ जो हाथी पै,
ताहि सिर छार कै उडाय कहा भार है।
[3]तैसे ही पतित पति कोटि न पासंग[4] भर,
[5]मोहि यम डण्ड औ नरक उपकार है ॥ ५२३ ॥

जो पै चोर चोरी कै [6]बतावै हंस मानसर,
छुट कै न जाय घर, सूरी चाढ़ मारिऐ।
बाटमार बाटपार बग मीन जो बतावै,
तत् च्छण तातकाल मूंड काट डारिऐ।
जो पै परदारा भज [7]मृगन बतावै *बिट,
कान नाक खण्ड डण्ड नगर निकारिऐ।
चोरी बटवारी परनारी कै [8]त्रिदोष मम,
[9]नरक अर्क-सुत डण्ड देत हारिऐ ॥ ५२४ ॥

जात है जगत् जैसे तीर्थ यात्रा निमित,
मांझ ही बस्त बग महिमा ना जानी है।
पूर्ण प्रकाश भास्कर[10] जग मग जोत,
उल्लू अन्ध कन्ध बुरी करनी कमानी है।
जैसे तो बसन्त समय सफल बनास्पति,
निःफल सेंबल बडाई उर आनी है।
मोहि गुरु सागर में चाख्यो नहीं प्रेम रस,
तृपावंत चात्रिक [11]जुगति बकवानी है ॥ ५२५ ॥

१-तिस की ओर मूंह मोर कर बैठ जाने से, क्या उस पर आरा चल जायगा ? —पत्थर, बहुत भार। ३-तिसी प्रकार मेरे पापों के तोल में महा पाप और कोटि ाप पासकू भी नहीं है। ४—पासकू, खाली तराजू में थोड़ा सा झुकाव। ५—यदि झे यम का दण्ड और नरक दिया जाय तो भी प्रभु का उपकार ही है क्योंकि मैं तो इस ान का भी अधिकारी नहीं हूँ। ६-मानसर के हंस को चोर बतावै। ७-मृगों को वेट' लंपट कहे, इस से तो वह बच नहीं सकता। ८-मेरे में तीनो दोष हैं। ९-अर्क-त-यमराज मुझे दण्ड देता हुआ हार जायगा, क्योंकि मेरे में अत्याधिक पाप हैं। ०-सूर्य। ११-व्यर्थ बोलने में लगा रहा। *पा=बिटकान। †अरबी=लज्जा।

[1]जैसे गजराज गाज मारत मनुष, सिर
डारत है छार ताहि कहत अरोग जी।
जैसे सुआ[2] पिंजरे में कहत बनाय बातें,
पेख सुन कहे तांहि [3]राज गृह जोग जी,
तैसे सुख सम्पति मदोनमत्त[4] पाप करै,
ताहि कहै सुखिया रमत रस भोग जी।
[5]जति सति औ संतोषी साधन की निन्दा करै,
उलटोई ज्ञान ध्यान है अज्ञानि लोग जी॥ ५२६

सवैया॥

जौ गवै[6] बहु बूंद चित्तन्तर,
सनमुख सिन्ध शोभा नहीं पावै।
जौ बहु उडै खग धारि महा बल,
पेख अकाश रिदय सकुचावै।
ज्यों ब्रह्मण्ड प्रचण्ड विलोकत,
[6]गूलर जन्तु उडन्त लजावै।
तूं करता हम किये तिहारे जी,
तोपहि बोलन क्यों बनि आवै॥ ५२७॥

तोसो न नाथ, अनाथ न मोसर,
तोसो न दानि, न मोसो भिखारी।
मोसो न दीन, दयाल न तोसर,
मोसो अज्ञानि न तोसो विचारी।
मोसो न पतित, न पावन तोसर,

१-हाथी गर्ज कर जब मनुष्य को मारता है, (उस को मस्त कहते हैं)। जब शिर पर धूलि डालता है तब उस को अरोग्य कहते हैं। २-कीर, तोता। ३-राजे के घर के योग्य है। ४-अहङ्कार में मस्त हो कर। ५-यति, सति, सतोषी साधुओं को निन्दा करते हैं, ऐसा अज्ञानी लोकों का उलटा ज्ञान ध्यान है। ६-गूलर फल में रहने वाला अल्पजन्तु विशाल ब्रह्मण्ड को देख कर उडने में लज्जा करता है।

मोसो विकारी न तोसो उपकारी।
मोरे हैं अवगुण, तू गुन सागर,
जात रसातल ओट तिहारी॥ ५२८॥

कवित्त॥

[1]उलट पवन मन मीन की चपंल गति,
दशम द्वार पार अगंम निवास है।
तह न पावक पवन जल पृथवी अकास,
नाहि शशि सूर उत्पत न बिनास है।
नाहि परकृति वृति पिण्ड प्राण ज्ञान,
शब्द श्रुति नाहि दृष्टि न प्रकास है।
स्वामी ना सेवक उनमान अनहद परे,
निरालम्ब सुन्न में न विसम विश्वास है॥ ५२९॥

जैसे अहिनिशि मद[2] रहत भांजन[3] विषय,
जानत न मरम[4] किधौं [5]कवन प्रकारी है।
जैसे वेली[6] भरि भरि बांट दीजियत सभा,
[7]पावत न भेद कछु विधि न बीचारी है।
जैसे दिन प्रति मद वेचत कलाल बैठो,
महिमा न जानई दरब हितकारी है।
तैसे गुर शब्द को लिख पढ़ गावत है,
बिरला अमृतरस पद अधिकारी है॥ ५३०॥

तृन तृन मेलि जैसे [8]छान छायत पुनः
अग्नि प्रगास तास भस्म करत है।
सिन्ध के किनारे बालु[9] गृह; बालिक रचित जैसे,

लहर उमग भए धीर न धरत है।
जैसे वन विषय मिलि बैठत अनेक मृग,
एक मृगराज[1] गाजे रह्यो न परत है।
[2]दृष्टि शब्द अरु सुरति ध्यान ज्ञान,
प्रगटे पूर्ण प्रेम सगल रहत है॥ ५३१॥

चन्दन की बार[3] जैसे दीजिऐ [4]बबूर द्रुम,
कञ्चन संपट[5] मध्य काच गहि राखिऐ।
जैसे हंस पास बैठ वायस[6] गर्व करै,
मृगपति[7] भवन में जम्बुक[8] भलाखिऐ[9]।
जैसे गर्दभ, गज[10] प्रति उपहास[11] करै,
[12]चक्रवै को चोर डांडै दूध मध्य माखिऐ।
[13]साधन दुराय कै असाध अपराध करै,
उल्लटिऐ चाल कली काल भ्रम भाखिऐ॥ ५३२॥

जैसे बिनु लोचन[14] विलोकिऐ[15] न रूप रंग,
श्रवन[16] बिहून राग नाद न सुनीजिऐ।
जैसे बिनु जिहवा न उचरै वचन अरु,
नासका विहून [17]बास बासना न लीजिऐ।
जैसे बिनु कर[18] करि सकै न कृत कर्म,
चरण बिहून भवन गवन कत कीजिऐ।
अशन वसन बिनु धीरज न धरै देहि,
बिनु गुरु शब्द न प्रेम रस पीजिऐ॥ ५३३॥

१-शेर। २-इसी प्रकार पूर्ण प्रेम प्रगट होने पर ज्ञान ध्यान आदि रह जाते हैं। ३-वाड़। ४—बबूल, कीकर का वृक्ष। ५-डिबा। ६-कौवा। ७-शेर। ८-गीदड़, शेर के घर का गीदड़ अभिलाषी होता है। ९-अभिलाषी, वा भल+आखिऐ=अच्छा कहा जाता है। १०-हाथी। ११-हासी। १२-चक्रवर्ति राजा को चोर डाटता है और दूध मे मक्खी अङ्कार करती है। १३-साधु तो छिपे रहते हैं और असाधु (साधुओं का रूप धार कर) अपराध करते हैं। ऐसी कलियुग की भ्रमयुक्त और उल्लटी चाल कही जाती है। १४-नेत्र। १५-देखना। १६-कान। १७-सुगन्धि की सुगन्धिता नहीं ली जाती। १८-हाथ।

जैसे फल सें वृक्ष, वृक्ष से होत फल,
अद्भुत गति कछु कहन न आवै जी।
[1]जैसे बास बावन में, बावन है बास विषय,
बिसम चरित्र कोऊ मरम[2] न पावै जी।
काष्ट में अग्नि, अग्नि में काष्ट है,
अति आश्चर्य है कौतक कहावै जी।
सत्गुरु में शब्द, शब्द में सत्गुरु है,
[3]निर्गुण ज्ञान ध्यान समझावै जी॥ ५३४॥

[4]जैसे तिल बास बास लीजियत कुसम से,
तांते होत है फुलेल जतन कै जानिऐ।
जैसे तो ओटाय[5] दूध, जामन[6] जगाय मथ,
संजम[7] सहित घृत प्रगट कै मानिऐ।
जैसे कूआ खोद कै वसुधा[8] घसाय कौरी,[9]
[10]लाज कै बहाय डोल; काढ जल आनिऐ।
गुरु उपदेस तैसे भावनी भक्ति भाय,
घट घट पूर्ण ब्रह्म पहिचानिऐ॥ ५३५॥

जैसे तो सरिता जल काष्टहि न बोरत,
करत चितलाज अपनो ही प्रतिपारयो है।
जैसे तो करत सुत अनिक अयानपन,
तौ न जननि अवगुण उरधारयो है।
जैसे तो शरण सूर पूर्ण प्रतिज्ञा राखे,
लख अपराध किये मार न विडारयो है।

तैसे ही परमगुरु पारस परस गति,
सिखन को [1]कृतकर्म कछु न विचारयो है॥ ५३६॥

जैसे जल धोय विन अम्बर[2] मलीन होत,
बिन तेल मेले[3] तैसे केश हूँ भयान[4] है।
जैसे बिन मांजे दर्पण जोति हीन होत,
वर्षा विहून जैसे खेत में न धान है।
जैसे बिन दीपक भवन अन्धकार होत,
लोन घृत विन जैसे भोजन †मसान[5] है।
[6]तैसे विन साध संग जन्म मरण दुख, मिटत न
भय भ्रम; विन गुरु ज्ञान है॥ ५३७॥

[7]जैसे मांझ बैठे बिन बोहिथ ना पारि परै,
पारस परस विनु धातु न कनिक[8] है।
जैसे बिन गंगा नाहि पावन है आन जल,
नारि न भर्तार बिन सुत न अनिक है।
जैसे बिनु बीज बोय निपजै न धान धारा,
सीप स्वांति बूंद विन मुकता न मनिक[9] है।
तैसे ही चरण शरण गुरु भेटे विनु,
जनम मरण मेटि *जनन[10] जनक[11] है॥ ५३८॥

जैसे तो मंजार[12] कहै; करों न अहार[13] मास,
मूसा देखि पाछै दौरै धीर न धरत है।
जैसे कौआ रीस कै मराल[14] सभा जाय बैठे,
छाडि मुकताहल[15] दुर्गन्धि सिमरत है।

१-गुन अवगुण की विचार नहीं करता। २-कपड़ा। ३-लगाय। ४-डरौने हैं। ५-भूत रसोई है। ६-तैसे ही साधु संगति और गुरु ज्ञान विना भय भ्रम और जन्म मरण का दुःख मिटता नहीं। ७-जहाज के बीच बैठे विना पार नहीं पहुचा जाता, 'बोहित' जहाज। ८-स्वर्ण। ९-माणक। १०-माता। ११-पिता। १२-बिल्ला। १३-खाना। १४-हंस। १५-मोती।
†पा=समान। *पा=जन न जन कहै।

जैसे मौन गहै सियार[1] जतन अनेक कर,
सुनत सियार भाषा[2] रहिओ न परत है।
तैसे पर तन पर धन दूषना त्रिदोष मन,
[3]कहत कै छाडयो चाहै टेव न टरत है ॥५३६॥

भूलना छन्द ॥

स्मृति पुराण कोटान बखान बहु,
भागवद् वेद व्याकरण गीता।
शेश[4] मरजेश[5] अखलेश[6] सुर महेश मुनि,
जगत् अरु भगत सुर नर अतीता।
ज्ञान अरु ध्यान उनमान उनमन उक्त,
राग नाद दिजेश्वर मति नीता।
अर्ध लग मात्र गुरु शब्द अक्षरमेक,
अगम अति अगम अगाधि मीता ॥ ५४० ॥

कबित्त ॥

दर्शन देखयो देखयो सकल संसार कहै,
कवन दृष्टि सों मन दर्स समाइऐ।
गुरु उपदेश सुनयो सुनयो सब कोऊ कहै,
कवन सुरति सुनि अनत न धाइऐ।
जय जय कार जपत *जगत् गुर मन्त्र जीह,
कवन जुगति जोती जोति लिव लाइऐ।
दृष्टि सुरति ज्ञान ध्यान सर्वंग हीन,
पतित पावन गुरु मूढ़ समझाइऐ ॥ ५४१ ॥

जैसे खाण्ड खाण्ड कहै मुख नही मीठा होय,
जब लग जीभ स्वाद खाण्ड नही खाईऐ।

जैसे राति अन्धेरे में दीपक दीपक कहै,
तिमर न जाय, जब लग न जराईऐ।
जैसे ज्ञान ज्ञान कहै ज्ञान हूं न होत कछु,
जब लग गुरु-ज्ञान अन्तर न पाईऐ।
तैसे गुरु ध्यान कहे ध्यान हूँ न पावत,
जब लग गुर दर्श जाय न समाईऐ॥ ५४२॥

स्मृति पुराण वेद शास्त्र विरंच[1] व्यास,
नेति नेति नेति शुक[2] शेश यश गायो है।
शिव सनकादि नारदादिक ऋषीश्वरादि,
सुर नर नाथ जोग ध्यान में न आयो है।
गिरि[3] तरु[4] तीर्थ गवन पुन्य दान व्रत,
होम यग भोग नैवेद[5] कै न पायो है।
अस वडभाग माया मध्य गुरु सिखन को,
पूर्ण ब्रह्म गुरु रूप ह्वै दिखायो है॥ ५४३॥

बाहिर की अग्नि ज्यों बूझत जल सरिता[6] कै,
नाओ[7] में जो आग लागै कैसे कै बुझाइऐ।
बाहर से भाग ओट लीजियत कोट गढ़,
गढ़ में जो लूट लीजै कहो कत जाइऐ।
चोरन कै त्रास[8] जाय शरण नरिन्द[9] गहै,
मारै महिपति जीओ कैसे कै बचाइऐ।
माया डर डरपत हारि गुरुद्वारे जावै,
तहाँ जो व्यापे माया कहां ठहिराइऐ॥ ५४४॥

सर्प कै त्रास[8] शरण गहै गरुपति[10] जाय,
तहा जो सर्प ग्रसे कहो कैसे जीजिऐ।

जम्बुक[1] से भाग मृगराज[2] की शरण गहै,
तहां जो जम्बुक हरै[3] कहो कहा कीजिऐ।
दारिद्र[4] कै चांपै[5] जाहि सरण [6]सुमेर सिन्धु,
तहां जो दारिद्र दहै काहि दोष दीजिऐ।
क[6] भ्रम कै शरण गुरदेव गहै,
तहा न मिटै कर्म कौन ओट लीजिऐ॥ ५४५॥

जैसे तो सकल निधि पूर्ण समुद्र विषय,
हंस मरजीवा[7] *निःचय प्रसाद पावई।
जैसे पर्वत हीरा माणिक पारस, सिध
खनवारा खनि जग त्रिषय प्रगटावई।
जैसे बन विषय मलियागर कपूर सोधा, सोघ कै
सुबासी सुबासै बिहसावई।
तैसे गुरु वाणी विषय सकल पदार्थ है,
जोई जोई खोजै सोई सोई निपजावई॥ ५४६॥

पर त्रिया दीर्घ[8] समान[9] लघु[10] यावदेक[11],
जननि[12] भगनि[13] सुता[14] रूप कै निहारिऐ।
परदरवासहि[15] गौ मास तुल जानि रिदय,
कीजै न स्पर्श अपर्श सिधारिऐ।
घट घट पूर्ण ब्रह्म जोति ओति पोति,
अवगुण गुण काहू को न बीचारिऐ।
गुरु उपदेश मन धावत बरज राखै,
पर धन पर तन पर दूषना निवारिऐ॥ ५४७॥

चीटी चीटा बिल[१] सै निकसि धर गवन करै,
बहुरों पैसत जैसे बिल ही में जाय कै।
लर कै लरिका रूठि जात तात मात सन,
भूख लागै त्यागै हठ आवै पछुताय कै।
तैसे गृह त्याग भागि *जात उदास बास,
आसरो तकत पुनः गृहस्थ को धाय कै॥ ५४८॥

काहूँ दिशा को पवन गवन[२] कै वर्षा ह्वै,
काहूँ दिशा को पवन बादर बिलात है।
काहू जल पान किये रहित अरोग देही,
काहूँ जल पान बृथा[३] व्यापै बिललात है।
काहूँ गृह की अग्नि [४]पाक साक सिध करै,
काहूँ गृह की अग्नि भवन जरात है।
काहूं की संगति मिलि जीवन मुक्ति ह्वै,
काहूँ की संगति मिलि यमपुरि जात है॥ ५४६॥

प्रीतम के मेल खेल प्रेम नेम कै पतङ्ग,
दीपक प्रकाश जोती जोति हूँ समावई।
सहज संजोग अरु विरह वियोग विषय,
जल मिलि बिछुरत मीन ह्वै दिखावई।
शब्द सुरति लिव थकित चकित ह्वै,
शब्द बेधी कुरङ्ग जुगति जतावई।
मिलि बिछुरत अरु शब्द सुरति लिव,
कपट सनेह कै सनेही न कहावई॥ ५५०॥

दर्शन दीप देखि होइ न मिलैं पतङ्ग,
परचा[५] विहून गुर सिख न कहावई।
सुनत शब्द धुनि होय न मिलत मृग,

शब्द सुरति हीन जनम लजावई।
गुर चरनामृत कै चात्रिक न होय मिलै,
रिदय न विश्वास गुरदास ह्वै न हसावई।
सति रूप सतिनामु सद्गुरु ज्ञान ध्यान,
एक टेक सिख जल मीन ह्वै दिखावई ॥ ५५१ ॥

उत्तम मध्यम अरु अधम त्रिविध जगु,
अपनो सुवन[1] काहू बुरो तो न लागहै।
सब कोऊ वणज करत लाभ लभत को,
आपनो व्योहार भलो जानि अनुराग है।
तैसे अपनै अपनै इष्टै चाहत सबै,
अपने पहरे सब जगत् सुजागि है।
सुवन समर्थ भए वणज बिकाने जानै,
इष्ट प्रताप अन्तकाल अग्रभाग है ॥ ५५२ ॥

अपनो सुवन सब काहुऐ सुन्दर लागै,
सफल सुन्दरता; संसार में सराहिऐ।
आपनो वणज बुरो लागत न काहू रिदय,
जाहि जग भला कहै सोई तो विसाहिऐ[2]।
अपनो कर्म कुला धर्म करत सबै,
ऊत्तम कर्म लोग बेद अवगाहिऐ।
गुरु विन मुक्त न होय सब कोऊ कहै,
माया में उदास राखै सोई गुरु चाहिऐ ॥ ५५३ ॥

जैसे मधु[3] माखी सींच सींच के इकत्र करै,
हरै मधु आय ताके मुख छार डारि कै।
जैसे बच्छ हेत गौ सञ्चत[4] है छीर[5], ताहि
लेत है अहीर[6] दह बच्छरे विडारि कै।

जैसे घर[१] खोदि खादि कर बिल साजै मूसा,
पैसत सर्प धाय खाय ताहि मारि कै।
तैसे कोटि पाप करि माया जोरि जोरि मूढ़,
अन्तकाल छाडि चलै दोनो कर[२] झारि कै॥ ५५४।

जाके अनिक फनग फनाग्र[३] भार धरनि धारी,
ताहि गिरधर[४] कहै कौन सी बडाई है।
जाको एक बावरो विश्वनाथ नाम कहावै,
ताहि वृजनाथ कहे कौन अधिकाई है।
अनिक अकार ओंकार के बिथारे जाहि,
ताहि नन्द नन्दन कहे कौन सोभताई है।
जानत स्तुति करत निन्दा अन्ध मूढ़,
ऐसे अराधवे ते मोन सुखदाई है॥ ५५५॥

सवैया॥

*बेद बिरंच बिचार न पावत,
चक्रित शेश शिवादि भए हैं।
जोग समाधि अराधत नारद,
सारद सुक्र सनात[५] नए हैं।
आदि अनादि अगाधि अगोचर,
नाम निरञ्जन जाप जए हैं।
श्री गुरुदेव सुमेव सु संगति,
पैरी पए भाई पैरी पए हैं॥ ५५६॥